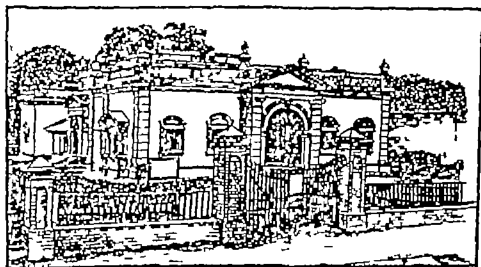
स्वास्थ्य और चिकित्सा

Dr Chhannulal Memorial Series No 3

छूत वाले रोग और उनसे बचने का उपाय।

श्रीमती जगरानी देवी लिखित ।



काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

मेडिकल हाल प्रेस में बाबू यशोपीप्रसाद द्वारा मुद्रित हुआ ।

भूमिका।

इस "छूतवाले रोग और उनसे बचने के उपाय" नामक पुस्तक को काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने पारितोषिक देकर निर्माण कराया है। इसमें सन्देह नहीं कि सभा ने ऐसी मनोरमणीय पुस्तक की रचना करवाकर गृहस्थमात्र का बड़ा ही उपकार किया। नागरी प्रचार के साथ ही साथ स्वास्थ्यप्रचार यही कहावत चरितार्थ करता है, कि—

चलो सखी तहँ जाइए, जहां बसैं ब्रजराज।
गोरस बेंचत हरि मिलैं, एक पन्थ दुइ काज॥

सच तो यह है कि छूतवाले भयानक रोगों से बचने की आवश्यकता प्रत्येक प्राणिमात्र को है ऐसी आवश्यकता की पूर्ति काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने की है, अत सभा तथा सभा के सभासदों को कोटिश धन्यवाद है।

इस पुस्तक की रचना एक भद्र कुल की आर्य महिला द्वारा हुई है। लेखिका महाशया का वैद्यक विद्या से घनिष्ठ सम्बन्ध है। चौदह वर्ष से वे इस विद्या में अनुभव प्राप्त कर रही हैं। यह उनका द्वितीय ग्रन्थ है। प्रथम ग्रन्थ उन्होंने १९०७ में "दौरी सुधार" लिखा था जिसे नागरीप्रचारिणी सभा ने उपयोगी न जानकर लौटादिया। किन्तु लेखिका महाशया का उत्साह सभा की अस्वीकृति से भग नहीं हुआ। वे पुन नवोत्साह से उत्साहित होकर इस पुस्तक की रचना में तत्पर हुईं।

प्रथम तो इस विद्या के अनुभवियों को रोगियों से ही अवकाश मिलना कठिन है। द्वितीय सरकारी सेवा आज दिन

अगरचंद भैरोंदान सेठिया

इतनी कठोर हो रही है कि ग्रन्थादि लिखने पढ़ने की कौन कहे, रोगियो के विषय में भी मनन करने का समय नहीं मिलता। इस पुस्तक की लेखिका महाशया ने भी उपर्युक्त कारणों के वशीभूत होने से इस पुस्तक के लिखने का भार मेरे ऊपर रक्खा। साथ ही गुप्तेन्द्रिय विषयक (विनिरिअल डिजीज़ज) छूतवाले रोगो के लिखने का भी अनुरोध मुझ ही से किया।

लेखिका महाशया की इच्छानुसार गुप्तेन्द्रिय विषयक छूत वाले रोगो पर मैंने स्वय लिखा, शेष लेख लेखिका महाशया ने स्वय लिखवाया है।

लेखिका महाशया ने निम्नलिखित लेख में कुछ तो निज अनुभव की, और कुछ अँगरेजी हिन्दुस्तानी पुस्तको में से चुनी हुई, बातें ही लिखवाई हैं। कहीं कहीं पर अँगरेजी तथा हिन्दुस्तानी समाचारपत्रो में निकले हुए डाक्टरी विषयक लेखो का भी सारांश लिया है।

छूतवाले रोगों के विषय में अब तक जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है, तथा अधिक दिवस के वादविवाद के उपरांत जो सिद्धान्त नए तथा पुराने डाक्टरो ने स्थिर किया है उसी सिद्धान्त के आधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है। रोगो के कारणों, लक्षणो तथा निदानो में जो कुछ परिवर्तन अब तक हुआ है, और चिकित्साओ तथा औषधियो में जैसी सर्व सम्मति अब तक पाई गई है, उन पर पूर्ण ध्यान रक्खा गया है।

जो औषधिया प्रत्येक रोग के साथ लिखी गई हैं उनमें से कुछ तो एक बहुत ही अनुभवी डाक्टर की पुस्तक से ली

गई हैं, और कुछ लेखिका ने निज अनुभव द्वारा, जिन रोगों में जिन्हें उत्तम पाया है, लिखी हैं। इस पुस्तक में लिखी हुई औषधियों को व्यवहार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रोग की क्या दशा है, रोगी की क्या दशा है, औषधियों का उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

ध्यान रहे कि रोगों की दशा प्रत्येक रोगी में एक सी नहीं पाई जाती, अर्थात्—बल, काल, स्वभाव तथा अवस्था के अनुसार रोगों के लक्षणों में विविध परिवर्तन हुआ करते हैं। अस्तु निश्चित तथा अनुभूत औषधियां भी लक्षणों के परिवर्तन के कारण लाभकारी नहीं होतीं, ऐसे समय योग्य डाक्टरों की सम्मति की आवश्यकता होती है, अत किसी अनुभवी डाक्टर की सम्मति से औषधियों का प्रयोग विशेष लाभकारी होगा।

प्रत्येक रोग की चिकित्सा में कुछ ऐसे अनुभवसिद्ध नुसखे लिखे गए हैं जो उस रोग में प्राय व्यवहृत होते हैं। यदि उन नुसखों को—उन उन रोगों में जिन में उनका व्यवहार उपयोगी बतलाया गया है—बाजार में, बनवा कर व्यवहार करें तो कोई हानि नहीं, प्रत्युत साठ फी सदी लाभ ही लाभ है।

औषधियों के तौल नाप का चित्र भी इस पुस्तक में दे दिया गया है जिस से डाक्टरी तौल नाप जानने में सुबिधा होगी। नुसखों का वजन ठीक तरुण रोगी के लिए है। वृद्ध तथा बालकों को उनकी अवस्थानुसार मात्रा कम करके देना उचित है।

कल्पना कीजिए कि—एक तरुण पुरुष के लिये किसी

औषधि का प्रमाण डाक्टरी तौल के अनुसार एक ड्राम है तो १ वर्ष के बालक के लिये $\frac{१}{१२}$ वा भाग, अर्थात् ५ ग्रेन होगा। इसी प्रकार दो वर्ष के बालक के लिये $\frac{१}{८}$ वां भाग, ७$\frac{१}{२}$ ग्रेन

तीन वर्ष के बालक के लिए $\frac{१}{६}$ वां भाग, १० ग्रेन
चार ,, ,, ,, ,, ,, $\frac{१}{४}$ था भाग, १५ ग्रेन
सात ,, ,, ,, ,, ,, $\frac{१}{३}$ सरा भाग, २० ग्रेन
चौदह ,, ,, ,, ,, ,, $\frac{१}{२}$ भाग ३० ग्रेन
बीस ,, ,, ,, ,, ,, $\frac{२}{३}$ सराभाग, ४० ग्रेन
इक्कीस ,, ,, ,, ,, ,, पूरा प्रमाण ६० ग्रेन
(१ ड्राम) जानना चाहिए।

यह ब्यौरा समझ लेने से अवस्थानुसार औषधियों का प्रयोग सभी कर सकते हैं।

छूतवाले रोगों के क्रम को जानने के लिये एक क्रमानुसार रोगों की सूची दी गई है, उससे प्रत्येक रोगों का स्वभाव सूचित होता है, अर्थात् कौन रोग कैसा तथा किस स्वभाव का है और उसे हिन्दुस्तानी तथा अंगरेजी में किस किस नाम से सम्बोधन करते हैं। छूतवाले रोग इस पुस्तक में प्रायः वेही लिये गये हैं जो वास्तव में छूत से उत्पन्न होते और जो बड़े भयङ्कर तथा स्वतन्त्र प्रकृति के हैं। अन्यान्य रोग—जो छूत वाले रोगों के फल से उत्पन्न होते हैं,—उनका केवल नाम मात्र उल्लेख किया गया है, फिर भी यदि भ्रम वश कोई रोग छूट गया हो और उसे कोई महाशय अनुग्रह करके हमें सूचित करेंगे तो आगे धन्यवाद पूर्वक उसे सम्मिलित करके त्रुटि निवारण कर देने की चेष्टा की जायगी।

लेखिका महाशया का एक अपूर्व तथा विचारणीय सिद्धान्त अन्त में दिया गया है, वह "मक्खियो द्वारा फैलने वाले छूत वाले रोग" है। यद्यपि अभी हाल में डाक्टरी महासभा बम्बई मे अपना यह विचार प्रकट किया है कि मक्खियों द्वारा उत्पन्न होने वाले रोग केवल हैजा, संग्रहणी, और अतिसार हैं तथापि लेखिका महाशया का मत डाक्टरी महासभा से निराला है। डाक्टरी महासभा के मत से दो ही चार रोगो की उत्पादक मक्खियां होती हैं किन्तु लेखिका के मत से सम्पूर्ण छूतवाले रोगो की उत्पादक मक्खियां ठहरती हैं।

अनुभव किसी के बाट में नहीं पड़ा है, और न यही कह सकते हैं कि अमुक अनुभव कर सकता है अमुक नहीं। इतिहासो से सिद्ध है कि साधारण से भी साधारण मनुष्यों ने बड़े बड़े आश्चर्यदायक अनुभव सहजही प्राप्त किये हैं, अस्तु लेखिका महाशया का दर्जा कम होने पर भी उनका महत् तथा नव सिद्धान्त विचारने योग्य है।

हम यह नहीं कह सकते हैं कि उनका सिद्धान्त सत्य वा मिथ्या है। हमारा तो यही कहना है कि इस पुस्तक के पाठकमात्र उनके नवसिद्धान्त को खूब सूक्ष्म दृष्टि से देखें, और विचारें कि कहां तक सत्य तथा कहां तक मिथ्या है। यदि विचारवानो के सन्मुख लेखिका जी का नव सिद्धान्त सत्य ठहरा, तब तो उन की विलक्षण बुद्धि तथा अपूर्व अनुभव की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

लेखिका महाशया इस स्थान पर बड़े महापुरुषों की कृतज्ञता प्रकाश करना चाहती हैं।

सब से प्रथम वे पूज्यपाद राय बहादुर श्रीयुक्त गुरु पर डाक्टर एन० सी० चक्रवर्ती तथा गुरुवर राय बहादुर डाक्टर अमूल्यरत्न घोषाल महोदयों की कृतज्ञ हैं; जिनकी कृपा तथा प्रसाद से वे इस ग्रन्थ को लिख सकीं। लेखिका महाशया ने इस विद्या का अध्ययन उपर्युक्त महोदयों से किया है। अस्तु उन्हीं के लेकचर नोटों तथा पुस्तकों आदि का अधिक आश्रय लिया है।

इनके अतिरिक्त श्रीयुक्त डाक्टर मन्मथनाथ बसु, रिटायर्ड असिस्टेंट सरजन तथा डाक्टर अभयकुमार मजूमदार मेडिकल प्रेक्टिशनर की भी वे पूर्ण कृतज्ञ हैं। उपर्युक्त महोदयों के भी नोट जहाँ तहाँ इस पुस्तक में सम्मिलित किये गये हैं।

लेखिका महाशया आशा करती हैं कि इस पुस्तक के पठनपाठन से पाठक तथा पाठिकाओं को अवश्य कुछ लाभ होगा। यदि ऐसा हुआ तो वे अपना श्रम सफल समझेंगी

मिर्जापुर
३१ मार्च १९०९ ई०

जी० एल० उपाध्याय
(श्रीलाल कवि)

श्री हरिः ।

छूतवाले रोग और उनसे बचने का उपाय ।

यह शरीर मन्दिर एक अनोखे कारीगर के हाथ का बना है। इसकी अद्भुत कारीगरी पर संसार मुग्ध है। आहा क्या ही अनूठा जड़ाऊ मन्दिर है। इस मन्दिर में निवास करने की इच्छा देवताओं की भी रहती है। देवता गण भी मृत्युलोक में जन्म ले कर इस जड़ाऊ मन्दिर का सुख अनुभव करना चाहते हैं। इस सुन्दर सुहावने जड़ाऊ मन्दिर को देख कर रोग रूपी यात्री मोहित हो जाते हैं। इन यात्रियों की कथा बड़ी विलक्षण है। कोई २ ऐसे यात्री इसमें आ टिकते हैं जो निकालने से भी नहीं निकलते। चाहे जितना फुसलाइये, धमकाइये वा औषधियों द्वारा भेंट पूजा कीजिये, उन्हें मनाइए, किन्तु वे कभी नहीं मानने के। वे तो यही चाहते हैं कि आजन्म इस मन्दिर में हमारा ही निवास रहे और अन्य कोई इसके चबूतरे पर भी न बैठे। कोई २ यात्री जो कई बार वर्षों आ कर इस में ठहरे हैं, वे फिर ताक में बैठे रहते हैं, जहां देखा कि मन्दिर खाली हुआ चट फिर घुस पड़े। कभी कभी भले मानुषों का भी इस मन्दिर में डेरा पड़ता है। जो एक दो अथवा तीन रात से अधिक नहीं टिकते। किसी २ का तो रात ही भर का नाता रहता है। प्रातः होते ही वे अपनी राह चलते हैं। कोई २ डाकू यात्री भी होते हैं, जो जबतक चाहते हैं तबतक निडर निवास करते हैं किन्तु जब निकलने लगते हैं तो कहीं थूक, कहीं खखार, कहीं मल, कहीं मूत्र आदि कर, मन्दिर को अपवित्र कर देते हैं। कोई

२ खिड़कियां, दरवाजे, कड़ी और तख़्ता को तोड़ फोड़ कर सब पिड छोड़ते हैं। कोई २ महात्मा तो इसका मूल नष्ट करने में ही प्रसन्न होते हैं ।

इन उपर्युक्त यात्रियों के अतिरिक्त और भी बहुत सी बलाए इस मन्दिर के मस्तक पर चीलसी मंडराती हैं । यथा सरदी रूपी मूसे, गरमी रूपी घूसे वायु रूपी मोमा और विषरूपी घुन आदि जिनकी करतूतों से इस मन्दिर की नींव पोली दीवारें कर २ तथा कड़ी किवाड़े घुन सड़ कर बरबाद हो जाते हैं।

इन सभों में भयंकर "छूत" रूपी भूडोल है । हाय जिस प्रकार भयंकर भूकम्प आन कर बड़े २ दृढ़ दुर्गों को आन की आन में धरती पर सुला देता है । उसी प्रकार छूत भूकम्प से भी बड़े २ मज़बूत शरीर मंदिर देखते २ छूमन्तर होजाते हैं । सच पूछो तो सच्चा जादू छूतही है । इस जादू का कोई भेद नहीं पाता और न इसके निवारण का कोई मन्त्र ही है। जैसे हरे भरे वा फूले फले वृक्ष तथा कोमल २ पौधों का सत्यानाश पाला किया करता है उसी प्रकार कोमल २ बच्चों तथा जवानों का सत्यानाश छूत करती है। नाना रोगों की माता छूत को कहना चाहिए क्यों कि एक छूतवाले रोगसे सैकड़ों अन्य प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं जो शरीर में फैल कर जीवन के लाले डाल देते हैं।

छूत की परिभाषा ।

"छूत" एक प्रकार का अलख बाण है । जिस का विष शरीर की बनावटों में घुसकर भांति २ के "छूतवाले रोग" पैदा करता है । इसके आक्रमण (हमला) करने के तीन मार्ग

हैं। पहिला वायु द्वारा, दूसरा स्पर्श द्वारा, तीसरा भोजन और पानी द्वारा। पहिले को "इनफेक्शस्" Infectious दूसरे को "कन्टेजस्" Contagious और तीसरे को "फोमाइटिस" Fomites अंगरेज़ी में कहते हैं। जब छूत का असर एक साथ बहुत से मनुष्यों पर और बहुत से देशों में प्रगट हो तो "एपिडेमिक्" Epidemic, जब एकही स्थान में स्थिर रहे तो "एन्डेमिक्" Endemic, और जब एक दो आध रोगी हो तो "स्पोरेडिक्" Sporadic, कहते हैं।

१ वायु द्वारा छूत का आक्रमण।

जब छूत का विष वायु के घोड़े पर सवार हो कर जन संहार के लिए निकलता है उस समय एक ही दो पर नहीं वरन हजारों लाखों प्राणियों पर इसका प्रभाव पड़ता है। जनपूर्ण बस्तियां जनशून्य हो कर वनबन जाती हैं। जिस प्रकार वन में अचानक अग्नि प्रगट हो कर सम्पूर्ण वन के वृक्ष तथा वनस्पतियों को भस्म कर देती है उसी प्रकार नगरों में छूतवाले (इनूफेक्शस् तथा कन्टेजस्) रोग फैल कर लाशों की ढेर लगा देते हैं। ऐसे समय बड़े २ दिग्गज वैद्यों की बुद्धि चकरा जाती है और बड़े २ साहसियों तथा उद्योगियों के साहस और उद्योग निष्फल हो जाते हैं। प्राणियों में हाहाकार !!! मच जाता है।

वायु द्वारा आक्रमण करनेवाले छूतदार रोग दो प्रकार के होते हैं। पहिले प्रकार में वे रोग जो एपिडेमिक् कंटेजस्

---

१ वैद्यक में जितने रोग लिखे गये हैं उनमें से अधिकांश रोग छूत ही से उत्पन्न होते हैं। जैसे कि छूत वाले रोगों के साथ वर्णन किया गया है।

एन्ड इन्फेक्शस् Epidemic, contagious and infectious के नाम से मशहूर हैं अर्थात् इस प्रकार के छूतवाले रोग वायु और स्पर्श दोनो के द्वारा उत्पन्न होते हैं। दूसरे प्रकार में वे रोग हैं जो केवल एपिडेमिक् Epidemic कनटेजस् contagious and इनफेक्शस infectious कहाते हैं। ऐसे रोग केवल वायु द्वारा ही उत्पन्न होते हैं।

२ स्पर्श द्वारा छूत का आक्रमण।

रोगी अथवा उसके पहिरने ओढ़ने आदि वस्तुओं द्वारा इस प्रकार की छूत निरोगी मनुष्यों को लग जाती है। वैद्य, टहलुए, इष्टमित्र और उस घर के निवासियों को जिन में ऐसा रोगी हो इसका अवश्य फल मिलता है। इस प्रकार के छूतवाले रोग भी कभी २ एपिडेमिक् (मरी) इन्डेमिक् (स्थानीय) और प्राय "स्पोरेडिक्" होते हैं। एक से दूसरे को और दूसरे से तीसरे को इस प्रकार की छूत का बराबर असर होता चला जाता है। यदि उचित उपाय न की जावे तो ऐसी छूत से पैदा छूतवाले रोग हजारों मील का धावा एक दिन में पांव बिना दिये ही मार सकते और सैकड़ों प्राणियों का सहार कर सकते हैं। हवाई घुड़सवारों से (एपिडेमिक् इन्फेक्शस से) ये ताकत में कुछ कम नहीं हैं केवल अन्तर है तो इतनाही कि वे पलक मारते २ प्रलय कर सकते हैं और ये धीरे २ अपना प्रभाव दिखाते हैं।

ध्यान रहे कि जो "इनफेक्शस" हैं वह "कन्टेजस्" भी हो सकते हैं और जो कन्टेजस् हैं इन्फेक्शस हो जाते हैं अथवा यों समझ लीजिये कि कन्टेजस् से इन्फेक्शस् और इन्फेक्शस से कन्टेजस बनजाते और बनते हैं क्योंकि

किसी २ में दोनो प्रकार विद्यमान हैं जिसे आगे लिखेंगे।

३ भोजन और जल द्वारा छूत का आक्रमण।

जब छूत का विष किसी कूंवा, बावड़ी, तालाब या पोखरे आदि में मिल जाये और ऐसे जलाशयों का जल मनुष्य पीवें या खानेवाले पदार्थों में मिलावें और उसे निरोगी मनुष्य खावें तो ऐसी छूत का असर तुरत मनुष्यों में फैल जाता है और एक साथ बहुत से मनुष्य यमलोक की यात्रा को चल पड़ते हैं, जैसे, हैज़ा और "टाइफाइड् फीवर" आदि में देखा जाता है। जिस प्रकार वायु मनुष्य के जीवन में उपयोगी पदार्थ है उसी प्रकार भोजन तथा जल भी उपयोगी है। अस्तु जिस प्रकार वायु द्वारा छूत आक्रमण करती है उसी प्रकार खाद्य पदार्थों द्वारा भी कर सकती है। असर दोनो में एकसा ही है केवल आक्रमण का मार्ग निराला है।

वायु द्वारा छूत का असर प्रथम स्वासेन्द्रियों पर हो कर पश्चात् स्नायुमंडल (नर्वस सिस्टम) पर होता है और विष रुधिर में मिलते ही हृदय, फेफड़ा, गुर्दा, जिगर आदि के कार्य में बाधा उपस्थित होती है। शरीर की बनावटें बिगड़ जाती हैं। पट्ठे, नस, चर्बी और मांस घुलने और निर्बल होने लगते हैं। आमाशय आतों के कार्य शिथिल पड़ जाते हैं। शरीर के नियमित रिसाव[1] बंद हो जाते हैं। अंत में रुधिर विकार बढ़ कर भेज़ा, (दिमाग) वा हृदय (दिल)

---

[1] [illegible]

में असर पहुंच कर रोगी मूर्छा (कोमा) वा हृदय की गति के निर्बलतादि से मृद हो कर मर जाता है।

स्पर्श द्वारा छूत का असर प्रथम त्वचा[१] पर हो कर रुधिर में पहुंचता है और खाने पीनेवाली वस्तुओं द्वारा छूत का असर प्रथम आमाशय में हो कर तब रुधिर में मिलता है। पश्चात् फल इन दोनों का प्रथम के समान ही होता है। छूतवाले रोगों में अधिकांश ऐसे रोग हैं जिनमें "ज्वर" अवश्य है। शेष कुछ स्वासेन्द्रियों पर और कुछ त्वचा पर होते हैं।

छूत वाले रोग तीन प्रकार के हैं।

१ मनुष्यों से मनुष्यों में उत्पन्न होनेवाले। इसमें स्त्री पुरुष दोनो ग्रसित होते हैं।

२ जो केवल स्त्रियों ही में देखे जाते हैं। जैसे प्रसूत ज्वर "सेप्टिसीमिया" आदि।

३ पशुओं से मनुष्यों में उत्पन्न होनेवाले। जैसे "ग्लैंडर्स" "फार्सी" "हवाइनिया माइटिस" "सारवत" "हैड्रोफोबिया" आदि।

(च)

छूतवाले रोगों का ब्योरा ।

नं०	नाम छूतवाले रोगों का	वायु द्वारा	स्पर्श द्वारा	खाद्यपदार्थों द्वारा	आक्रमण
१	स्माल पाक्स-शीतला	इनफेक्शस	कन्टेजस	फोमाइटिस	एपिडेमिक इन्डेमिक स्पोरेडिक
२	चिकिन पाक्स=मोतिया शीतला	,,	,,	—	
३	मीजिल्स=खसरा	,,	,,	—	,,
४	स्कारलेट फीवर=लाल बुखार	,,	,,	,,	,,
५	जर्मन मीज़िल्स	,,	,,	—	,,
६	डिफथीरिया (कंठ में झूठी झिल्ली)	,,	,,	—	,,
७	हूपिङ्गकाफ कूकर खांसी	,,	,,	—	,,
८	टाइफस् फीवर (काला बुखार)	,,	,,	,,	,,
९	टाइफाइड् फीवर (सान्निपातिक ज्वर)	,,		,,	,,
१०	मम्प=कर्णमूल=गलसुआ	,,	,,	—	,,
११	इनफ्लुएन्जा=वबाई जुकाम सरदी	,,		—	,,
१२	इरिसिपेलस=सुर्खबादा	,,	,,	—	,,
१३	यलोफीवर-पीतज्वर	,	,,	,	,,

नं०	छूतवाले रोगों का नाम	वायु द्वारा	स्पर्श द्वारा	भोजन और पानी द्वारा	कैफियत
१४	सेरीब्रोस्पाइनल फीवर	,,		—	,,
१५	डेंग्यू फीवर-लगड़ा बुखार	,,			,,
१६	रिलेप्सिंग फीवर=प्रकासज्वर	,,	,,	—	,,
१७	हूपिंग कफ=ऐंठनी खांसी	,,	,,		,,
१८	प्लेग=मरी=ताऊन=महामारी	,,	,,	—	,,
१९	कालरा=हैजा = विसूचिका	,,	—	,,	,,
२०	थाइसिस-क्षयी-तपेदिक् सिल	—	,,	,,	—
२१	लेपरसी = कुष्ट = जुज़ाम = कोढ़	—	,,		—
२२	स्केबीज़ = ईच खुजली = खाज	—	,,	—	—
२३	रिंगवर्म = दाद	—	,,	—	—
२४	टिनिया फेवोसा = गंज	—	,,	—	—
२५	टिनियावर्सी कोलर=छीप	—	,,	—	—
२६	मोलस्कम कंटेजियोसम	—	,,	—	—
२७	फ्रेम बीसिया-याज़	—	,,	—	—
२८	पेरासिटिक स्टोमेटाइटिस=मुख	—	,,	—	—

क्रम	रोग					
९	न्यूमोनिया-फेफड़े की सूजन	—	—	—	—	
०	स्लीपिङ्ग सिक्नीस=निद्रा रोग	"	"	—	व विद्रेमिय	
१	प्योरपरल फीवर=प्रसूत ज्वर	"	—	—	इन्द्रिमक	स्त्रियों का रोग
२	" सेप्टीसीमिया	"	"	—	"	
३	ग्लैंडर्स	"	"	—	—	पशुओं से मनुष्यों में होनेवाले रोग
४	फारसी	—	"	—	— कर्मरपाधि कृमिक	
५	एक्टाइनोमाइकोज	—	"	—	—	
६	मेलिग्नेन्टपस्चूल या कारबन	"	"	—	—	
७	हैड्रोफोबिया=[illegible]	—	"	"		लिङ्गेन्द्रिय के रोग
८	गोनोरिया=सुजाक-प्रमेह	—	"	—	—	
९	सिफ़िलिस=आतशक-उपदंश	—	"	—	—	

इनके सिवाय और भी बहुत से ऐसे रोग हैं जो छूतवाले रोगों के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं। जैसे आतशक से आतशकी गठिया, सुजाक से ग्रान्युलर अफथलमियां आदि। लेकिन हमने ऐसे रोगों को छोड़ दिया कारण कि ये रोग छूतवाले रोगों के फल स्वरूप हैं जिनका वर्णन प्रत्येक छूतवाले रोगों के साथ आगे लिखा जायेगा।

छूत का असर।

छूत का असर सब समय में सब पर एकसा नहीं होता। इसका कारण विष का न्यूनाधिक्य तथा निर्बल होना है। किसी २ को थोड़े ही में शीघ्र असर हो जाता है और किसी २ में अधिक मात्रा होने पर भी विष असर नहीं करता। इसका कारण बल है। अर्थात शरीर बलवान होने से विष निर्जीव तथा निर्बल हो कर असर नहीं फैलाने पाता। इसके विरुद्ध निर्बल मनुष्यों तथा रोगियों में शीघ्र असर दुगना तिगुना बढ़ जाता है। कल्पना करो कि पांच मनुष्य वर्षा में भीगते हुये चले लेकिन पांचो पर सरदी का असर नहीं हुआ। एक को तो गठिया हो गई, दूसरे को ज्वर आ गया, तीसरे को खांसी का रोग हुआ, और चौथे पांचवें को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि जिसका बल जैसा रहा उसे वैसाही फल मिला। सब बहुत से रोग स्वभाव और प्रवृत्ति से होते हैं अर्थात जिसका जैसा स्वभाव और प्रवृत्ति होगी उसको वैसा उसी प्रकार के रोग की ओर प्रवृत्ति होगी। जैसे जिन्हें एक बार हैज़ा हो चुका है उनकी प्रवृत्ति दुबारा उसी ओर रहती है जहां जरा भी उसके विष की वायु

लगी कि चट वे उसके चंगुल में फंस जाते हैं। छूत का असर बच्चों और जवानों पर अधिक होता है। बच्चों में भयानक और जवानों में कठिन परिणाम प्रगट होते हैं। स्त्रियों को मर्दों द्वारा प्राय छूतवाले रोग होते हैं। क्योंकि भारतवर्ष की स्त्रियां घर के बाहर कम निकलती हैं। अस्तु; "कन्टेजस" रोग उन्हें कम होते हैं। यदि हो तो उसके दाता उनके पुरुष ही कहे जावेंगे। इसके सिवाय वे ही पुरुष और बच्चे अधिक ग्रसित होते हैं जो मैले, दरिद्र, निर्बल और जो हृदय, गुर्दे, जिगर, और फेफड़े के रोगी हों। अथवा वे जो पेट भर भोजन नहीं पाते। जिन्हें स्वास्थ्य रक्षण के नियमों पर चलना कठिन है या जिन्हें एकवार छूतवाला कोई रोग हो चुका है, जो किसी कल कारखाने या मिल और थियेटरों आदि में नौकरी करते हैं। जिन्हें रोगियों की सेवा आदि करनी पड़ती हो और वे लोग जो किसी तंग कोठरी में बहुत से मनुष्यों के साथ बैठ कर हुक्का आदि पीते हों। जिनको आचार विचार की परवाह नहीं होती और वे लोग जो बुरी या बिगड़ी हुई वायु में रहते हैं। रोग फैलने पर भी जो स्थान नहीं त्यागते। जो नंगे पांव और नंगे बदन घूमते हैं। रोगी के कमरे में जो घुस कर बैठते हैं या उसके हाथ का पान आदि खाते हैं। ऐसों को सहज ही छूतदार रोग हो जाता है।

जब छूत के विष का प्रवेश शरीर में होता है तब उसकी मात्रा बहुत ही स्वल्प (थोड़ी) होती है किन्तु शरीर में या रुधिर में पहुंच कर दुगुनी तिगुनी चौगुनी हो जाती

है। छूतवाले रोग प्राय एक बार और कभी २ दुबारा भी होते हैं।

छूतवाले रोगो के लक्षणो का चार भागों में विभाग कर डालिये तो चार दर्जे हो जावेंगे। अस्तु—

१ दर्जा जिसे पीरिअड आफ लेटेंसी या इनक्युबेशन स्टेज अर्थात विष प्रवेश काल कहते हैं। इसमें विष रुधिर में प्रवेश कर के अपना असर प्रगट करता है। इसकी अवधि २४ घंटे से लेकर २४ दिन तक है। इनके बीच केवल रोगी सुस्त, शिथिल, आलसी हो जाता है। शारीरिक और मानसिक निर्बलता आदि होती है।

२ दर्जा जिसे आक्रमण का दर्जा कहते हैं। इसमें ज्वर आदि लक्षण प्रगट होते हैं।

३ दर्जा ऐरोटिव स्टेज है। अर्थात फुसी आदि शरीर में प्रगट होती हैं।

४ दर्जा क्राइसिस या लाइसिस है। इसमें ज्वर के एक साथ वा धीरे २ उतर जाने से अशुभ लक्षण दूर हो जाते हैं।

परिणाम—छूतवाले रोगों का यदि उचित उपाय किया जाय तो परिणाम प्राय भयानक होता है। यदि "मरी" हो तो घातक होता है। बुड्ढों और बच्चो में तथा निर्बलों में अशुभ है।

बचने का उपाय—प्रत्येक रोगों के साथ लिख आये हैं।

चिकित्सा—ज्वरों के लिये प्राय फीवर मिक्श्चर की आवश्यकता होती है। अस्तु; उसका नुस्खा नीचे लिखते हैं।

फ़ीवर मिक्श्चर = ज्वरमल नाशक नुस्खा।

लाइकर एमोनिया एसीटेटिस २ ड्राम

पुटासी माइड्रास (शोरा)	५ ग्रेन
स्पिरिट इथर नाइट्रोशाई	२० बूंद
एक्वा (पानी) कैम्फर	१ औंस

यह एक मात्रा है । ऐसी मात्रा प्रत्येक २ या ३ घन्टे पीछे ज्वर की प्रबलता में देवे । यदि कब्ज़ हो तो मेगनीशिया सलफास २ ड्राम प्रत्येक मात्रा में मिला कर पिलावे । छूतवाले रोगों में निर्बलता अधिक होती है । अस्तु–निर्बलता दूर करने को नीचे लिखा नुसखा दे–

स्टिम्युलेंट मिक्श्चर, शक्ति सञ्चारक नुसखा ।

ब्राण्डी	२ ड्राम
कार्बोनेट आफ एमोनिया	५ ग्रेन
स्पिरिट क्लोरोफार्म	२० बूंद
टिंकचर सिनूकोना कम्पौंड	२० बूंद
डिकाक्शन सिनकोना	१ औंस

या

स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक	२० बूंद
,, क्लोरोफार्म	२० बूंद
,, ईथर कम्पौंड	२० बूंद
कैम्फर वाटर	१ औंस

दोनों एक मात्रा की हैं ऐसी मात्रा तीन २ या चार २ घन्टे पीछे पिलावे । अंतिम दशा में भी यह नुसखा लाभदायक है ।

" एपिडेमिक कन्टेजस एन्ड इन्फेक्शस डिजीजेज़ "

Epidemic, contageous and infectious diseases

वायु द्वारा और स्पर्श[1] स्पर्श द्वारा होनेवाले छूतवाले रोग।

स्मालपाक्स[2] Small-Pox शीतला।

रोग की परिभाषा—यह एक कठिन घातक छूत दार रोग है जो "कन्टेजस"[3] और "इन्फेक्शस"[4] प्रकार का है। "फोमाइटिस्" के द्वारा भी इसका असर होता है। यह कभी "इन्डेमिक" और कभी "एपिडेमिक"[5] कभी "स्पोरेडिक" होता है। इस रोग में कठिन ज्वर होता है। शरीर पर एक प्रकार के दाने निकलते हैं। इसे हिन्दूस्वामी "शीतला माता" मुसलमान "चेचक" और बंगाली "बसंत रोग" कहते हैं। संस्कृत में इसका नाम विस्फोटक है।

कारण—इस रोग का मुख्य कारण "छूत" है जो रोगी के पसीने स्वास और फुंसी के पीप तथा खुरंड (खुस्की दिछली)

---

१ छूआ छूत।
२ चेचक माता।
३ जिसका असर स्पर्श द्वारा हो।
४ वायु द्वारा जिसका असर हो।
५ वबाई मरी

द्वारा अथवा रोगी के समीप रहनेवाली वस्तुओं द्वारा निरोगी मनुष्यों को लग जाती है। हवा में फैल कर इस रोग की छूत दूर २ तक धावा मारती है। घरों के कड़ी किवाड़े और द्वार दीवारों में यह छूत विद्यमान रहती है। दाने निकलने के समय से ले कर दिल्ली उतरने के समय तक छूत लगने का अधिक डर रहता है। विशेष कर जब दानों में पीब पड़ गई हो तो बहुत ही शीघ्र छूत लग सकती है।

यह रोग एक ही मनुष्य को कई बार होते देखा है। कभी एक ही बार हो कर फिर नहीं होता है। इस रोग के लिये कोई निश्चित समय और वय की आवश्यकता नहीं है। हर एक मनुष्य को हर एक अवस्था में हो सकता है। जो मैले, दरिद्र, दुखी हैं और जिनको "टीका"[1] नहीं लगा है वे इस रोग के पंजे में शीघ्र पड़ जाते हैं। ऐसों में इस रोग का अधिक ज़ोर होता है।

लक्षण—सुगमता से समझने के लिये लक्षण को चार दर्जों में वर्णन करेंगे।

१ दर्जा—अचानक विष जब शरीर में प्रवेश करे वा किया जावे तो ७ दिन और जब वायु द्वारा रुधिर में प्रवेश करे तो १२ दिन तक इस रोग की छूत अपना गुप्त प्रभाव (असर) शरीर के भीतर ही प्रगट करती है। प्रत्यक्ष में केवल रोगी मलीन, सुस्त और आलसी सा दिखाई देता है। इसको आरम्भिक दर्जा वा विषप्रवेश काल कह सकते हैं।

२ दर्जा—इस दर्जे में प्रथम एक साथ जाड़ा दे कर ज्वर चढ़ता है। जो १०४ से १०५ दर्जे, कभी १०६ से भी अधिक बढ़ जाता है। ज्वर के साथ नाड़ी भी स्वाभाविक

[1] माला नहीं छपा है

गति से अधिक बढ़ जाती है। आंखे लाल मुख तमतमाया हुआ और गले की रुधिर की नाली[1] तड़पने लगती है। मस्तक में पीड़ा होती है, शरीर के रग और पट्ठे फड़कने लगते हैं। कोई २ आरम्भ ही से अचेत होने वा बकने झकने लगते हैं। बच्चों में एक प्रकार की ऐंठन जिसे डाक्टरी में "कनवल्शन"[2] (Convulsion) कहते हैं होती है। पीठ की रीढ़ में बहुत दर्द, जो गर्दन से चूतड़ तक फैलती है, रोगी को हिलने डोलने नहीं देती। निर्बलता बढ़ जाती है। आमाशय[3] पर बोझा या दर्द जान पड़ता है। उबकाइयां आती हैं। कभी वमन हो जाता है। इस ज्वर में किसी २ को जुकाम तथा "सोरथ्रोट" Sore throat (कंठ में घाव) हो जाता है। ऐसे ज्वर को प्रारम्भिक ज्वर Primary fever कहते हैं[1]।

३ दर्जा—ज्वर से ३ दिन कभी ४ दिन के बाद फुंसियां निकलनी आरम्भ होती हैं। जो पहिले मुख और मस्तक या हथेली के पीछे, उपरान्त एक दो दिन के पश्चात्, हाथ और पैरों में निकल आती हैं। फुंसियों की संख्या[4] नियत नहीं है, कभी दूर २ कभी पास २ कभी थोड़ी और कभी हज़ारों से ले कर अनगिनती निकलती हैं। बहुत निकट २ होने से आपस में मिल जाती हैं। फुंसियां मुख पर अधिक निकलती हैं।

---

१ कामन क्राटिड् नर्व।
२ यह ऐंठन छोटे२ बच्चों को ज्वर के प्रकोप से होती है।
३ मेदा-जिसमें भोजन पचता है।
४ गिनती।

फुंसियो की दशा और उनमें परिवर्तन।

आदि में त्वचा (चमड़े) पर एक लाल चमकदार त्वचा से कुछ ऊंचा बिंदु प्रगट होता है। दूसरे वा तीसरे दिन यह बिंदु चपटा कठोर उभरा हुआ और छूने से राई या सरसों (कभी २ छोटे छर्रे) की भांति उन्नत जान पड़ता है। इसके उपरान्त इनमें (फुंसियों में) साफ जल भर जाता है। पांचवें दिन दाने के केन्द्र पर एक दबाव (गढ़ा) पड़ जाता है। इस दशा में फुंसी को "अम्ब्लीकेटिड पाक्स" (नाभी की भांति दाने) कहते हैं। इसके उपरान्त दानो के किनारे साफ और उनमें का जल गदला होने लगता है। दाने के चारो ओर लाल घेरा (वृत्त) जान पड़ता है। ज्यों २ पीप पड़ती है दानो का दबाव भी कम होता जाता है और दाना नोकदार हो जाता है। दाने खानदार होते हैं अर्थात् जैसे नारंगी में खाने होते हैं उसी भांति इन दानो में भी खाने होते हैं। यदि सुई से दानो को छेद दें तो कुल जल एक साथ कभी भी नहीं निकलने का। आठवें दिन दाने खूब भर जाते हैं और उनके सिर पर एक काला बिन्दु दिखाई देता है। इसके उपरान्त दाना फूट कर कुछ पीप बह जाती है या सूख कर दिउली[1] बन जाती है। दिउली का रंग भूरा होता है। कोई २ दाने फूटते नहीं वरन मुरझा जाते हैं।

४ दशा—इसमें फुंसियां मुरझाने लगती हैं और दिउली बनने लगती है। ११ से १४ दिन के भीतर दिउली अलग होने लगती है। दिउली के अलग होने पर एक

---

[1] खुरंड-खुरी।

लाल भूरे रंग का निशान रह जाता है। यदि फुंसियां गल जावें तो आरोग्य होने पर गढ़े पड़ जाते हैं।

कठिन लक्षण—इसमें दाने अधिक निकलते हैं और पास २ होने के कारण आपस में मिल जाते हैं। मिलने की जगह सूज जाती है और उस स्थान में तड़प और तनाव बढ़ जाता है। कंठ से ऊपर का कुछ भाग सूज जाता है अर्थात् सिर, मस्तक, पपोटे सूज जाते और आंखें बंद हो जाती हैं। दानों में खुजली, जलन और उनके चमड़े में लाली बढ़ जाती है[१]। रोगी खुजला २ कर घाव कर डालता है। घाव होने से मुख बुरा हो जाता है। इस रोग में कुछ झिल्लियां रोगग्रसित होती हैं जिनके लक्षण अलग २ वर्णन करेंगे।

(क) मुख की लबाबी[२] झिल्ली। जब इस रोग से मुख के भीतर की लबाबी झिल्ली ग्रसित होती है तो गला दुखता है, कोई पथ्य निगला नहीं जाता। मुंह से लार टपकती है। रोगी से बोला नहीं जाता। यह लार बड़ी दुर्गन्धदार है।

(ख) नाक की लुआबी झिल्ली। जब इस रोग का असर नाक की लुआबी झिल्ली पर पहुंचता है तो नाक सूज कर बंद हो जाती है। रोगी मुख से स्वास लेता है।

(ग) आंख की लुआबी झिल्ली। इसके ग्रसित होने से कीचड़ अधिक निकलता है और प्रकाश नहीं सहा जाता। पलक के भीतर दाने निकल आते हैं। आंख का प्रवेत भाग बढ़ जाता या उसमें घाव हो जाता है।

---

१ एक प्रकार की दुर्गन्ध आती है।

२ Mucous Membrane—म्यूकस मेम्ब्रेन।

(घ) आमाशय[1] और आंतों की लसायी झिल्ली। इन झिल्लियों के ग्रसित होने से पाचन शक्ति (हाजमा) बिगड़ जाती है। दस्त आने लगते हैं।

(ङ) मूत्रेंद्रिय (पेशाब) की लुआयी झिल्ली। इनके ग्रसित होने से मूत्र करते समय जलन और चिनग जान पड़ती है। कभी २ मूत्र में रुधिर भी आता है। सूजन के कारण कभी बूंद २ और कभी २ बिलकुल मूत्र बंद हो जाता है।

भेद। यह रोग कारण के अनुसार दो प्रकार का देखा गया है।

१ सरल—इसमें दाने दूर २ और गिनती में कम निकलते हैं। लक्षण भी सरल होते हैं और हानि भी कम होती है। इनको "डिस्टिक्ट स्माल‌पाक्स" और "वेरीओला डिस्क्रीटा" भी कहते हैं।

२ कठिन—इसमें सब लक्षण कठिन और भयानक होते हैं। इसमें दाने बहुत ही समीप २ और गिनती में अधिक होते हैं। दाने आपस में मिल जाते हैं और शीघ्र निकल आते हैं। पहिले छोटी २ फुंसिया जो गिनती में अधिक होती हैं सारे शरीर पर निकल कर फैल जाती हैं। फुंसिया गुच्छेदार और चमड़े से कुछ ऊंची होती हैं। इनमें शीघ्र पीप पड़ जाती है। मुख[2] पर अधिक दाने निकलते हैं। दानों की शक्ल चपटी, फैली और मिल जाने से फफोले की भांति होती है। जल पानी सा या रुधिर मिला हुआ दुर्गन्धित होता है। दानों के चारों ओर लाल घेरा नहीं होता। चारों

---

१ मेदा—भोजन के ठहरने की थैली।

२ मुख ऐसा जान पड़ता है मानो मकड़ी चेहरा लगा है।

ओर की त्वचा (चमड़ा) लाल कालापन लिये होती है। जब दानें सूखने लगते हैं तब बड़े २ काले रंग के नर्म खुरंड (दिउली) निकलते हैं। चमड़ा गल जाता और गाढ़े पड़ जाते हैं। आराम देर में होता है। मुख की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। यदि इसके साथ किसी स्थान की लबाबी झिल्लियां mucous membranes भी रोगी हो जावें तो लक्षण कठिन और कभी २ भयानक प्रगट होते हैं। यह शीतला बड़ी भयानक है। बहुत दिन में आराम होती है। इसके भी दो प्रकार और हैं।

(क)इस प्रकार की शीतला में दाना न तो अधिक दूर २ और न बहुत ही निकट २ होता है। इसको "सिमी-कोनफ्लुएन्ट"[१] कहते हैं।

(ख) इस प्रकार की शीतला में दाने पास २ और मिले होते हैं। अंगूर के गुच्छे की भांति के होते हैं। यह बहुत ही भयानक है। इसके भी दो भेद हैं।

(१) जिसे डाक्टरी में "मेलिगनेन्ट स्मालपाक्स" कहते हैं। इसमें शीतला का असर हृदय पर होता है। फुंसियो के निकलने के पहिले ही रोगी मर जाता है। यह महा कठिन तथा असाध्य है। इसके लक्षणानुसार कई भेद हैं।

(अ) इस प्रकार की शीतला में शरीर के नाना स्थानों से रुधिर निकलता है, यहां तक कि दानों में भी जल के स्थान में रुधिर पाया जाता है। इस में रोगी बहुत ही निर्बल हो जाता है। दाने बहुत देर में और अड़बड़ निकलते हैं। कभी २ दाने दिखाई देकर समा जाते हैं। दानो

१ इस में दाने आपस में नहीं मिलते।

को रङ्गत काली होती है। इसीसे इसे "काली शीतला" Black Pox कहते हैं। रुधिर निकलने के कारण इसे हेमोरेजिक Hæmorrhagic भी कहते हैं।

(ङ) इसमें दाने फूट २ कर घाव बन जाते हैं। जिनसे बुरी सूरत हो जाती है। कभी २ गहरे घाव हो जाते देखे गये हैं। इसे "अल्सरेटिव स्मालपाक्स" कहते हैं।

(च) इसमें दाने गल सड़ कर घाव पड़ जाते हैं। घाव भी सड़े होते हैं। दुर्गंध अधिक होती है। इसे डाक्टरी में "गैंग्रीनस स्मालपाक्स" अर्थात् सड़ी शीतला कहते हैं।

(२) पहिले से सरल है। इसमें न तो दाने सड़ते हैं न घाव ही पड़ते हैं, बरन दाने मुरझा कर सूख जाते हैं। इसको "पूवेरिटिव पाक्स" कहते हैं। टीका लगने के पीछे यह होता है। इसके भी दो भेद हैं।

(अ) "क्रिस्टेलाइन पाक्स"। इसमें आदि से लेकर अंत तक दाने साफ और एक से होते हैं।

(इ) "माडीफाइड स्मालपाक्स"। एक बार हो कर फिर उसी मनुष्य को दुबारा यह रोग हो तो "माडीफाइड" के नाम से पुकारते हैं। कभी २ टीका लगाने के बाद यह होता है। इसमें दिउली उतरने पर न तो निशान रहता है और न इसमें कठिन के समान दुर्गंध होती है। लक्षण बहुत ही अल्प तथा साधारण होते हैं।

संयुक्त रोग-इस रोग की बहुत से रोगों से मित्रता है। इसके मित्र शरीर पर सिर से पैर तक अधिकार जमा लेते हैं। एक ही रोगी पर सब रोग एक साथ प्राय कम देखे गये हैं।

(१) मस्तक और मुख—इन पर छूत का नतीजा "एरीसिपेलस", और "इक्ज़ीमा" (छाजन) "एकथाइमा" होता देखा गया है।

(२) आंख—आंख में सूजन, और आख के श्वेत भाग (Cornea कार्निया) में घाव हो जाता है।

(३) कान—ओटाइटिस otitis (कान की सूजन), ओटोरिया otorrhœa कान बहना, कभी केरीज़ carose कान की हड्डी में सुर्दारी, आदि कर्ण रोग हो जाते हैं।

(४) नाक—बासा सड़ कर बैठ जाता है या गल कर गिर पड़ता है।

(५) श्वासेन्द्रिय के रोग—"एडीमा आफ दी ग्लाटिडस" (हलक की सूजन) "ब्राकाइटिस" (साधारण खासी) "न्यूमोनिया" (फेफड़े की सूजन = जैसुलरियाह) "प्लयूरसी" (फेफड़े की झिल्ली की सूजन) आदि।

(६) "एलिमेन्टरी केनाल"[१] के रोग। इसमें जीभ की सूजन, आमाशय में और अँतड़ियों में सूजन, "डायरिया" (पेट चलना) आदि रोग होते हैं।

(७) "कजेश्चन आफ दी किडनी" गुर्दे में खून जमना, या "अलसर आफ दी किडनी" (गुर्दे में घाव होना), "ब्राइट्स डिज़ीज़" (ब्राइट साहब द्वारा परीक्षित गुर्दे के रोग) आदि।

(८) मूत्राशय (पेशाबदान) के रोग—सिस्टाइटिस मूत्राशय (मसाने) की सूजन, "रिटेंशन" व "इनकान्टिनेन्स आफ यूरिन" (मूत्र का बूंद २ या कष्ट के साथ निकलना) आदि रोग हो जाते हैं।

---

१ भोजन की नाली जो मुख से लेकर गुदा तक बनी है।

९ जनरेटिव आर्गेंस के रोग—भग, लिङ्ग या अन्य गुप्त विभागों में सूजन, स्त्रियो में लेबिया (भग का बाहरी भाग) और पुरुषों में अंड कोश का सड़ना आदि प्रधान हैं।

इनके सिवाय जिन २ स्थानो में दबाव पड़े उन २ स्थानो में सूजन, घाव, अदृश्य फोड़े, और ऐसे फोड़ों का, जिनमें लोहू मिली हुई दुर्गंधित पीब भरी होती है, निकलना।

(१०) सड़न—इस रोग में सारा शरीर सड़ जाता है, इसको "सेप्टीसीमिया" कहते हैं।

(११) रक्त स्राव-Hæmorrhage शरीर के विविध भागो से लोहू बहता है, यथा भग, गर्भाशय, मुख, नाक, और गुदा आदि से रक्तस्राव (सैलामेञ्जून) होता है।

(१२) पेट के अस्तर करने वाली झिल्ली (प्रिटोनियम) में सूजन होना।

परिणाम—परिणाम कठिन है। यदि तीन रोगी हों तो एक अवश्य मर जावेगा। पांच वर्ष से कम उम्र वाले लड़के और अधेड़ मनुष्य अधिक मरते हैं। दाने कम और दूर २ हों, ज्वर कम हो, निर्बलता अधिक न बढ़े, फुंसिया अच्छी तरह भर जावे, दाने एक दम निकल कर बैठ न जावें और न काले पड़ें और न सड़ें, तो परिणाम शुभ है। इसके विपरीत अशुभ है। कभी २ शीतला गर्भ के बालक को भी निकल जाती है। ऐसी अवस्था में गर्भ गिर पड़ता है।

चिकित्सा—चिकित्सा दो प्रकार की है। (१) रोग न होने पावे इसका उपाय (२) होने पर इस रोग से रक्षा पाने का उपाय।

(१) बचने का उपाय। भारतवासियो का विश्वास है

कि यह रोग रोग नहीं हैं किन्तु माता (देवी) जी की कृपा है। अस्तु वे इसकी शान्ति के लिये पाठ, होम, पूजा, व्रत, झाड़फूंक ही किया करते हैं। तब एक बात इनमें बहुत ही उत्तम पाई जाती है। वह यह कि शीतला के रोगी के पास ये किसी को आने जाने नहीं देते, और न शीतला का मुर्दा ही ये जलाने को उठाते हैं। वरन मुर्दे को जल प्रवाह कर देते हैं। यह प्रथा (रीति) इस रोग से बचने के लिये बहुत अच्छी है। क्योंकि यह बड़ा भयकर रोग है, मरी काल में यह न बूढ़ा देखे न जवान, लड़का देखे न सयान, न स्त्री देखे न पुरुष, जिसे पकड़ा उसकी कुछ न कुछ हानि अवश्य करके छोड़ता है। घर में एक को होते ही सब के सब कभी २ ग्रसित हो जाते हैं। देखते २ यह बस्तियों को जनशून्य कर डालता है। नगर का नगर उजड़ जाता है। बच्चो के लिये यह वैसा ही है जैसा जवानो के लिए प्लेग। अस्तु इससे बचने के लिये निम्न लिखित बातो पर ध्यान रखना उचित है।

(१) जहां अधिक मनुष्य इकट्ठे हों वहां, जैसे मेले, तमाशे या तीर्थों और थियेटरों में, न जावें, किसी तंग कोठरी में बहुत मनुष्यों के साथ न बैठें, और न किसी की दी हुई कोई वस्तु व्यवहार में लावें।

(२) किसी रोगी इष्ट मित्र को देखने जावें तो दूर से देखें और बात चीत करें। उसके कमरे की कुर्सी, दरी, पलंग आदि पर न बैठें। जितना समय वहां लगे उतने समय तक कमरे के किंवाड़ और खिड़कियें खुली रक्खें।

(३) जब इस रोग की मरी (बबा) फैली हो, तब बाल बच्चों को किसी दूसरे स्थान में जहां इस रोग की मरी न हो भेज दें।

(४) मरी काल में अपने कपड़े साफ रक्खें और जब बाहर से घर आने लगे तो कुल कपड़े किसी बाहर की कोठरी में उतार कर, हाथ पैर धो कर और दूसरे साफ कपड़े बदल कर, तब बाल बच्चों को छुए।

(५) यदि कोई घर में रोगी हो तो बच्चों को दूर रक्खें। कोई स्त्री यदि गर्भवती हो तो उसे अवश्य दूसरे स्थान में भेज दें। जिस कमरे में रोगी हो वहां कोई चीज न रक्खें। असबाब, मेज़, कुर्सी, दरी, बिछौने आदि सब अलग उठा कर धरें।

(६) रोगी के आरोग्य होने पर, मकान की सफाई करें। कच्चे मकान को गोबर और मिट्टी से और पक्के मकान को चूने से लिपवावें पुतवावें। कड़ी किवाड़ों में अलकतरा लगावें। पक्के मकानों की गच आदि छूतनाशक जल (डिस इनफेक्टिङ् लोशन) द्वारा शुद्ध करें। और कच्चे मकानों की पृथ्वी एक फुट खोद कर बस्ती से दूर फिकवावें, उपरान्त छूतनाशक जल द्वारा खोदे हुए स्थानों को शुद्ध करें। रोगी के बिछौने ओढ़ने तथा पहिरने के कपड़े यदि सूती हों तो जला दें और ऊनी हों तो घाम में सुखावें या उन्हें डिस इनफेक्ट करें।

(७) मरी काल में स्वास्थ्यरक्षण के नियमों का पालन करते रहें।

आरोग्य होने पर बलकारक औषधि की आवश्यकता होती है। अस्तु, नीचे का नुसख़ा इस समय देना उचित है।

टानिक मिक्श्चर—बलकारक नुसखा।

क्विनाइन सल्फास २ ग्रेन

एसिड नाइट्रो-हैड्रोक्लोरिक, डाइल्यूट	१० बूंद
लाइकर स्ट्रेकनिया	५ बूंद
टिंकचर जिंजर	१० बूंद
पानी या इनफ्यूज़न क्वासिया	१ औंस

यह एक मात्रा है। ऐसी ३ मात्रा दिन में तीन बार देवे।

या

टिंक्चर स्टील	१० बूंद
लाइकर स्ट्रेक्निया	५ बूंद
इनफ्यूजन क्वासिया या पानी	१ औंस

यह एक मात्रा है। ऐसी दो मात्रा भोजन के पश्चात् दे। मछली का तेल आदि भी दे सकते हैं। "ईस्टन" साहेब का सिरप पिला सकते हैं।

नींद लाने का नुसख़ा।

क्लोरल हैड्रेट्	२० ग्रेन
ब्रोमाइड आफ पोटासियम	२० ग्रेन
शरबत	१ औंस
पानी	१ औंस

रातको सोते वक्त दे। या

लाइकर मारफिया[1]	२० बूंद
पानी	१ औंस

मिलाकर रात में दे। (जिसमें अफीम मना की गई हो उसमें यह नुसख़ा न दे। ऊपर का नुसखा दे।)

सल्फोनल २० ग्रेन या डोवर्स पौडर १० ग्रेन नींद लाने को दे।

---

१ यह औषध पीड़ा हरने को भी दे सकते हैं।

एन्टी-सेप्टिक् लोशन। (छूत नाशक अर्क।)

मरक्यूरी लोशन (पारे का पानी)

हैड्राजं परक्लोराइड	८$\frac{१}{४}$ ग्रेन
ग्लिसरीन	जितना लगे।

दोनों को खरल में खूब घोंटे। पीछे एक पाइंट गर्म जल मिलावे तो $\frac{१}{१०००}$ भागवाला लोशन होगा। हाथों और घावों या अन्य वस्तुओं को शुद्ध करने के लिये काम आता है।

कान्डीज लोशन।

परमैंगनेट आफ पोटाश	१ ड्राम
पानी	१ पाइंट

यह भी छूत दूर करने के काम आता है।

कार्बोलिक लोशन।

एसिड कार्बोलिक	६$\frac{१}{४}$ ड्राम
गरम जल	१ पाइन्ट

मिलाने से $\frac{१}{१०००}$ भागवाला लोशन होगा। इसे भी छूत का नाश करने को हाथ आदि के धोने के लिये काम में लाते हैं।

क्रोटन लोशन।

क्रोटन	१ ड्राम
पानी	१ पाइन्ट

मिला कर पाखाना, मोरी, हौद आदि साफ करते हैं।

कार्बोलिक आयल।

एसिड कार्बोलिक	४० ग्रेन
मीठा तेल	१ औंस

मिला कर बना ले। यह देह या हाथों में लगाने के लिये अच्छा है। घावो पर भी लगा सकते हैं।

मुख की दुर्गंध दूर करने को
भाफ़ लेने का नुकशा

आइल आफ यूकेलिप्टस	१ या २ बूंद
खौलता हुआ जल	१० औंस

स्प्रे में डाल कर मुख में भाफ ले। यह क्षयी और डिफ थीरिया में अच्छा है।

या

कार्बोलिक एसिड	१ या २ बूंद
खौलता हुआ जल	१० औंस

या

क्रियोजोट	२ बूंद
खौलता हुआ पानी	१० औंस

मिलाकर "स्प्रे" द्वारा कंठ में भाफ ले।

या

तारपीन का तेल	५ बूंद
पानी खौलता हुआ	१० औंस

मिलाकर कंठ या नाक में भाफ ले। यह खांसी, कंठ की सूजन, मुख की दुर्गंधि आदि में लाभकारी है।

नोट—भाफ लेने की विधि को "इनहेलेशन" Inhalation कहते हैं।

नाप का नकशा

मिनम, ग्रेन, औंस आदि समझने के [illegible] लिखते हैं जिससे औषधियो का नाप [illegible] समझ में आ जावे।

अंग्रेजी बड़े बांटो का नक्शा।



lb. पौंड	Oz. औंस	gr (Grain) ग्रेन
१	१६	७०००
	८	३५००
	४	१७५०
	२	८७५
	१	४३७.५ या ४३७½
	½	२१८.७५
	¼	१०९.३७५

हिन्दुस्तानी तौल से अंग्रेज़ी तौल की बराबरी।

सेर	छटांक	तोला	माशा	रत्ती	पौंड	औंस	एपाथिकरीज़ तौल			
							पौंड	औंस	ड्राम	ग्रेन
१	१६	८०	९६०	७६८०	२ पौंड ४०० ग्रेन	३२ औंस ४०० ग्रेन	२½	२०	२४०	१४४००
	१	५	६०	४८०	•	२ औंस २५ ग्रेन			१५	९००
		१	१२	९६					३	१८०=एक चेहरेदार रुपया
			१	८					१/८	१५
				१					१ ८७५	

पनीली चीजों की नाप का नक्शा ।

Cj गैलन	Oj. पाइन्ट	oz. = ℥ औंस	Dr = ʒ ड्राम	m मिनम
१	८	१६०	१२८०	७६८००
	१	२०	१६०	९६००
		१	८	४८०
			१	६०

नोट—मिनम को बूंद समझना बड़ी भूल है क्योंकि एक बूंद एक मिनम के तीसरे हिस्से से डेढ़ मिनम तक होता है। हमने इस लेख के नुसखों में मिनम के स्थान में बूंद लिखा है, किन्तु उसे मिनम ही समझना चाहिये।

इस से बचने का सहज उपाय "इनआक्युलेशन" है। यह विधि प्राचीनकाल में प्रचलित थी। इसमें शीतला का विष नीरोग मनुष्य के शरीर में पहुचाते थे जिससे इस रोग की आशंका दूर हो जाती थी। प्राचीन काल में शीतला नामी एक स्त्री ने इस विधि को प्रचलित किया था। इससे वह बड़ी पूजनीया हो गई थी। उसी की पूजा आज दिन भी भारतवासी, विशेष कर स्त्रियां, करती हैं। इस विधि से साधारण शीतला के लक्षण प्रगट होते थे। किन्तु इस विधि में यह दोष था कि कभी २ शीतला मरी की भांति फैल जाती थी जिस से बड़ी हानि होती थी।

एक यूरोपीय डाक्टर ने १७७७ ई० में एक नई तरकीब निकाली जिस को "वैक्सीनेशन" कहते हैं। डाक्टर का नाम जेनर साहब था। जेनर साहेब एक दिन शिकार को गये। वहां एक चरवाहा बहुत सी गायो को जंगल में चराता था। डाक्टर जैनर जब चरवाहे के पास पहुचे तो देखा कि उसके सारे शरीर में शीतला निकली है। साथही उनकी दृष्टि एक गाय पर पड़ी जिस के भी शरीर में दाने थे। डाक्टर साहब शिकार की चिन्ता छोड़कर इस रोग की परीक्षा में लग गये। गाय की परीक्षा करते समय उन्हें विश्वास हो गया कि यह रोग गाय बैल आदि से ही उत्पन्न होता है। अस्तु—डाक्टर ने एक गाय के थन के दाने से कुछ अंश लिया और शहर में आकर एक तन्दुरुस्त मनुष्य की बांह में गोद कर वही पहुचाया। दो एक दिन में वहां लाली सूजन (जैसा शीतला में प्रथम २ लक्षण उदय होते हैं) उदय हुई। फिर उस मनुष्य के दाने से कुछ अंश लेकर और एक दूसरे निरोगी

मनुष्य की भुजा में दाख़िल किया तो उसे भी वैसे ही लक्षण प्रगट हुए जैसे कि पहिले मनुष्य को हुए थे। फिर क्या था, फिर तो हज़ारों पर उन्होंने इस कार्य को किया और पूरी सफलता लाभ की। जिन पर यह कार्य किया गया वे शीतला रोग से बच गये। सुनते हैं कि इस नवीन रीति से प्रसन्न हो सरकार ने एक लाख रुपया डाक्टर साहब को पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया। जब से यह टीका प्रचलित हुआ है तब से शीतला रोग भारत वर्ष में बहुत घट गया। टीका लगे हुए मनुष्यों को प्रथम तो यह रोग होता नहीं और यदि हो भी तो सरल (मोडीफाइड) प्रकार का होता है। पहिले की भांति भयानक नहीं होता।

टीका लगाने पर हलका ज्वर होता है जो तीन चार दिन तक रहता है, और किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता। तीन चार दिन के पीछे जहां टीका लगा हो वहां एक फुंसी निकलती है। इसी दशा में यदि शीतला निकल आवे तो दाने बहुत कमज़ोर और बहुत जल्द सूख जाने वाले होते हैं। पीप पड़ जावे तो छै या सात दिन में आरोग्य हो जाता है।

कौन सी दशाओं में टीका नहीं लगाना चाहिये? जब बच्चे को दांत निकलते हों या दांतों के कारण पतले दस्त होते हों, ज्वर आता हो, बच्चा बहुत ही निर्बल हो, वा चर्म रोग आदि से पीड़ित हो, तो टीका अच्छे होने पर लगावें।

टीका लगाने से हानि—जब एक बच्चे की पीप दूसरे बच्चे में पहुंचाई जावे तो सम्भव है कि पहिले बच्चे के पैतृक रोग दूसरे में भी प्रवेश कर जावें। अर्थात् एक लड़के के बाप को गर्मी, कोढ़, कंठमाला, वा क्षय आदि रोग हुए थे और उन

रोगों का असर वीर्य द्वारा उस बच्चे के रुधिर में विद्यमान था। अब उस बच्चे का लिम्फ (टीके की पीप) जब दूसरे निरोगी बच्चे की भुजा में पहुचायेंगे तब ऊपर कहे हुए पहिले बच्चे के पैतृक रोग अवश्य दूसरे बच्चे के रुधिर में प्रवेश कर जायेंगे। इस दोष को अब सभी विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। इसी से सरकार ने अब शहरों के लड़कों के लिये गोधन की शीतला का अब प्रचार किया है। कारण कि शहरों के लड़के गाँवों के लड़कों की अपेक्षा छूत तथा पैतृक रोगों के अधिक भागी होते हैं। सरकार यदि गाँवों में भी गोधन के टीके (Cowpox) का प्रचार कर दे तो इस विषम हानि से बहुत ही रक्षा हो।

रोगी होने पर इस रोग से रक्षा पाना।

रोगी को सब से अलग साफ कमरे में साफ बिस्तर पर लिटावें। हकीम, वैद्य, और टहलुए इस रोग की छूत से अपने को बचाकर रोगी की सेवा करें। फुंसियों के निकलने से पहिले ज्वर की साधारण चिकित्सा करें। चिकित्सा में मुख्य नियम ये हैं—

पहिला—खुजली को कम करें और रोगी को खुजलाने न दें। इस कार्य के लिए गुनगुने पानी में "स्पञ्ज" या तौलिया भिगो कर शरीर को पोछें। या कोई सूखा चूर्ण जैसे आटा, या आटे का गूदा, (स्टार्च) हेयर पौडर, जली हुई कण्डी की राख आदि छिड़कें। बच्चों के हाथों में थैली सी कर पहिरावें जिससे वे खुजलाने न पावें।

दूसरा—दाग न पड़ने पावे इस कार्य के लिए प्रथम मुख के दानों को सुई से छेद कर पीप निकाल दें। इस विधि

के करने से दाग नहीं पड़ने पाते। नुसखे जो इस काम के लिये बर्ते जाते हैं नीचे लिखे जाते हैं।

नाइट्रेट आफ सिलवर—१० ग्रेन
गुलाब जल–१ औंस
मिलाकर फुरेरी के द्वारा फुंसियों पर लगावें। या

पारे का मरहम–२५ भाग
मोम–१० भाग
अलकतरा–६ भाग
मिलाकर फुंसियों पर लगावें।

कार्बोलिक एसिड ४० बूंद एक औंस जैतून के तेल में मिला कर लगावें। कार्बोलिक लोशन या कांडीज़ लोशन, सलफ्युरस एसिड, कार्बोनिक एसिड और क्लोरिन वाटर आदि गुनगुने पानी में मिलाकर शरीर को पोंछें।

गंधक एक ड्राम, मक्खन एक औंस, मिलाकर लगावें। इन दवाओं के लगाने से फुंसियां वायु से बची रहती हैं, और उनमें जलन आदि नहीं होती। बदबू और खुजलाहट दूर करने को नीचे लिखा नुस्खा बहुत लाभदायक है।

आयडोफार्म–३० ग्रेन
कैम्फर (कपूर)–४० ग्रेन
वेसलीन–६०० ग्रेन
मिलाकर दानों पर लगावें। या

कपूर–२ ड्राम
तिल्ली वा जैतून का तेल–२ औंस
मिलाकर सारे शरीर पर लगावें। या जैतून के तेल में कैलोमिल मिलाकर लगावें। जब निर्बलता अधिक हो तो

सोडा मिश्रित औषधियां, मदिरा, एमोनिया मिक्श्चर, आदि दें। गले में दर्द हो तो—

टिक्चर मुर–१ औंस
मधु (शहद)–१ औंस
गुलाब जल–८ औंस
मिलाकर कुल्ली करावें।

आंखों को ठंडे जल से साफ करते रहें। पानी में रस कपूर या फिटकरी मिलाकर आंख में डालें या कपड़ा भिगो कर ऊपर रक्खें। दानों में छिलली निकलने के बाद घाव हो तो आक्साइड आफ ज़िंक घी में मिलाकर लगावें। आरोग्य होने पर कार्बोलिक सोप लगाकर स्नान करावें। मीठा तेल या मक्खन लगावें। कोनैन, नाइट्रो-म्यूरएटिक एसिड, चिरायता, या क्वासिया, के पानी में मिलाकर पिलावें। या मछली का तेल पिलावें। हलका पथ्य, जैसे दूध, शोरवा, पतली सेगो, आदि खाने को दें। आंख में घाव हो तो कास्टिक लोशन डालें। स्वास्थ्य रक्षण पर पूरा ध्यान रक्खें।

—0—

२ चिकिन पाक्स-CHICKEN POX-वेरीसिला।

यह भी एक प्रकार का छूत दार रोग है। इसमें भी साफ दाने शरीर पर निकल आते हैं। इसे भारतवासी मोतिया शीतला या 'दुलारी माता' कहते हैं। यह बारह वर्ष से कम उम्र वालों को होता है। कभी एक बार और कभी दुबारा भी होता है। जवान मनुष्य और स्त्रियों को भी कभी २ सताता है।

कारण—पुराने लोगो का ध्यान था कि यह भी एक प्रकार की शीतला है, किन्तु परीक्षा ने इस पुराने विचार को असिद्ध ठहराया और यह सिद्ध किया कि शीतला से इस रोग का कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यद्यपि यह रोग भी शीतला की भांति वायु द्वारा और स्पर्शास्पर्श द्वारा, दोनों प्रकारों से, आक्रमण करता है और वैसा ही छूत दार भी है, तथापि इसको शीतला नहीं कह सकते । क्योंकि इसके विष में और शीतला के विष में बहुत ही अन्तर है।

लक्षण— लक्षणों को दो दर्जों में वर्णन करेंगे।

१ सरल—तीन चार दिन तक कोई मुख्य लक्षण नहीं प्रगट होता, पीछे सरल ज्वर होता है। ज्वर के २४ घन्टे या ३६ घन्टे पीछे पहिले छाती और कन्धों पर, फिर हाथ और पैरों में, एक के पीछे एक, साफ दाने या लाल चमकदार फुंसियां निकलती हैं। कभी २ सिर पर भी निकलती हैं। इन दानों में कठोरता नहीं होती, और न मुख पर इनकी अधिकता होती है। फुंसियों को यदि उंगली से दबावें तो लाली दूर हो जाती है किन्तु हटाने से फिर ज्यों की त्यो हो जाती है। कुछ २ मस्तक में पीड़ा और खांसी के सिवाय और कोई शारीरिक क्लेश नहीं होता। दाने गोल अंडे की भांति के होते हैं। और इनके चारों ओर शीतला की भांति लाल घेरा नहीं होता। जब जल गदला होता है तब कुछ लाली दिखाई देती है। शीतला की भांति न तो इसके दाने ख़ानेदार होते हैं, और न इनमें गढ़ा पड़ता है। छेद करते ही कुल जल निकल जाता है। तीसरे दिन से पांचवें दिन के भीतर दाने फूट कर पतली छिल्ली, पूरी या टुकड़े २

लोहा मिश्रित औषधियां, मदिरा, एमोनिया मिक्शर, आदि दें। गले में दर्द हो तो—

टिक्चर मुर–१ औंस
मधु (शहद)–१ औंस
गुलाब जल–८ औंस
मिलाकर कुल्ली करावें।

आंखों को ठंडे जल से साफ करते रहें। पानी में रस कपूर या फिटकरी मिलाकर आंख में डालें या कपड़ा भिगो कर ऊपर रक्खें। दानों में छिलकी निकलने के बाद घाव हो तो आक्साइड आफ ज़िंक घी में मिलाकर लगावें। आरोग्य होने पर कार्बोलिक सोप लगाकर स्नान करावें। मीठा तेल या मक्खन लगावें। कोनैन, नाइट्रो-म्यूरएटिक एसिड, चिरा-यता, या क्वासिया, के पानी में मिलाकर पिलावें। या मछली का तेल पिलावें। हलका पथ्य, जैसे दूध, शोरवा, यखनी सैगो, आदि खाने को दें। आंख में घाव हो तो कास्टिक लोशन डालें। स्वास्थ्य रक्षण पर पूरा ध्यान रक्खें।

— 0 —

२ चिकिन पाक्स-CHICKEN POX-वेरीसिला।

यह भी एक प्रकार का छूत दार रोग है। इसमें भी—साफ दाने शरीर पर निकल आते हैं। इसे भारतवासी मोतिया शीतला या 'दुलारी माता' कहते हैं। यह बारह वर्ष से कम उम्र वालों को होता है। कभी एक बार और कभी दुबारा भी होता है। जवान मनुष्य और स्त्रियों को भी कभी २ सताता है।

कारण—पुराने लोगो का ध्यान था कि यह भी एक प्रकार की शीतला है, किन्तु परीक्षा ने इस पुराने विचार को असिद्ध ठहराया और यह सिद्ध किया कि शीतला से इस रोग का कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यद्यपि यह रोग भी शीतला की भांति वायु द्वारा और स्पर्शास्पर्श द्वारा, दोनों प्रकारों से, आक्रमण करता है और वैसा ही छूत दार भी है, तथापि इसको शीतला नहीं कह सकते । क्योंकि इसके विष में और शीतला के विष में बहुत ही अन्तर है ।

लक्षण— लक्षणों को दो दर्जों में वर्णन करेंगे ।

१ सरल—तीन चार दिन तक कोई मुख्य लक्षण नहीं प्रगट होता, पीछे सरल ज्वर होता है । ज्वर के २४ घन्टे या ३६ घन्टे पीछे पहिले छाती और कधों पर, फिर हाथ और पैरों में, एक के पीछे एक, साफ दाने या लाल चमकदार फुंसियां निकलती हैं । कभी २ सिर पर भी निकलती हैं । इन दानों में कठोरता नहीं होती, और न मुख पर इनकी अधिकता होती है । फुंसियों को यदि उंगली से दबावें तो लाली दूर हो जाती है किन्तु हटाने से फिर ज्यों की त्यों हो जाती है । कुछ २ मस्तक में पीड़ा और खांसी के सिवाय और कोई शारीरिक क्लेश नहीं होता। दाने गोल मोती की भांति के होते हैं । और इनके चारों ओर शीतला की भांति लाल घेरा नहीं होता । जब जल गदला होता है तब कुछ लाली दिखाई देती है । शीतला की भांति न तो इसके दाने खानेदार होते हैं, और न इनमें गड्ढा पड़ता है । छेद करते ही कुछ जल निकल जाता है । तीसरे दिन से पांचवें दिन के भीतर दाने फूट कर पतली दिपली, पूरी या टुकड़े २

हो कर, निकल जाती है। और चमकदार गड्ढे की भांति का दाग़ शेष रहता है इसमें भी खुजली बहुत होती है और खुजलाने से घाव भी हो जाता है। कभी २ फुंसिया कई किस्म की निकलती देखी गई हैं।

२ कठिन—जब यह रोग कठिन प्रकार का होता है तो दाने अधिक और पास २ निकलते हैं। दानो की रंगत जले हुए फफोलो की भांति की होती है। दाने दस बारह दिन तक निकलते और गायब होते रहते हैं। खांसी ज्वर कुछ अधिक हो जाते हैं। कुशल इतना ही है कि इस के फल से अन्य रोग नहीं होते।

परिणाम—अच्छा है।

चिकित्सा—दोनों प्रकारों की चिकित्सा, जैसा शीतला में बता आए हैं, इसमें भी करें। खांसी में लिसोड़े की माजून चटाया करें। निर्बलता की यथोचित चिकित्सा करें। हलका पथ्य दें। फुंसी टूटने न पावे इसका ध्यान रक्खें।

मीज़िल्स MEASLES—खसरा।

यह बहुत ही छूतदार रोग है। इसमें लाल फुंसियां सारे शरीर में निकलती हैं। इसे पूरब में 'कजिया पजिया माता' कहते हैं और लाटिन में 'रूबीओला' या 'मार्बीलाई' कहते हैं। इस रोग में जुकाम होता है और श्वासेन्द्रिय की झुमावी झिल्ली सूज जाती है। यह रोग लड़कों को, जिनकी उम्र दो वर्ष से पांच या सात वर्ष की है, अधिक होता है। कभी २ यह हर एक को हर उम्र में होता देखा गया है।

कारण—छूत लगने से यह रोग होता है। यह छूत रोगी के शरीर से भाफ की भांति उड़ती है, कभी २ यह

नहीं की भांति फैलती है। घर में यदि एक बच्चे को हो तो और बच्चे भी इस रोग में ग्रसित हो जाते हैं। यदि सावधानी न की जावे तो अड़ोस पड़ोस के बच्चे भी रोगी हो सकते हैं। बड़ी अवस्था वाले मनुष्य भी ग्रसित हो जाते हैं।

भेद—इसके दो भेद हैं (१) सरल (२) कठिन।

लक्षण—(१) सरल—जब इस रोग की छूत लगती है तो दस बारह दिन तक कोई लक्षण नहीं प्रगट होता। केवल कुछ खांसी आया करती है, उपरान्त जाड़ा देकर साधारण ज्वर चढ़ता है जो १०१ या १०२ १०३ दर्जे तक का होता है। माथा भारी होता और दर्द करता है। जुकाम के चिन्ह प्रगट होते हैं। आंखों के पपोटे लाल सूजे हुए और नाक आंखों से से पानी बहता है। छींकें आती हैं। कभी २ नाक से लोहू भी निकलता है। गले में खरखराहट और दर्द होता है। कंठ से आवाज़ भारी निकलती है। देखने से कंठ लाल और कौवा लटका दिखाई देता है। खांसी ठहर २ कर बराबर होती रहती है। रोगी चिड़चिड़ा हो जाता है। बच्चों में रात को कनवलशन Convulsion (एक मुख्य प्रकार की ऐंठन) होती है। किसी २ के पेट में भारीपन या दर्द होता है। वमन भी होता है।

ज्वर से चार दिन या छ दिन, कभी इससे भी अधिक समय में, प्रथम मस्तक पर, उपरान्त छाती और हाथ पैरों में, छोटे २ नाना भांति के कड़े और लाल बिंदु निकलते हैं। दाने कोई लाल कोई गुलाबी या लाल काले या लाल पीले रंग के होते हैं। रंगत दबाने से दूर और दबाव हटाने से ज्यों की त्यों हो जाती है। बारह घंटे तक ये दाने बराबर

निकलते और बढ़ते रहते हैं, एक दूसरे से ये दाने यों मिलते हैं कि दूज के चन्द्रमा की शक्ल बन जाती है। लेकिन जब अधिक दाने निकलें तो कोई शक्ल नहीं जान पड़ती। कभी २ टीके के समान या चकते की भांति के दिखाई देते हैं। किन्तु यह उसी समय जब कि दाने बहुत ही अधिक निकले हों। जब यह मुरझाने लगते हैं तो जिल्द की रंगत तांबे के सदृश हो जाती है। और भूसी बहने लगती है। किसी २ के चमड़े में जलन और दर्द होता है। हाथ और कान के भीतर सूजन फैल जाती है। किसी २ को इसके फल से बहुत समय तक दस्त आने लगते हैं। मुद्दत इसकी १२ घंटे से लेकर ४ दिन तक है।

सम्मिलित रोग—"क्रूप" (एक प्रकार की खांसी) "डिफ्थीरिया" (कंठ में फूटी झिल्ली उत्पन्न होने का रोग) "ब्रोंकाइटिस" (खांसी) "केपलरी ब्रोंकाइटिस" (फेफड़े की पतली २ लोहू की रगों की सूजन) "ब्रोंको न्यूमोनिया" "लाब्यूलर न्यूमोनिया" (फेफड़े के लोथड़ों की सूजन) "कोलेप्स" (ठंढा पड़ जाना) "थाइसिस" (क्षयी) आदि रोग इस रोग से आ मिलते हैं।

परिणाम—परिणाम उस दशा में जब कि ऊपर कहे सम्मिलित रोग न आ मिले हों तो अच्छा है।

२ कठिन (मेलिगनैन्ट[१])-लक्षण-आदि से ही इसमें अशुभ लक्षण उदय होते हैं। सब लक्षण सन्निपातिक (टाईफाइड) होते हैं। इस रोग में फेफड़े में लोहू जम जाता है या फेफड़ा

१ इसको भाषावाले हेमोरेजिक-हेमोरेजिक--और विलियक भी कहते हैं।

मनुष्य की भुजा में दाखिल किया तो उसे भी वैसे ही लक्षण प्रगट हुए जैसे कि पहिले मनुष्य को हुए थे। फिर क्या था, फिर तो हजारों पर उन्होंने इस कार्य को किया और पूरी सफलता लाभ की। जिन पर यह कार्य किया गया वे शीतला रोग से बच गये। सुनते हैं कि इस नवीन रीति से प्रसन्न हो सरकार ने एक लाख रुपया डाक्टर साहब को पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया। जब से यह टीका प्रचलित हुआ है तब से शीतला रोग भारत वर्ष में बहुत घट गया। टीका लगे हुए मनुष्यों को प्रथम तो यह रोग होता नहीं और यदि हो भी तो सरल (मोडीफाइड) प्रकार का होता है। पहिले की भांति भयातिक नहीं होता।

टीका लगाने पर हलका ज्वर होता है जो तीन चार दिन तक रहता है, और किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता। तीन चार दिन के पीछे जहां टीका लगा हो वहां एक फुंसी निकलती है। इसी दशा में यदि शीतला निकल आवे तो दाने बहुत कमज़ोर और बहुत जल्द सूख जाने वाले होते हैं। पीप पड़ जावे तो छै या सात दिन में आरोग्य हो जाता है।

कौन सी दशाओं में टीका नहीं लगाना चाहिये ?
जब बच्चे के दांत निकलते हों या दांतों के कारण पतले दस्त होते हों, ज्वर आता हो, बच्चा बहुत ही निर्बल हो, या चर्म रोग आदि से पीड़ित हो, तो टीका अच्छे होने पर लगावें।

टीका लगाने से हानि—जब एक बच्चे की पीप दूसरे बच्चे में पहुंचाई जावे तो सम्भव है कि पहिले बच्चे के पैतृक रोग दूसरे में भी प्रवेश कर जावें। अर्थात् एक लड़के के बाप को गर्मी, कोढ़, कंठमाला, या क्षय आदि रोग हुए थे और उन

रोगों का असर वीर्य द्वारा उस बच्चे के रुधिर में विद्यमान था। अब उस बच्चे का लिम्फ (टीके की पीप) जब दूसरे निरोगी बच्चे की भुजा में पहुंचायेंगे तब ऊपर कहे हुए पहिले बच्चे के पैतृक रोग अवश्य दूसरे बच्चे के रुधिर में प्रवेश कर जायेंगे। इस दोष को अब सभी विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। इसी से सरकार ने अब शहरो के लड़को के लिये गोथन की शीतला का अंश प्रचार किया है। कारण कि शहरो के लड़के गांवों के लड़को की अपेक्षा छूत तथा पैतृक रोगो के अधिक भागी होते हैं। सरकार यदि गांवो में भी गोथन के टीके (Cowpox) का प्रचार कर दे तो इस विषम हानि से बहुत ही रक्षा हो।

रोगी होने पर इस रोग से रक्षा पाना।

रोगी को सब से अलग साफ कमरे में साफ बिस्तर पर लिटावें। हकीम, वैद्य, और टहलुए इस रोग की छूत से अपने को बचाकर रोगी की सेवा करें। फुंसियों के निकलने से पहिले ज्वर की साधारण चिकित्सा करें। चिकित्सा में मुख्य नियम ये हैं—

पहिला—खुजली को कम करें और रोगी को खुजलाने न दें। इस कार्य के लिए गुनगुने पानी में "स्पन्ज" या तौलिया भिगो कर शरीर को पोछें। या कोई सूखा चूर्ण जैसे आटा, या आटे का गूदा, (स्टार्च) हेयर पौडर, जली हुई कड़ी की राख आदि छिड़कें। बच्चों के हाथों में थैली सी कर पहिरावें जिससे वे खुजलाने न पावें।

दूसरा—दाग न पड़ने पावे इस कार्य के लिए प्रथम मुख के दानों को सुई से छेद कर पीप निकाल दें। इस विधि

के करने से दाग नहीं पड़ने पाते। नुसख़े जो इस काम के लिये बर्ते जाते हैं नीचे लिखे जाते हैं।

नाइट्रेट आफ सिल्वर—१० ग्रेन
गुलाब जल–१ औंस

मिलाकर फुरेरी के द्वारा फुंसियों पर लगावें। या

पारे का मरहम–२५ भाग
मोम–१० भाग
अलकतरा–६ भाग

मिलाकर फुंसियों पर लगावें।

कार्बोलिक एसिड ४० बूंद एक औंस जैतून के तेल में मिला कर लगावें। कार्बोलिक सोपन या कांडीज़ सोपन, सलफ्युरस एसिड, कार्बोलिक एसिड और क्लोरिन वाटर आदि गुनगुने पानी में मिलाकर शरीर को पोंछें।

गंधक एक ड्राम, मक्खन एक औंस, मिलाकर लगावें। इन दवाओं के लगाने से फुंसियां वायु से बची रहती हैं, और उनमें जलन आदि नहीं होती। बदबू और खुजलाहट दूर करने को नीचे लिखा नुसख़ा बहुत लाभदायक है।

आयडोफार्म–३० ग्रेन
कैम्फर (कपूर)–६० ग्रेन
वेसलीन–६०० ग्रेन

मिलाकर दानों पर लगावें। या

कपूर–२ ड्राम
तिल्ली वा जैतून का तेल–२ औंस

मिलाकर सारे शरीर पर लगावें। या जैतून के तेल में कैलोमिल मिलाकर लगावें। जब निर्बलता अधिक हो तो

सोडा मिश्रित औषधियां, मदिरा, एमोनिया मिक्सचर, आदि दें। गले में दर्द हो तो—

टिक्चर मुर–१ औंस
मधु (शहद)–१ औंस
गुलाब जल–८ औंस
मिलाकर कुल्ली करावें।

आखों को ठंडे जल से साफ करते रहें। पानी में रस कपूर या फिटकरी मिलाकर आंख में डालें या कपड़ा भिगो कर ऊपर रक्खें। दानों में दिल्ली निकलने के बाद घाव हो तो आक्साइड आफ जिंक घी में मिलाकर लगावें। आरोग्य होने पर कार्बोलिक सोप लगाकर स्नान करावें। मीठा तेल या मक्खन लगावें। कोनेन, नाइट्रो-म्यूरएटिक एसिड, सिराबता, या क्वासिया, के पानी में मिलाकर पिलावें। या मछली का तेल पिलावें। हलका पथ्य, जैसे दूध, शोरबा, बकनी सेगो, आदि खाने को दें। आंख में घाव हो तो कास्टिक लोशन डालें। स्वास्थ्य रक्षण पर पूरा ध्यान रक्खें।

—0—

२ चिकिन पाक्स-CHICKEN POX-वेरीसिला।

यह भी एक प्रकार का छूत दार रोग है। इसमें भी साफ दाने शरीर पर निकल आते हैं। इसे भारतवासी मोतिया शीतला या 'दुलारी माता' कहते हैं। यह बारह वर्ष से कम उम्र वालों को होता है। कभी एक बार और कभी दुबारा भी होता है। जवान मनुष्य और स्त्रियों को भी कभी २ सताता है।

कारण—पुराने लोगों का ख्याल था कि यह भी एक प्रकार की शीतला है, किन्तु परीक्षा ने इस पुराने विचार को असिद्ध ठहराया और यह सिद्ध किया कि शीतला से इस रोग का कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यद्यपि यह रोग भी शीतला की भांति वायु द्वारा और स्पर्शास्पर्श द्वारा, दोनों प्रकारों से, आक्रमण करता है और वैसा ही छूत दार भी है, तथापि इसको शीतला नहीं कह सकते। क्योंकि इसके विष में और शीतला के विष में बहुत ही अन्तर है।

लक्षण— लक्षणों को दो वर्गों में वर्णन करेंगे।

१ सरल—तीन चार दिन तक कोई मुख्य लक्षण नहीं प्रगट होता, पीछे सरल ज्वर होता है। ज्वर के २४ घन्टे या ३६ घन्टे पीछे पहिले छाती और कंधो पर, फिर हाथ और पैरों में, एक के पीछे एक, साफ दाने या लाल चमकदार फुंसियां निकलती हैं। कभी २ सिर पर भी निकलती हैं। इन दानों में कठोरता नहीं होती, और न मुख पर इनकी अधिकता होती है। फुंसियों को यदि उंगली से दबावें तो लाली दूर हो जाती है किन्तु हटाने से फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। कुछ २ मस्तक में पीड़ा और खांसी के सिवाय और कोई शारीरिक क्लेश नहीं होता। दाने गोल अंडे की भांति के होते हैं। और इनके चारों ओर शीतला की भांति लाल घेरा नहीं होता। जब जल गदला होता है तब कुछ लाली दिखाई देती है। शीतला की भांति न तो इसके दाने खानेदार होते हैं, और न इनमें गढ़ा पड़ता है। छेद करते ही कुल जल निकल जाता है। तीसरे दिन से पांचवें दिन के भीतर दाने फूट कर पतली छिल्ली, पूरी या टुकड़े २

निकलते और बढ़ते रहते हैं, एक दूसरे से ये दाने यों मिलते हैं कि दूर से चन्द्रमा की शकल बन जाती है। लेकिन जब अधिक दाने निकलें तो कोई शक्ल नहीं जान पड़ती। कभी२ टीके के समान या चकते की भांति से दिखाई देते हैं। किन्तु यह उसी समय जब कि दाने बहुत ही अधिक निकले हों। जब यह मुरझाने लगते हैं तो जिल्द की रंगत तांबे के सदृश हो जाती है। और भूसी उड़ने लगती है। किसी२ के चमड़े में जलन और दर्द होता है। हाथ और कान के भीतर सूजन फैल जाती है। किसी२ को इसके फल से बहुत समय तक दस्त आने लगते हैं। मुद्दत इसकी १२ घंटे से लेकर ७ दिन तक है।

सम्मिलित रोग—"क्रूप" (एक प्रकार की खांसी) "डिफ्थीरिया" (कंठ में झूठी झिल्ली उत्पन्न होने का रोग) "ब्रोंकाइटिस" (खांसी) "केपलरी ब्रोंकाइटिस" (फेफड़े की पतली २ लोहू की रगों की सूजन) "ब्रोंको न्यूमोनिया" "लाब्यूलर न्यूमोनिया" (फेफड़े के लोथड़ों की सूजन) "को-लेप्स" (ठंढा पड़ जाना) "थाइसिस" (क्षयी) आदि रोग इस रोग से आ मिलते हैं।

परिणाम—परिणाम उस दशा में जब कि ऊपर कहे सम्मिलित रोग न आ मिले हों तो ...

२ कठिन (मेलिगनेन्ट[1])-लक्षण-आदि

लक्षण उदय होते हैं। ...
होते हैं। इस रोग में प ... जन ...

[1] इसको मार्बीलाई भी कहते हैं।

सूज जाता है। दाने काले या नीले रंग के निकलते हैं। पैरों में लाल चकत्ते पड़ जाते हैं। लुआबी झिल्लियों से लोहू बहता है। पेशाब में अलव्यूमिन[२] मिलता है। अंत में बेहोशी होकर रोगी परलोक गमन करता है। यह खसरे का घातक भेद है। इसमें आंख, नाक, और कान में सूजन हो जाती है। किसी २ को दस्त आने लगते हैं जिससे रोगी का अंत हो जाता है।

परिणाम—यह रोग असाध्य है।

चिकित्सा—(१) रोग से बचने का उपाय—प्राय वही है जो शीतला में लिख आये हैं। बच्चों को इसके रोगी से दूर रक्खें।

(२) रोगी की रक्षा दो प्रकार से होती है।

(क) औषधी द्वारा सरल प्रकार की चिकित्सा। रोगी को उस समय तक, जब तक कि खांसी आदि दूर न हो, वायु में न निकालें। छाती के कोई रोग, जैसा ऊपर कह आए हैं, हो। तो किसी अच्छे वैद्य द्वारा परीक्षा कराकर चिकित्सा करावें। रोगी को सब से अलग अंधेरे कमरे में, जिसकी गर्मी ६५ दर्जे की हो, रक्खें। यदि शरद ऋतु हो तो गर्म जल आदि से कमरे की गर्मी ६५ दर्जे की कर लेवें। कमरे की यह गर्मी आरोग्य होने तक रहनी चाहिए। साफ बिस्तर और साफ कपड़े रोगी को पहिरावें ओढ़ावें। सफाई का खूब ध्यान रक्खें। पतली और हलकी पथ्य जैसे गर्म २ दूध, (यदि निर्बलता हो तो ब्रांडी मिला कर) पिलावें। शोरबा, सेगो आदि भी दे सकते हैं। इस बात का ध्यान रक्खें कि

२ एक दही की भांति लसदार सूमांश है।

निकलते और बढ़ते रहते हैं, एक दूसरे से ये दाने यों मिलते हैं कि दूज के चन्द्रमा की शक्ल बन जाती है। लेकिन जब अधिक दाने निकलें तो कोई शक्ल नहीं जान पड़ती। कभी २ टीके के समान या चकत्ते की भांति के दिखाई देते हैं किन्तु यह उसी समय जब कि दाने बहुत ही अधिक निकले हों। जब यह मुरझाने लगते हैं तो जिल्द की रंगत तांबे के सदृश हो जाती है। और भूसी उड़ने लगती है। किसी २ के चमड़े में जलन और दर्द होता है। हाथ और कान के भीतर सूजन फैल जाती है। किसी २ को इसके फल से बहुत समय तक दस्त आने लगते हैं। मुद्दत इसकी १२ घंटे से लेकर ७ दिन तक है।

सम्मिलित रोग—"क्रूप" (एक प्रकार की खांसी) "डिफ्थीरिया" (कंठ में झूठी झिल्ली उत्पन्न होने का रोग) "ब्रोंकाइटिस" (खांसी) "कैपलरी ब्रोंकाइटिस" (फेफड़े की पतली २ लोहू की रगों की सूजन) "ब्रोंको न्युमोनिया" "लाब्यूलर न्युमोनिया" (फेफड़े के लोथड़ों की सूजन) "कोलेप्स" (ठंढा पड़ जाना) "थाइसिस" (क्षयी) आदि रोग इस रोग से आ मिलते हैं।

परिणाम—परिणाम उस दशा में जब कि ऊपर कहे सम्मिलित रोग न आ मिले हों तो अच्छा है।

२ कठिन (मेलिगनेन्ट[१])-लक्षण-आदि से ही इसमें अशुभ लक्षण उदय होते हैं। सब लक्षण सन्निपातिक (टाइफाइड) होते हैं। इस रोग में फेफड़े में लोहू जम जाता है वा फेफड़ा

१ इसको मार्बोलाई प्रेवीयोटिस-हेमोरेजिक--ब्लैक मिजिल्स भी कहते हैं।

सूज जाता है। दाने काले या नीले रंग के निकलते हैं। पैरों में लाल धब्बे पड़ जाते हैं। छुलायी झिल्लियों से लोहू बहता है। पेशाब में अलब्यूमिन[१] मिलता है। अंत में बेहोशी होकर रोगी परलोक गमन करता है। यह खसरे का सपातिक भेद है। इसमें आंख, नाक, और कान में सूजन हो जाती है। किसी २ को दस्त आने लगते हैं जिससे रोगी का अंत हो जाता है।

परिणाम—यह रोग असाध्य है।

चिकित्सा—(१) रोग से बचने का उपाय—प्राय वही है जो शीतला में लिख आये हैं। बच्चों को इसके रोगी से दूर रक्खें।

(२) रोगी की रक्षा दो प्रकार से होती है।

(क) औषधी द्वारा सरल प्रकार की चिकित्सा। रोगी को उस समय तक, जब तक कि खांसी आदि दूर न हो, वायु में न निकालें। छाती के कोई रोग, जैसा ऊपर कह आए हैं, हों। तो किसी अच्छे वैद्य द्वारा परीक्षा कराकर चिकित्सा करावें। रोगी को सब से अलग अंधेरे कमरे में, जिसकी गर्मी ६५ दर्जे की हो, रक्खें। यदि शरद ऋतु हो तो गर्म जल आदि से कमरे की गर्मी ६५ दर्जे की कर लेवें। कमरे की यह गर्मी आरोग्य होने तक रहनी चाहिए। साफ बिस्तर और साफ कपड़े रोगी को पहिरावें ओढ़ावें। सफाई का शुद्ध ध्यान रक्खें। पतली और हलकी पथ्य जैसे गर्म २ दूध, (यदि निर्बलता हो तो ब्रांडी मिला कर) पिलावें। शोरबा, सेगो आदि भी दे सकते हैं। इस बात का ध्यान रक्खें कि

२ एक दही की भांति लपदार पूर्वांश है।

कब्ज न होने पावे। यदि हो तो रेंडी का तेल वा "मेगनेसिया सल्फास" (साल्ट) आदि देकर पेट साफ करें। रोगी के समीप अधिक भीड़ न जमा हो, इस पर ध्यान रक्खें। यदि खांसी और ज्वर दोनो अधिक हों तो यह नुसखा--

लाइकर एमोनिया एसीटेटिस	१ ड्राम
वाइनम्, इपीका केवाना	१५ बूंद
टिंक्चर कैम्फर कम्पौंड	१५ बूंद
कैम्फर वाटर	१ औंस

मिलाकर ऐसी एक मात्रा एक तरुण पुरुष को हर २ या ३ घन्टे पीछे पिलावें। खांसी का ठसका दूर करने को लिसोड़े की माजून बच्चों को चटावें।

यदि लेरिंक्स (वायु की नाली) में सूजन हो जाये तो गले पर "टिंक्चर आयडीन" लगा कर सेंक करें। गर्म खौले हुए जल की भाप कंठ में पहुंचावें। प्यास की अधिकता में ठंडी चीजें, जैसे बर्फ, सोडा, या क्लोरेट आफ पुटासियम आदि दें। यदि छाती में दर्द हो तो, गर्म जल में पोस्त की डोडी डाल कर सेंकें। या कड़ुए तेल में तारपीन मिलाकर मलें। अलसी की लिही बना कर बांधे। या राई का प्लास्टर लगावें। यदि निर्बलता अधिक हो और खांसी भी जोर करती हो तो यह नुसखा--

एरोमेटिक स्पिरिट आफ एमोनिया	१ ड्राम
स्पिरिट क्लोरोफार्म	९० मिनम
ब्रांडी	९० मिनम
सिरप आफ इपकुहण	१ ड्राम
वाइनम् इपीकाक्	१½ ड्राम
कैम्फर वाटर	३ औंस

मिलाकर इसमें से एक से तीन साल तक के बालक को एक या दो ड्राम की मात्रा हर ३ या ४ घन्टे पीछे दें। छाती को गर्म रक्खें, सर्दी से बचावें।

(ख) औषधी द्वारा कठिन प्रकार की चिकित्सा। यह रोग असाध्य है तो भी रोग आरम्भ होते ही बलकारक औषधि देना उचित है। फुंसिया बैठ गई हो तो गर्म जल से स्नान करावें। और गर्म जल पीने को भी दें। शाम को गर्म जल से फुटबाथ (घुटने तक पैर धोना) करें। आदि ही से स्टिम्युलेंट मिक्श्चर देना आरम्भ करें। पतली, हलकी, और शीघ्र पचने वाली पथ्य दें। हो सके तो जल वायु का परिवर्तन करावें। इस रोग में शरीर के आधे नीचे के धड़ को लकवा मार जाता है। ऐसी दशा में लोहा मिश्रित औषधियां दें। मीठा तेलिया आदि तेल में मिलाकर मालिश करें।

स्कार्लेटिना—वा—स्कारलेट् फीवर—लालज्वर।

SCARLETINA OR SCARLET FEVER.

यह एक तेज छूतदार ज्वर है जो शहरों के गरीबों को अधिक होता है। इसमें ज्वर के साथ लाल रंग की फुंसिया शरीर पर निकलती हैं। कंठ के भीतर की लुआबी झिल्ली (म्यूकस मेम्ब्रेन) सूज जाती है। बरसात के बाद यह इपीडेमिक (मरी) होता देखा गया है।

कारण—मुख्य कारण छूत है जो दोनों प्रकारों से, अर्थात् वायु द्वारा और रोगी द्वारा भी, लग सकती है। जितनी ही कम अवस्था में यह रोग हो उतना ही भयंकर समझा जाता है।

यह रोग तीन प्रकार का होता है। पहिला "स्कारलेटिना सिंप्लिक्सा"(सरल), दूसरा "स्कारलेटिना एंजिनोस" (कठिन), तीसरा "स्कारलेटिना मेलिग्ना" (घातक)।

(१) स्कारलेटिना सिंप्लिक्सा (सरल)

इसमें छूत लगने के चार छै दिन बाद कंठ में कुछ सूजन होती है। गले में दर्द होने से कोई वस्तु निग नहीं जाती। उपरान्त जाड़ा देकर १०४ १०५ दर्जे का ज्वर आता है। नाड़ी उछलने लगती है। प्यास अधिक भूख कम हो जाती है। जीभ मैली, दो एक दिन बाद ला रंग की हो जाती है। ज्वर के एक दो दिन बाद साफ औ लाल रंग की फुंसिया, पहिले कंठ, फिर छाती, हाथ, पे और अन्त को पैर पर निकलती हैं। अर्थात् ऊपर से नी को क्रमश फुंसिया उतरती और बढ़ती चली जाती हैं उपरान्त फुंसिया आपस में एक दूसरे से मिलकर स्वच्छ और लाल धब्बे की शकल में बदल जाती हैं धब्बे की त्वचा (चमड़ा) खरदरी और कुछ ऊंची नीची होत है। धब्बो को यदि उंगली से दबावें तो लाली दूर होक धब्बे फीके रंग के हो जाते हैं। परन्तु दबाव हटाने से फि ज्यों के त्यों दिखाई देते हैं। जोड़ों की मोड़ पर अधिक लाली होती है। चमड़े में जलन, खुजली, कहीं २ पर तनाव और पीड़ा, होती है। फुंसियां तीन चार दिन तक बराबर निकलती रहती हैं। उपरान्त मुरझाने लगती हैं। फुंसियो के निकल आने पर ज्वर और अधिक, अर्थात् किसी २ में १०८-११० दर्जे तक का, हो जाता है। ज्वर की भांति नाड़ी भी गति में बढ़ जाती है। पांच छै दिन में आरोग्यावस्था

आ जाती है। कंठ की गिलटियां बढ़कर लाल हो जाती, और छूने से उनमें दर्द होता है। इसीके साथ २ कौव्वा और कंठ तालु की कुल गिलटियां सूज जाती हैं। मूत्र कम, लाल रंग का, निकलता है। रोगी निर्बल तथा चिड़चिड़ा हो जाता है। दुर्बलता के कारण हाथ पांव कांपते हैं। किसी २ का जिगर (यकृत लिवर) और तिल्ली (पिलही-स्प्लीन) बढ़ जाते हैं। तीन चार सप्ताह तक यही दशा रहती है। पीछे चमड़ा सूख कर बड़े २ छिलके, जो आरम्भ में हथेली से दस्तानों की भांति के निकलते हैं, उड़ने लगते हैं। इसी समय मूत्र की परीक्षा करने से "एलब्यूमिन"[1] मूत्र में पाया जाता है। और कंठ की सूजन में भी कमी हो जाती है। धीरे २ क्लेश कम होने लगते हैं। इसी समय सम्मिलित रोगों के मिलने का बड़ा भय रहता है। कभी २ सरल से कठिन और कठिन से घातक प्रकार में बदल जाता है।

(२) स्कारलेटिना एंजिनोसा-कठिन—इसमें ज्वर की तेज़ी के सिवाय वमन और दस्त भी लग जाते हैं। कंठ और कौव्वे में सूजन के सिवाय घाव पड़ जाते हैं। झूंठी[2] झिल्ली कंठ में उत्पन्न होती है। कंठ की नसें तन जाती हैं और उनमें दर्द होता है। कभी छाती और कभी हाथ पर अनियमित धब्बे निकलते और गायब होते रहते हैं। धब्बों की मौजूदगी में ज्वर तेज़ होता है। कंठ की पीड़ा अधिक दिन तक बनी रहती है।

---

१ एक लसदार अंडे की सफेदी या फटे दूध की भांति की वस्तु जो मूत्र परीक्षा करने से मूत्र में मिलती है।

२ देखो डिफथीरिया रोग।

(३) स्कारलेटिना मेलिग्ना-घातक—इसमें रोगी २४ घन्टे ही का मेहमान होता है। इसमें कठिन प्रकार के लक्षण के सिवाय, रोगी ठंढा पड़ जाता है।

नाड़ी सूत सी चलती है। सन्निपातिक लक्षण आरम्भ ही से उदय होते हैं। मूत्र में एलब्यूमिन मिलता है। कंठ में सड़े घाव हो जाते हैं। मुख से दुर्गंध आने लगती है। जीभ की रंगत भूरी हो जाती है। ज्वर यदि हो तो रोगी बकझक बकता है। दांत पर मैल, ओठ काले, और उन पर पपड़ी जम जाती हैं। लाल काली फुंसियाँ निकल कर समा जाती हैं। मूत्र बंद हो जाता है। कंठ के सड़े घाव से लोथड़ा निकलने पर लोहू बहने लगता है। यूरीकोमा[1], या हृदय आदि के कारण रोगी सदैव के लिए इस दुनिया से कूच कर जाता है।

सम्मिलित रोग और फल-गुर्दे[2] में सूजन होना, गठिया, जोड़ों में पीप पड़जाना। किसी २ में हृदय की सूजन, "पेरीकार्डाइटिस" (हृदय को ढांकने वाली झिल्ली की सूजन) आदि, और किसी २ को "प्लूरसी" (फेफड़े की सूजन) "न्यूमोनिया" (फेफड़े की सूजन) "थाइसिस", क्षयी, "ओटोरिया", (कान बहना) "ओटाइटिस" (कान की सूजन) "कञ्जक्टिवाइटिस" (आंख की झिल्ली की सूजन) "स्क्राफ्युला" (कंठमाला), "अल्सर्स" (घाव), "डिफ्थीरिया" (झूठी कंठ की झिल्ली), "पेरालेसिस" (लकवा), "आरथ्रा-

---

१ मूत्र बंद होकर रुधिर में मिल जाने की दशा को "यूरीकोमा" कहते हैं।

२ यही अधिक होता है।

इटिस" (जोड़ों में पीप पड़ना), आदि रोग होते हैं। किसी२ के फेफड़े में पीप पड़ जाती है। कोई २ बहरे हो जाते हैं।

चिकित्सा। दो प्रकार की है (क) रोग से बचने का उपाय। (ख) रोगी होने पर रक्षा।

(क) पहले प्रकार की चिकित्सा और उपाय उसी प्रकार करें जैसे 'शीतला' में वर्णन कर आए हैं। इसकी छूत खसरे की भांति रोगी के शरीर से भाफ की भांति निकलती है। रोगी से दूर रहना ही उचित उपाय है। इसके सिवाय इस रोग की छूत रोगी के असबाब, सामान में भी विद्यमान रहती है। दूध आदि खाद्य पदार्थों में भी मिल जाती है। वैद्यों और परिचारकों के द्वारा भी छूत लग सकती है। अस्तु इन कारणों से बचके रहना चाहिए।

(ख) रोगी की रक्षा खरस में जब छिलका उतरने लगे तो सुबह शाम एक छटांक तिल्ली, चमेली, या जैतून के तेल में ४० बूंद कार्बोलिक एसिड मिला कर सारे शरीर में लगावें। अलग साफ कमरे में साफ वस्त्रों को ओढ़ा बिछा कर रोगी को लिटावें। इसको पाचक और ठंढी पथ्य खिलावें। ठंढी चीजों को पिलाना भी उचित है। कंठ पर गर्म जल में पोस्त की डोडी या अफीम डाल कर सेंक करें। या "कांडीज़ लोशन" "सलफ्यूरस एसिड" की भाफ कंठ में पहुंचावें। कठिन में ठंढे पानी में तौलिया या स्पञ्ज[१] भिगो कर शरीर को पोंछें। कंठ में गर्म जल की भाफ, जैसा खरस में वर्णन किया है, पहुंचावें। "क्लोरेट आफ पुटाश" पानी में मिलाकर कुल्ली करावें। और इसी दवा को १० ग्रेन

१ समुद्र फेन की भांति की पानी सोखने वाली वस्तु।

की मात्रा में २ या ३ घन्टे पीछे खाने को दें। या इसकी टिकिया[1] मुह में रखकर रस चूसें।

क्लोरेट आफ पुटाश	२० ग्रेन
टिंकचर सिन्कोना कम्पौंड	२० बूंद
पानी	१ औंस

यह नुसखा मिला कर ऐसी एक मात्रा तरुण पुरुष को प्रत्येक ३-३ या ४ ४ घन्टे पीछे पिलावें। या

कुइनाइन	५ ग्रेन
टिंचर स्टील	२० या ३० बूंद
स्पिरिट क्लोरोफार्म	१० बूंद
पानी	१ औंस
डायल्यूट एसिड नाइट्रोहैड्रोक्लोरिक	१० बूंद

मिला कर ऐसी एक मात्रा तरुण रोगी को ३ या ४ घन्टे पीछे देवें।

मेलिग्नेन्ट अर्थात् घातक में स्टिम्युलेंट जैसे—

एरोमेटिक स्पिरिट आफ एमोनिया	२० बूंद
क्लोरिक ईथर	२० बूंद
स्पिरिट ईथर	२० बूंद
ब्रान्डी	२ ड्राम
डिकाक्शन सिनकोना	१ औंस

मिला कर ऐसी एक मात्रा एक तरुण रोगी को प्रत्येक दो या तीन घन्टे पीछे पिलावें। गुर्दे में सूजन हो तो खाली सींगी, या अलसी की लिपड़ी, अथवा राई का प्लास्टर, लगावें। गर्म पानी का बफारा दें। सरसों का चूर्ण

---

[1] यह अंग्रेजी बाजारों में मिलती है।

गर्म जल में मिला कर स्नान करावें। अचेतता के समय गर्दन के पीछे ब्लिस्टर (छाला डालने वाली औषधि) लगावें। फ़ब्ज हो तो सेलप, मेगनेशिया-आदि शक्ति देख कर दें। गर्म २ दूध, शोरबा, सैगो आदि खाने को दें। साफ कपड़े बदल २ कर पहिरावें ओढ़ावें। आरोग्य होने पर बलकारक औषधि (टानिक दवायें) दें।

जर्मन मीजिल्स[1]—कृत्रिम खसरा

GERMAN MEASLES.

यह भी छूतदार रोग है, इसमें लाल ज्वर और खसरा दोनों के लक्षण मिले जुले पाए जाते हैं।

कारण—छूत लगने से होता है। यह प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक मनुष्य को हो सकता है।

लक्षण—ज्वर, जुकाम सब खसरे की भांति के होते हैं, किन्तु लक्षण उससे हलके प्रगट होते हैं। कंठ में सूजन भी होती है। खसरे की भांति सारे शरीर में फुंसियां तो निकलती हैं, किन्तु शक्ल दूज के चन्द्रमा की भांति इसमें नहीं होती। हां, लालज्वर के दानों से ये दाने कुछ २ मिलते हैं। दाने पेट में अधिक निकलते हैं। दानों के निकलते ही ज्वर जाता रहता है। चार पांच दिन, कभी दस बारह दिन, में दाने मुरझा कर भूसी सहने लगती है।

परिणाम—अच्छा है। इसमें कोई सम्मिलित रोग नहीं उत्पन्न होते।

---

१ इसे रोथलेन या रूबीओला नोथा भी कहते हैं। सम्भव है कि यह रोग जर्मनी का हो इसी से इसे जर्मन मीजिल्स कहते हैं।

चिकित्सा–खसरे, और स्कारलेट फीवर (लाल ज्वर) की भांति चिकित्सा करें।

डिफथीरिया–झूठी झिल्ली-(घुंघडी)

DIPHTHERIA

यह बहुत बुरी छूतदार बीमारी है। इसमें एक प्रकार की झूठी झिल्ली हलक में उत्पन्न होती है।

कारण—मुख्य कारण छूत है। लड़के अधिक इस रोग में ग्रसित होते हैं। कभी २ जवानों को भी हो जाता है। रोगी के मुख की राल बहुत ही छूतदार होती है। झिल्ली और राल में विष लगा रहता है। यदि राल का अंश दूसरे मनुष्य को लग जावे तो यह रोग हो जाता है। श्वास द्वारा भी छूत लग जाती है। कभी २ यह विष वायु में मिल कर बड़ा उपद्रव मचाता है। हकीम और टहलुवे जो औषधि आदि पिलाते वा लगाते हैं उन्हें यह सहज ही हो जाता है और उनके द्वारा अन्य मनुष्यों में भी फैल जाता है। चाहे जिस स्थान की लुआबी झिल्ली पर ऐसे रोगी की राल लगा देखिये, तुरत झूठी झिल्ली वहां बन जायगी।

लक्षण—जब इस रोगी की छूत किसी निरोगी मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है, तो सात आठ दिन तक कोई प्रत्यक्ष लक्षण नहीं उदय होते। केवल, कभी २ जाड़ा सा लगता है, जी मचलाता और मस्तक में पीड़ा होती है। उपरान्त कंठ की नसें तन कर कंठ के भीतर पीड़ा होती है, कंठ की सारी गिलटियां सूज जाती हैं। उनमें ललाई और पीड़ा बढ़ जाती है। मुख खोल कर

देखने से कंठ के चारों ओर ऐसी लाली दिखलाई पड़ती है मानो इंगुर लगाया गया है। या-तो यहीं से रोग लौट जाता है, या और आगे बढ़ कर लेरिङ्क्स (हवा की नली) को भी घेर लेता है, उस समय सांस लेने में पीड़ा और क्लेश जान पड़ते हैं। यदि सूजन फेरिंक्स (भोजन की नली) में फैले तो चबाने और निगलने में कष्ट होता है। जितनाही यह रोग आगे कदम रखता जाता है उतनाही कठिन होता जाता है। इसी दशा में नर्म तालु और उसके पिछले भागों पर कुछ धूमेले रंग के बिंदु प्रगट होते हैं। पश्चात् ये बिंदु एक दूसरे से मिलकर एक श्वेतपीत अथवा मलाई की पर्त, या श्वेत चमड़े की भांति की झिल्ली, में बदल जाते हैं। झिल्ली मुख की लुआबदार झिल्ली में जुटी होती है। एक बार यदि निकाल दें तो फिर उसी स्थान में दूसरी झूंठी झिल्ली उत्पन्न हो जाती है। कभी २ यह गाल, नाक, और मुख के भीतर की सब नालियों में फैलकर भयानक फल उत्पन्न करती है। कभी २ यह झिल्ली सड़ कर काली पड़ जाती है, और कभी गल कर गिर पड़ती है। जहां से गिरती है वहां घाव हो जाता है। कभी २ घाव भी गलने लगता है, जिससे रोगी के मरने में सदेह नहीं होता।

यह तो हुई झूठी झिल्ली की कथा, अब शारीरिक लक्षणों की दशा का भी कुछ वर्णन करना अनुचित न होगा। कंठ में जितनी कि सूजन होती है उतना दर्द नहीं होता। तब बेचैनी और निर्बलता बहुत सताती है। ज्वर तेज़ और नाड़ी जल्द २ चलने लगती है। कंठ की गिलटियां सूज

जाती हैं। मुँह से राल बहती है। कुछ दुर्गंध भी आती है। कभी २ नाक और मुह से लोहू निकलता है। मूत्र में "एलब्यूमिन" मिलता है। शरीर पर धब्बे निकल आते हैं। ये धब्बे लाल और अम्होरी की रंगत के, कभी एरिसिपेलस् की भांति के, होते हैं। वायु की नली में झिल्ली हो तो श्वास क्रिया में कष्ट हो जाता है और भोजन की नली रोग ग्रसित होने से कुछ खाया पीया नहीं जाता। कभी नाक की लुआबी झिल्ली ग्रसित हो कर नाक का द्वार बंद कर देती है। गर्दन की गिलटियां बढ़ जाती हैं। कभी धीरे २ मुख से रुधिर निकलने पर रोगी निर्बल हो जाता है। कुछ पनीली चीज कंठ से नहीं उतरती, इससे दुर्बलता अधिक हो कर रोगी मर जाता है। या कंठ की झिल्ली के कारण सांस रुक जाती हैं और रोगी दम घुट कर मर जाता है। यह दशा उस समय होती है जब वायु की नाली में झूठी झिल्ली या उसकी सूजन फैले। गर्दन में लकवा भी मार जाता है जिससे सिर टेढ़ा हो जाता है। बोली में भिनभिनाहट का शब्द होता है, साफ नहीं बोला जाता। शरीर के विविध स्थानों में पीड़ा होती है। रोगी चलने फिरने योग्य नहीं रहता। देखने, सुनने, समझने में अन्तर आ जाता है। कभी २ मृत्यु अचानक होती है। जिसका कारण "कार्डियक् एम्बोलिज़्म" (खून में लोथड़ा अटकना) है।

निदान—निदान करने में स्कारलेट फीवर (लाल ज्वर) से धोखा न खावें। क्योंकि उसमें भी कंठ में इसी प्रकार की सूजन होती है। तो भी नीचे लिखे नकशे को स्मरण रखने से दोनों की अच्छी पहिचान हो सकती है।

डिफथीरिया	लालज्वर
(१) यह कई बार होता है और हर बार इसकी एक सी तेज़ी होती है।	(१) बहुधा एक ही बार होते देखा गया है। यदि दूसरी बार हो तो पहिले की सी तेजी नहीं होती।
(२) यह बार २ लौटता है, और वायु की नाली (लेरिङ्क्स) भी रोगग्रसित हो जाती है।	(२) लेरिङ्क्स (वायु की नाली) में सूजन तो होती है, किन्तु बार २ नहीं लौटता।
(३) रोग के दूसरे या तीसरे दिन ऐल्ब्यूमिनोरिया[1] albumenorrhoea हो जाता है।	(३) जब रोगी अच्छा होने लगता है तब होता है।
(४) इसके फल से लकवा रोग हो जाता है।	(४) इसमें लकवा नहीं होता।

परिणाम—लेरिङ्क्स (वायु की नली) में सूजन का होना, या लोहू की नलियों में लोहू का लोथड़ा अटकना, या मूत्र का लोहू में मिलना या बंद हो जाना, मुख के भीतर (हलक में) सड़न होना, नकसीर फूटना, बकझक बकना, श्वास में कष्ट आदि, लक्षण हों तो रोग भयानक समझें। लड़कों के लिये यह रोग बहुत ही बुरा है। २४ ३६ घन्टे में मृत्यु हो जाती है। अवधि इसकी २ से १४ दिन है। प्राय दम घुट कर मौत (एसफिक्सिया) होती है।

[1] मूत्र में "एलब्यूमन" अधिक होने से यह रोग होता है। इस में कुल शरीर सूज जाता है मुख और पांव पर सूजन अधिक होती है। इसे ब्राइट साहब ने परीक्षा करके जाना इसी से इसे ब्राइट्स डिज़ीज़ कहते हैं।

दिन क्रमशः कमी होती जाती है और "हूप" शब्द जाता रहता है। शरीर में बल आने लगता है। भूख खुल जाती और कय बंद हो जाती है। बलगम सुगमता से खांसी की भांति सफेद निकलता है। धीरे २ खांसी में भी कमी होकर रोगी अच्छा होने लगता है।

सम्मिलित रोग और फल—इस रोग के फल से जो अन्य रोग उत्पन्न होते हैं उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

"केपिलरी ब्रांकाइटिस" (फेफड़े की बारीक २ वायु की नाली की सूजन) "लाब्यूलर न्यूमोनिया" (फेफड़े के लोथड़ों की सूजन) "कोलेप्स और एम्फीसीमा आफ दी लंग्स" (फेफड़े का बैठ जाना या उसमें वायु भर जाना) "कटारल न्यूमोनिया" (फेफड़े की सूजन) "प्लूरसी" (फेफड़े के ढांकनेवाली झिल्ली की सूजन) "थाइसिस" (क्षयी) "क्रूप" (ऐंठनी खांसी) "कनुवलशन्" (ऐंठन) "मिनिनजाइटिस" (दिमाग भेजे की झिल्ली में सूजन) "सेरीब्रल एपोप्लक्सी" (दिमागी सकता, लकवा) "गेस्ट्राइटिस" (आमाशय की सूजन) "एन्ट्राइटिस" (आंतों की सूजन) "डायरिया" (अतिसार) "हरनिया" (आंत का उतर आना) आदि, रोग होते हैं।

निदान—साधारण खांसी से यों निदान करें कि साधारण खांसी में न तो मुख्य प्रकार की बारी होती है, और न "हूप" शब्द ही सुना जाता है। और न तो इसके समान उसमें लक्षण ही मिलेंगे। अर्थात्, कफ, वमन, मस्तक में लोहू का जमाव आदि साधारण खांसी में कभी नहीं मिलेंगे और न विश्राम काल में इस के समान निर्बलता होगी।

परिणाम—ऊपर कहे सम्मिलित रोगों का यदि सम्मिलन न हो, तो परिणाम अच्छा कह सकते हैं, अन्यथा बुरा ही है। जब बच्चा छोटा हो, और दांत निकलते हों या इस रोग की मरी फैली हो, बारी की कठिन अवस्था हो और गिनती में अधिक और कष्टकर हो, तब परिणाम अशुभ है। जाड़े में जब सरदी अधिक हो, तब लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक मरती हैं। "लालज्वर" या "खसरे" के पीछे यह रोग हो तो भयानक होता है। यदि आरोग्य होने वाला है तो छः से आठ सप्ताह में कठिन लक्षण दूर हो जाते हैं। किन्तु पूर्ण आरोग्यता अधिक दिनों में प्राप्त होती है। एक बार कुछ आराम के चिन्ह प्रगट होकर कुपथ्य आदि से फिर दुबारा रोग लौट आता है। निःसन्देह यदि फेफड़े के रोग न आ मिलें तो परिणाम अच्छा है, रोगी अवश्य अच्छा हो जाता है।

चिकित्सा—दो प्रकार की चिकित्सा करें। (१) रोग से बचने की (२) रोगी की।

(१) रोग से बचने का उपाय। जहां तक हो सके रोग से दूर रहें। छोटे २ बच्चों को इस रोग से बचावें क्योंकि बच्चे बहुत शीघ्र इस की छूत में ग्रसित होते हैं। जब यह मरी की भांति फैला हो तो दूर जा बसें। घर में यदि कोई रोगी हो कर अच्छा हो गया या मर गया हो तो जिस कमरे में रोगी रहा हो उसे खूब साफ करें। चूना मिट्टी आदि से लीपें पोतें। कड़ी किवाड़ों में अलकतरा लगावें,

डिसइनफेक्शन[1] करें। कपड़े लत्तों को जला दें या डिसइनफैक्टैन्ट लोशन में भिगो कर घाम में सुखावें। और २ सामानों को भी डिसइनफेक्ट[2] करें।

(२) रोगी की चिकित्सा। रोगी को गर्म कपड़ा पहिना कर अलग मकान में रक्खें। बच्चों और बच्चे वाली स्त्रियों को रोगी के समीप न आने दें। रोगी का कफ, राल, और थूक आदि कार्बोलिक लोशन (१ हिस्सा १००० हिस्सेवाला) में लेकर बस्ती से दूर खोद कर गाड़ दिया करें। खांसी से बचाने को लिसोड़े[3] की माजून चटावें इस से बड़ा फायदा होता है। गर्दन और रीढ़ पर नीचे की दवा—

लिनीमैन्ट बैलाडोना	२ ड्राम
,, सोप	२ औंस
,, कैम्फर	१ औंस

मिला कर मलें। सर्दी न लगने पावे इसका ध्यान रक्खें। यदि मल कड़ा हो तो कोई हलका जुल्लाब जैसे रेंडी का तेल, या मेगनेसिया सल्फ आदि दें। ज्वर हो तो उसकी यथोचित चिकित्सा करें। नीचे लिखा नुसखा इस रोग में लाभदायक होता है।

स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक	१ ड्राम
,, ईथर	१ ड्राम

---

१ मरकरी लोशन (पारे का पानी) जो एक हिस्सा पारा (मरकरी-हैड्राज परक्लोराइड Hydrag Percloride दारचिकना) १००० हिस्से पानीमें मिला कर तैयार [illegible] उससे धो[illegible]

२ पारे के पानी से धोवें।

३ बड़ी अच्छी दवा है। बच्[illegible]

टिंक्चर बैलाडोना	१२ बूंद
डाइल्यूट हैड्रोसियानिक एसिड	६ बूंद
सादा शर्बत	२ औंस
पानी	२ औंस

मिलाकर इसमें से दो ड्राम की मात्रा में दो वर्ष के बच्चे को चार २ या तीन ३ घन्टे पीछे पिलावें । या—

वाइनम् इपीकाकेवाना	१ ड्राम
डाइल्यूट हैड्रोसियानिक एसिड	१० बूंद
स्पिरिट क्लोरोफार्म	१ ड्राम
टिंकचर हाइसाइमस	१ ड्राम
कैम्फर वाटर	३ औंस

मिलाकर इसमें से एक ड्राम की मात्रा में चार २ या तीन ३ घन्टे पीछे एक वर्ष के बच्चे को दें । या—

क्लोरल हैड्रेट	२ ग्रेन
एलम	१ ग्रेन
टिंक्चर बेलाडोना	२ मिनम
कार्बोलिक एसिड	१ मिनम्
शरबत	१ ड्राम
पानी	१ औंस

मिलाकर ऐसी एक मात्रा दो या तीन २ घन्टे पीछे पिलावें । छाती और पीठ पर तारपीन का तेल कडुए तेल में मिला कर मलें । या—

लिनीमैंट टरपैनटाइन	१ हिस्सा
एसीटिक् एसिड	½ हिस्सा
अण्डे की जर्दी	१ हिस्सा

लिनीमैन्ट बैलाडोना   १ हिस्सा
मिलाकर छाती, पीठ, और रीढ़ पर मलें। हलक के भीतर ग्लिसरीन, टैनिक एसिड या कास्टिक लोशन (२० ग्रेन एक औंस वाला) फुरेरी द्वारा लगावें। या "ग्लिसरीन कार्बोलिक एसिड"—(१ भाग १५ भाग वाला) वायु की नाली में फुरेरी से लगावें। रोगी को वायु से बचा कर हलकी पथ्य खाने को दें। लिसोढ़े की माजून खूब चटावें। यदि निर्बलता हो तो मदिरा दें। आरोग्य होने पर जल वायु का परिवर्तन करें।

टाइफस[1] फीवर Typhus fever काला बुखार।

यह एक प्रकार का छूतदार ज्वर है इसमें काले २ बिंदु शरीर पर निकलते हैं इसीसे इसे हमने "काला बुखार" लिखा है। इसमें रोगी बहुत निर्बल हो जाता है।

कारण—इस रोग की छूत रोगी के श्वासद्वारा या पथ्यद्वारा शरीर में पहुंचने से यह रोग होता है। अकाल के दिनो में प्राय यह होता है। बहुत आदमियों के एक स्थान पर इकट्ठे होने से, जैसे मेले, तमाशे, या मिलों और उद्योगगृहों आदि में प्राय होता है। मरी की भांति फैल कर सैकड़ों मनुष्यों को भोजन बनाता है। रोगी के आरोग्य लाभ करने पर भी उसके शरीर, या श्वास से दूसरे निरोगी मनुष्य रोगी हो सकते हैं।

लक्षण—छूत लगने के पीछे रोगी सुस्त, काहिल और कुछ ज्वर से बेचैन होता है। दस बारह दिन पीछे,

---

[1] इसे प्लेग का भाई कहना अनुचित न होगा।

पीठ में दर्द होकर जाड़े से ज्वर चढ़ता है । प्यास अधिक लगती है, वमन भी होता है । ज्वर इसमें प्रथम १०५ दर्जे का या इससे भी कभी २ अधिक हो जाता है । सिर में पीड़ा, मुख सूखा, और ओठों पर पपड़ी जम जाती है । जीभ सूखी, भूरी, और बाहर निकालने पर कांपती है । सुबह तो कम परन्तु शाम को बेचैनी अधिक होती है । रात में बकझक आरम्भ हो जाती है । कभी २ दो तीन मिनिट तक "मूर्छा" भी हो जाती है । देखने सुनने समझने में फर्क पड़ जाता है । कभी नींद आती है और कभी नहीं । जब नींद नहीं आती तो बेहोशी हो जाती है । ज्वर प्रथम सप्ताह में सरल रोगियों में एक सा चढ़ा रहता है । किन्तु कठिन में बढ़ता जाता है । आरोग्य होने को होता है तो दूसरे सप्ताह में ज्वर धीरे २ उतरने लगता है । यदि दूसरे सप्ताह में ज्वर प्रथम के समान रहे या उससे भी अधिक हो जाये, तो आन्तरिक विभागों में सूजन उत्पन्न होने का सन्देह होता है । ज्वर की अवधि १४ दिन से २१ दिन है । इसके भीतर ज्वर एक साथ (क्राइसिस[1] होकर) उतर जाता है । ज्वर के पांचवें या छठे दिन बांह के पीछे पोंचे पर, या बगल में प्रायः हंसुली की हड्डी के नीचे, या मुख, कंठ, और पेट पर, कभी अलग २ कभी आपस में मिले हुये, चमड़े से कुछ उभरे, लाल काला पन लिये, शहतूत की भांति, दाने निकल आते हैं । दाने दबाव से जाते रहते हैं, किन्तु दबाव हटाते ही फिर ज्यों के त्यों हो जाते हैं । दो एक दिन बाद दानों की रंगत रेंद के समान हो जाती है । और

[1] ज्वरके एक साथ (भयानक) उतर जाने को "क्राइसिस" कहते हैं।

लिनीमैन्ट बैलाडोना १ हिस्सा

मिलाकर छाती, पीठ, और रीढ पर मलें। हलक के भीतर ग्लिसरीन, टैनिक एसिड या कास्टिक लोशन (२० ग्रेन एक औंस वाला) फुरेरी द्वारा लगावें। या "ग्लिसरीन कार्बोलिक एसिड"—(१ भाग १५ भाग वाला) वायु की नाली में फुरेरी से लगावें। रोगी को वायु से बचाकर हलकी पथ्य खाने को दें। लिमोड की माजून खूब चटावें। यदि निर्बलता हो तो मदिरा दें। आरोग्य होने पर जल वायु का परिवर्तन करें।

टाइफस[1]फीवर Typhus fever काला बुखार।

यह एक प्रकार का छूतदार ज्वर है इसमें काले २ बिंदु शरीर पर निकलते हैं इसीसे इसे हमने "काला बुखार" लिखा है। इसमें रोगी बहुत निर्बल हो जाता है।

कारण—इस रोग की छूत रोगी के श्वासद्वारा या पथ्यद्वारा शरीर में पहुंचने से यह रोग होता है। अकाल के दिनो में प्राय यह होता है। बहुत आदमियों के एक स्थान पर इकट्ठे होने से, जैसे मेले, तमाशे, या मिलों और बदीगृहो आदि में प्राय होता है। मरी की भांति फैल कर सैकड़ों मनुष्यों को भोजन बनाता है। रोगी के आरोग्य लाभ करने पर भी उसके शरीर, या श्वास से दूसरे निरोगी मनुष्य रोगी हो सकते हैं।

लक्षण—छूत लगने के पीछे रोगी सुस्त, काहिल और कुछ ज्वर से बेचैन होता है। दस बारह दिन पीछे,

---

[1] इसे प्लेग का भाई कहना अनुचित न होगा।

रोग से बचने का उपाय—बहुत से आदमियों को एक स्थान में न जमा होने दें, जहां अधिक भीड़ हो वहां न जावें। भूखे न रहें। भूखों को भोजन आदि दें। इस रोग के रोगी से बचें। जहां या जिस कमरे में रोगी हो वहां की कोई वस्तु न छूवें और न कोई खाने पीने वाली वस्तु खावें पीवें। रोग के परिणाम के पीछे रोगी के कमरे की सफाई करावें, असबाब, कपड़ा और कूड़ा आदि जला दें। कड़ो किवाड़ों में अलकतरा, दीवारों में सफेदी, और कच्चे घरों में लीप पोत करवावें। सम्पूर्ण गृह को डिसइनफेक्ट[1] करें।

चिकित्सा—आरम्भ में रोग के रोकने की चिन्ता न करें। क्योंकि यह रोग होने पर रुकता नहीं। बढ़ने न पावे उसका ध्यान रक्खें। खाने को पतली पथ्य थोड़ी २ मात्रा में थोड़ी २ देर पीछे दें। और यह नुसखा बराबर हर हालत में देते रहें।

स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक	२० बूंद
,, क्लोरोफार्म	२० बूंद
टिंक्चर सिंकोना कम्पौंड	१५ बूंद
ब्राण्डी	२ ड्राम
डिकाक्शन सिंकोना	१ औंस

यह एक मात्रा है। ऐसी एक मात्रा प्रत्येक तीन २ घण्टे पीछे एक जवान रोगी को पिलावें। करवट बदलवाते रहें।

---

१ कृमनाशक दवाओं के पानी द्वारा धोने को डिसइनफेक्शन कहते हैं।

दबाव से उनकी रंगत नहीं बदलती। आरोग्य होने तक दाने एक ही दशा में रहते हैं।

कठिन रोगियों में जीभ सूखी, भूरी और बाहर निकालने पर कांपती है। रोगी अचेत या बकझक बकता रहता है। नींद नहीं आती। और ऐसा निर्बल हो जाता है कि करवट तक नहीं बदल सकता। बिस्तर में धस जाता है। मुख सूख जाता है। आंखे धंस जाती हैं। मुख से दुर्गंध आती है, पट्ठे घुल जाते हैं, और नसें सूख कर तांत हो जाती हैं। आंखें अधखुली और मुंह फटा हुआ होता है। मूत्र कम, कभी २ बिलकुल बंद, होता है। ज्वर के ९ वें या दसवें दिन अंगजाल फड़कने लगते हैं। मलमूत्र अनिच्छा से निकलने लगता है। अंत में बेहोश होकर या कमवलाय[1] Convulsion होकर रोगी परलोक सिधारता है।

सम्मिलित रोग और फल—"ब्रांकाइटिस" (खांसी) "न्यूमोनिया" (फेफड़े की सूजन), "प्लूरिसी" (फेफड़े के ढकने वाली झिल्ली की सूजन) पैरों और हाथों में सड़न, और एक करवट पड़े रहने से फेफड़े में रुधिर जम जाना आदि रोग हो जाते हैं।

परिणाम—दस रोगियों में से दो मर जाते हैं। दूसरे सप्ताह में ज्वर की अधिकता से भी मृत्यु हो जाती है। दूसरे सप्ताह के उपरान्त यदि मृत्यु हो तो अन्य रोग के फल से मृत्यु होना बतलाते हैं। जितना ही अधिक वय में यह रोग हो उतना ही बुरा है।

---

[1] एक प्रकार की ऐंठन—कम्पन।

रोग से बचने का उपाय—बहुत से आदमियों को एक स्थान में न जमा होने दें, जहां अधिक भीड़ हो वहां न जावें। भूखे न रहें। भूखों को भोजन आदि दें। इस रोग के रोगी से बचें। जहां या जिस कमरे में रोगी हो वहां की कोई वस्तु न छूवें और न कोई खाने पीने वाली वस्तु खावें पीवें। रोग के परिणाम के पीछे रोगी के कमरे की सफाई करावें, असबाब, कपड़ा और कूड़ा आदि जला दें। कच्ची किवाड़ों में अलकतरा, दीवारों में सफेदी, और कच्चे घरों में लीप पोत करवावें। सम्पूर्ण गृह को डिसइन फेक्ट[1] करें।

चिकित्सा—आरम्भ में रोग के रोकने की चिन्ता न करें। क्योंकि यह रोग होने पर रुकता नहीं। बढ़ने न पावे इसका ध्यान रक्खें। खाने को पतली पथ्य थोड़ी २ मात्रा में थोड़ी २ देर पीछे दें। और यह नुसखा बराबर हर हालत में देते रहें।

स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक	२० बूंद
,, क्लोरोफार्म	२० बूंद
टिंक्चर सिन्कोना कम्पौंड	१५ बूंद
ब्राण्डी	२ ड्राम
इन्फ्यूजन सिन्कोना	१ औंस

यह एक मात्रा है। ऐसी एक मात्रा प्रत्येक तीन २ घन्टे पीछे एक जवान रोगी को पिलावें। करवट बदलवाते रहें।

---

१ कृमिनाशक दवाओं के पानी द्वारा धोने को डिसइनफेक्शन कहते हैं।

बिस्तर खूब मुलायम रक्खें। मूत्र बन्द हो तो सलाई डालकर निकाल दें। शोरबा, बीफ टी, आदि खाने को दें। सम्मिलित रोगो की यथोचित चिकित्सा करें।

टाइफाइड फीवर Typhoid Fever सन्निपातिक ज्वर।

यह रोग भी एक प्रकार की हलकी छूत से उत्पन्न होता है। इसमें आंतों में बिगाड़ उत्पन्न होता है, इस लिये इसे एन्टरिक फीवर Enteric fever और जर्मनी वाले एब्डामिनल टाइफस abdominal typhus कहते हैं।

कारण—यह रोग मेरी समझ में "कन्टेजस" तो नहीं है, हां "इनफेक्शस" अवश्य है, "फोमाइटिस" के द्वारा भी इसकी छूत लग सकती है। पनारे और हौदों की सड़ी बू वायु में मिल कर, मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है, इसी कारण से यह रोग उत्पन्न होता है। पनारे आदि का दुर्गंधित जल यदि कूए या तालावों में मिले और उनका जल निरोगी मनुष्य पीये तो भी यह रोग हो जाता है।

लक्षण—जब इस रोग की छूत शरीर में प्रवेश करती है तो दस पन्द्रह दिन तक कोई मुख्य लक्षण नहीं प्रगट होता। केवल कुछ सुस्ती और आलस्य, सिरदर्द और दस्त कभी २ होता है। उपरान्त रोगी को जाड़ा गरमी शरीर में जान पड़ती है। मस्तक में पीड़ा, आंखें कभी चमकदार और कभी बैठी जीभ की नोक और किनारे लाल, किन्तु बीच का भाग मैला होता है। नाड़ी शीघ्रगामिनी और निर्बल गति की हो जाती है। गाल पर लाल धब्बा पड़

जाता है। नाक से लोहू गिरने लगता है। प्यास अधिक और भूख कम हो जाती है। मुख बुरा हो जाता है। पेट में दर्द होता है जो दबाने से अधिक होता है। पेट फूल जाता है। बैठने और करवट बदलने में क्लेश होता है। दस्त और के शुरू होते हैं। कभी एक ही देखा गया है। अर्थात् या तो के या दस्त ही होते हैं। मूत्र कभी तो कम और कभी एक बूंद भी नहीं निकलता। मूत्र में "एलब्यूमन" (एक लस-दार अण्डे की सफेदी या फटे दूध की भांति पदार्थ) पाया जाता है। चमड़ा सूखा गर्म और शारीरिक गर्मी १०४ और १०५ दर्जे तक चढ़ जाती है। किसी २ में १०६ १०७ दर्जे तक बढ़ जाती है। यह गर्मी सुबह की अपेक्षा शाम को एक दर्जे अधिक बढ़ती रहती है। अर्थात् सुबह १०३ दर्जे पर है तो शाम को १०४ दर्जे पर और फिर सुबह १०४ दर्जे पर तो शाम को १०५ दर्जे पर चढ़ जाती है। यह दशा चार पांच दिन तक केवल इसी रोग में देखी गई है। उतरते समय भी सुबह का दर्जा प्रथम कम होता है पीछे शाम का भी धीरे २ कम होने लगता है। प्राय दूसरे सप्ताह में गर्मी का दर्जा घटने लगता, या बढ़ने लगता है। जब बढ़ने लगता है तो, लक्षणों में भी तेजी आ जाती है। अर्थात त्वचा सूखी और गर्म, कभी २ कुछ पसीना भी निकलता है। नाड़ी सूत सी निर्बल, तथा प्रति मिनिट संख्या में १२० गति की हो जाती है। जीभ सफेद दरारदार, कभी चमकदार लाल, या भूरे रंग की होती है। पेट फूल जाता है और दबाने से दर्द करता है। ज्वर से सातवें या आठवें दिन छाती और पेट पर कहीं २ गोल त्वचा से कुछ उचे, गुलाबी

रंग के दाने निकलते हैं। चार दिन पीछे उस स्थान को छोड़ कर अन्य स्थानों पर निकलते हैं। अर्थात् जहां प्रथम निकलते थे, वहां से गायब हो कर दूसरे स्थान पर दिखाई देते हैं। इसी प्रकार दाने निकलते और गायब होते रहते हैं। दानों की गिनती ठीक नहीं। सब यह दाने किसी २ में नहीं भी निकलते देखे गये हैं। किसी २ में तो अम्होरी के सदृश निकलते देखे गये हैं।

जब दूसरे सप्ताह का अन्त आता है तो या तो शारीरिक गर्मी अपनी असली दशा में पहुंच जाती है, और लक्षणों में कमी होकर रोगी आरोग्य लाभ करता है, पेट फूल कर ढोल हो जाता है। ठोंकने से "ढब २" की आवाज आने लगती है। पेट में एक प्रकार की गड़गड़ाहट उत्पन्न हो जाती है। नाभी के दायें ओर (दायें इलियक फासा में) दबाने से दर्द जान पड़ता है। दस्त पतले पीले या गदले रंग के होते हैं, परीक्षा से कैमियल क्षार भी पाई जाती है। यदि दस्त को किसी बर्तन में रक्खें तो थोड़ी देर बाद फट कर उसमें छिछड़े, खून के लोथड़े, झिल्लियों के टुकड़े और एक पतली वस्तु पीले या भूरे रंग की जिसमें एल्ब्यूमिन और नमकीन चीजें होती हैं पायी जाई हैं। सन्निपातिक लक्षण रोगी में उदय होते हैं। नाड़ी और शारीरिक गर्मी बढ़ जाती है। बहरापन हो जाता है। हिचकियां आती हैं रोगी बकझक बकता है। निर्बलता इतनी बढ़ जाती है कि रोगी बोल भी कम सकता है। बिस्तर में धस जाता है। खाने को कुछ नहीं लाता। दस्त बराबर हुए चले जाते हैं। जब बहुत ही छूट जाता है तो हाथ पैर कांपने लगते

हैं। पट्ठे फड़कने लगते हैं। मलमूत्र सब बिस्तर पर ही होने लगते हैं, पीछे बेहोश होकर रोगी मर जाता है।

जब आरोग्य होने वाला होता है तो चौथे सप्ताह में ज्वर धीरे २ उतरने लगता है और सम्पूर्ण लक्षणों में कमी हो कर रोगी अच्छा होने लगता है। किसी २ में कठिन लक्षण नहीं प्रगट होते, किसी २ को दस्त आदि आते का क्लेश नहीं होता, कोई २ रोगी शीघ्र इससे मुक्त हो जाते हैं। और कोई २ बुरी दुर्गति भोगने के पश्चात् या तो आरोग्य होते हैं, या सदा के लिये दुनिया के झगड़े से बच जाते हैं। बच्चों में यह रोग अधिक होता है। अस्तु कुछ लक्षण उसके भी वर्णन करने योग्य हैं।

इनफेन्टायल रिमीटॅंट[1] फीवर

Infantile Remitant Fever

यह दो प्रकार का होता है। प्रथम सरल और दूसरा कठिन।

१ सरल—यह बिना कुछ खास दुःख हुए ही प्रगट होता है। अर्थात भूख कम प्यास अधिक होती है। बच्चा सुस्त, चुपका पड़ा रहता है। स्वभाव का चिड़चिड़ा हो जाता है। रात में बेचैनी अधिक होती है, नींद नहीं आती। शारीरिक गर्मी सुबह मामूली किन्तु शाम को बढ़ जाती है। और ज्यों २ रात बढ़ती है गर्मी भी बढ़ती जाती है। दुर्गंधित पतला दस्त आता है। नाड़ी इतनी शीघ्र चलती है कि गिनना कठिन होता है। दूसरे सप्ताह में बेचैनी अधिक बढ़ जाती है। रात में बच्चा दांत पीसता है, कराहता है। कभी और

१ बच्चों के टाइफाइड फीवर को इनफैन्टायल रिमीटॅंट फीवर अर्थात शिशु सन्निपातिक ज्वर कहते हैं।

से चिल्ला कर चौंक उठता है। दोपहर और शाम को वमन होती है। निर्बलता अधिक होती है। पट्ठे घुल जाते हैं। बच्चा मुंह और नाक नोचा करता है। इसमें किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते। जीभ मैली किनारों पर लाल होती है। पेट फूल जाता है, गरगराहट का शब्द होता है। नाक के दायें नीचे की ओर दबाने से दर्द होता है। दस्त दुर्गंधित सड़ा हुआ होता है। तीसरे सप्ताह में सब लक्षण कम होकर धीरे २ लड़का अच्छा होने लगता है।

२ कठिन——इसमें पहिले से कठिन लक्षण होते हैं। इसमें सब सन्निपातिक लक्षण उदय होते हैं। पेट बैठ जाता है। छाती पर काले बिंदु निकलते हैं। ये दाने कभी तो साफ, और कभी अम्होरी की भांति के होते हैं। कै अधिक होती है। जितना लक्षणों में तेजी होगी उतनी ही वमन भी अधिक होता है। दुर्गंध अधिक हो जाती है। छाती में दर्द होता है। एक प्रकार की सूखी खांसी भी आती है। पतला भूरे रंग का दस्त बिस्तर पर ही होता रहता है। दूसरे सप्ताह के अंत तक लड़का सूख कर कांटा हो जाता है। नाड़ी निर्बलता के कारण ठहरने के समीप हो जाती है। ज्वर १०३–१०५–१०७ दर्जे तक का होता है। तीसरे सप्ताह में लड़का गल जाता है, गफलत (अचेतता) में पड़ा कभी कमवलशन (Convulsion) का दुख भोगता और कभी निर्बलता की दशा में मृत्यु को प्राप्त होता है। कभी धीरे २ आराम भी होने लगता है। कुछ दिनों में अशुभ लक्षण धीरे २ कम हो कर लड़का अच्छा हो जाता है।

अवधि—धीरे २ आराम होता है। आराम होने में २१ से ३० दिन और यदि फेफड़े में सूजन हो तो ४० दिन लगते हैं। आरोग्य होने पर फिर भी लौटने का अन्देशा है।

निदान—टाइफस और टाईफाइड ज्वरों में बहुत कुछ समानता है–परन्तु नीचे लिखे निदान पर ध्यान देने से भेद प्रगट हो जावेगा।

टाइफाइड फीवर (सन्निपातिक ज्वर)	टाइफस फीवर (काला बुखार)
(१) इस में कई बार जाड़ा लगकर क्रमश ज्वर चढ़ता है।	(१) इसमें ज्वर एक साथ चढ़ता है मस्तक में पीड़ा अधिक होती है। रोगी सुस्त, निद्रालु और काहिल हो जाता है।
(२) गालों पर लाल धब्बा दिखाई देता है। आखें उजली प्रकाशवान होती हैं। रोगी आरम्भ ही से निर्बल नहीं होता।	(२) मुख पर श्यामता छा जाती है, आंखें भारी चढ़ी हुई और निर्बलता आदि से ही अधिक होती है।
(३) प्राय आठवें दिन गुलाबी रंग के दाने पेट पीठ और छाती पर निकलते हैं जो दो तीन दिन में जाते रहते हैं, फिर उस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर निकलते हैं। इसी प्रकार कई बार निकलते और जाते रहते हैं।	(३) प्राय ५ वें दिन शहतूत के रंग के दाने कलाई की पीठ पर निकलते और अन्त तक एक ही दशा में विद्यमान रहते हैं।
(४) बहुधा पेट चलता और पेट से लोहू भी निकलता है। आंतो में घाव हो जाता है।	(४) पेट नहीं या कम चलता है। लोहू नहीं निकलता, और न आंतों में घाव होते हैं।

से चिल्ला कर चौंक उठता है। दोपहर और शाम को वमन होती है। निर्बलता अधिक होती है। पट्ठे घुल जाते हैं। बच्चा मुंह और नाक नोचा करता है। इसमें किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते। जीभ मैली किनारों पर लाल होती है। पेट फूल जाता है, गरगराहट का शब्द होता है। नाफ के दायें नीचे की ओर दबाने से दर्द होता है। दस्त दुर्गंधित सड़ा हुआ होता है। तीसरे सप्ताह में सब लक्षण कम होकर धीरे २ लड़का अच्छा होने लगता है।

२ कठिन—इसमें पहिले से कठिन लक्षण होते हैं। इसमें सब सन्निपातिक लक्षण उदय होते हैं। पेट बैठ जाता है। छाती पर काले बिंदु निकलते हैं। ये दाने कभी तो लाल, और कभी अम्हौरी की भांति के होते हैं। कै अधिक होती है। जितना लक्षणों में तेजी होगी उतनी ही वमन भी अधिक होता है। दुर्गंध अधिक हो जाती है। छाती में दर्द होता है। एक प्रकार की सूखी खांसी भी आती है। पतला भूरे रंग का दस्त बिस्तर पर ही होता रहता है। दूसरे सप्ताह के अंत तक लड़का सूख कर कांटा हो जाता है। नाड़ी निर्बलता के कारण ठहरने के समीप हो जाती है। ज्वर १०३—१०५—१०७ दर्जे तक का होता है। तीसरे सप्ताह में लड़का गल जाता है, गफलत (अचेतता) में पड़ा कभी कनवलशन (Convulsion) का दुख भोगता और कभी निर्बलता की दशा में मृत्यु को प्राप्त होता है। कभी धीरे २ आराम भी होने लगता है। कुछ दिनों में अशुभ लक्षण धीरे २ कम हो कर लड़का अच्छा हो जाता है।

अवधि—धीरे २ आराम होता है। आराम होने में २१ से ३० दिन और यदि फेफड़े में सूजन हो तो ४० दिन लगते हैं। आरोग्य होने पर फिर भी लौटने का अन्देशा है।

निदान—टाइफस और टाइफाइड ज्वरों में बहुत कुछ समानता है—परन्तु नीचे लिखे निदान पर ध्यान देने से भेद प्रगट हो जावेगा।

टाइफाइड फीवर (सन्निपातिक ज्वर)	टाइफस फीवर (काला बुखार)
(१) इस में कई बार जाड़ा लगकर क्रमशः ज्वर चढ़ता है।	(१) इसमें ज्वर एक साथ चढ़ता है मस्तक में पीड़ा अधिक होती है। रोगी सुस्त, निढाल और काहिल हो जाता है।
(२) गालों पर लाल धब्बा दिखाई देता है। आंखें उजली प्रकाशवान होती हैं। रोगी आरम्भ ही से निर्बल नहीं होता।	(२) मुख पर श्यामता छा जाती है, आंखें भारी, चढ़ी हुई और निर्बलता आदि से ही अधिक होती है।
(३) प्रायः आठवें दिन गुलाबी रंग के दाने पेट पीठ और छाती पर निकलते हैं जो दो तीन दिन में जाते रहते हैं, फिर उस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर निकलते हैं। इसी प्रकार कई बार निकलते और जाते रहते हैं।	(३) प्रायः ५ वें दिन शहतूत के रंग के दाने कलाई की पीठ पर निकलते और अन्त तक एक ही दशा में विद्यमान रहते हैं।
(४) बहुधा पेट चलता और पेट से लोहू भी निकलता है। आंतों में घाव हो जाता है।	(४) पेट नहीं या कम चलता है। लोहू नहीं निकलता, और न आंतों में घाव होते हैं।

(५) शारीरिक गर्मी क्रमशः बढ़ती है और सुबह शाम में एक प्रकार का अन्तर अर्थात् सुबह से शाम को एक डिगरी ऊपर अधिक होता है सुबह एक डिगरी घटता है और शाम को दो डिगरी बढ़ जाता है। ४ ५ दिन तक ऐसी ही दशा ज्वर की होती है।	(५) चौबीस घन्टे से लेकर तीसरे दिन तक नाड़ी और गर्मी बढ़ती है। फिर एक दशा में रह कर आठवें दिन कम होने लगती है।
(६) यह लौटता है और प्राय अमीरों को सताता है। ४० वर्ष से अधिक उम्रवालों को कम होता है।	(६) यह नहीं लौटता। गरीबों को अधिक होता है। जो लोग रोगी के समीप जाने आने वाले हैं उन्हें अवश्य होता है।
(७) इस की छूत बहुत कम लगती है। शरीर में पहुँच कर इसका विष नहीं बढ़ता। धीरे २ इसका असर होता है।	(७) बहुत जल्द फैलने वाला छूतदार रोग है। शरीर में पहुँच कर इसका विष बढ़ जाता है।
(८) अवधि २१ से ३० दिन है। सन्निपात तीसरे सप्ताह में आरम्भ होता है।	(८) १४ से २१ दिन इसकी अवधि है। दूसरे सप्ताह के अन्त में ज्वर एक साथ उतर जाता है।

रोग से बचने का उपाय—पनारा, पैखाना आदि को साफ रक्खें। दुर्गंधित पनारे का पानी घर में न रुके उसका प्रबंध करें। यदि दुर्गंधित घर हो तो उसे छोड़ दें। यदि पीने के पानी के पास कोई मल मूत्र या मोरी आदि के घुसने का भय हो, या पीने के जल में मिलने का भय हो तो उसका तुरंत उचित प्रबंध करें, यदि प्रबंध न हो सके तो घर छोड़ दें। जब यह रोग फैला हो तो पानी को गर्म करके

पीवें। रोगी के पास की कोई वस्तु खाने पीने की व्यवहार में न लावें। रोगी का मल मूत्र किसी बर्तन में "कार्बोलिक फ्लुइड" (छूतनाशक अर्क) मिला कर बस्ती से दूर ले जा कर गाड़ें। आरोग्य होने पर घर की खूब सफाई करें। बच्चों को दूध आदि औटा कर पिलावें, और रोगी से दूर रक्खें।

चिकित्सा—रोगी की चिकित्सा इस प्रकार करें कि प्रथम वमन लानेवाली औषधि दें। जैसे "इपीकाकेवाना" या टिंक्चर इपीकाकेवाना वमन की मात्रा में १ औंस जल में मिलाकर दो तीन दिन तक पन्द्रह बीस घन्टे पीछे बराबर पिलावें। यदि फल हो तो केवल रेंड़ी का तेल काम में लावें। ध्यान रहे कि इस रोग में आँतें बहुत कमज़ोर होती हैं इससे तेज या नमकीन जुलाब भूल कर भी काम में न लावें, और न रोगी को एक कदम चलने फिरने दें। चलने फिरने से तुरत आँतों में सूजन, छेद, या लोहू का प्रवाह होने लगता है। रुधिर शुद्ध करने आदि के लिये—

नाइट्रो हैड्रोक्लोरिक डाइल्यूट	१५ मिनम्
क्विनाइन सल्फेट	५ ग्रेन
क्लोरेट आफ् पुटाशियम्	१२ ग्रेन
क्लोरिक ईथर	१० बूंद
टिंक्चर सिनमियन कम्पौंड	२० बूंद
पानी	१ औंस

ऐसी ३ मात्रा एक तरुण पुरुष को दिन में तीन बार दें। जब इस रोग का पूर्ण निदान हो जावे तो इसका इलाज "तारपीन" के तेल से करें। नीचे का नुसखा ऐसी

दशा में उत्तम और लाभदायक होगा।

आइल आफ टरपनटाइन	१ ड्राम
लाइकर पुटासी	१ ड्राम
म्यूसलेज आफ गम एकेसिया	२ ड्राम
सिरप आफ़ पापील	४ ड्राम
,, ,, आरेंज	४ ड्राम
कैम्फर वाटर	४ औंस

इस में से आधे औंस की मात्रा लेकर एक तरुण रोगी को दो दो घन्टे पीछे बराबर पिलाते रहें। ज्वर के लिये—

लाइकर एमोनिया एसीटेटिस	१ ड्राम
नाइट्रिक ईथर	१० बूंद
पुटासी बाइ कार्बोनेट	१० ग्रेन
कैम्फर वाटर	१ औंस

मिलाकर ऐसी १ मात्रा तरुण रोगी को दिन में ३-३ घन्टे पीछे दें। गर्म[२] दूध, यखनी, आश[१] जौ, या अन्य पनीली पथ्य खूब पिलावें जिससे पसीने द्वारा विष निकले। गर्म जल से स्नान करावें। या गर्म जल का "भपारा[२]" इस प्रकार दें कि रोगी को बिना बिस्तर की चारपाई पर सुला कर चारपाई के नीचे खौलाए हुए जल का पात्र जिसका मुंह बंद हो धरें। पीछे चारपाई को कम्बल आदि से ऐसा ढकें कि भाफ बाहर न निकल जावे, उपरान्त पात्र का मुख खोल दें, और रोगी को भी ढंक दें। केवल मुख खुला रहने दे। यह विधि आध घन्टे तक करने योग्य है।

---

१ फारसी—दिवाचनी जौ

२ भाफ

इससे विष पसीने द्वारा निकलता है। इससे उस समय अधिक लाभ होता है जब शारीरिक गर्मी १०५ या १०७ दर्जे पर हो, और नाड़ी जल्द २ चले और रोगी ज्वर से बकझक बकता हो। गर्म जल, जिसकी गर्मी "थर्मामेटर[१]" द्वारा देखने से ९० दर्जे की हो, उसमें रोगी को आध घन्टे तक इस विधि से बिठावें कि धीरे २ ठंढा जल उसमें छोड़ते जावें जब जल की गर्मी ६५ दर्जे पर आ जावे तो ठंढा जल मिलाना बंद कर के रोगी को उठावें और उसे पोछ कर बिस्तर पर कम्बल ओढ़ा कर सुलावें। यह तो हुआ पसीने द्वारा विष का बहिष्कार। अब मूत्रद्वारा विष निकालने की विधि बताते हैं। प्रथम तो चाह काफी गर्म २ जहां तक पिला सकें खूब पिलावें। यह नुसखा–

पुटासी एसीटास	१० ग्रेन
नाइट्रिक ईथर	१० बूंद
टिंक्चर जूनीपर	१० बूंद
कम्पौंड डिकाक्शन आफ ब्रोमटाप्स	१ औंस

बना कर और मिलाकर ऐसी एक मात्रा एक तरुण रोगी को प्रत्येक चार २ घन्टे पीछे पिलावें।

पेट फूल जाय तो टरपनटाइन (तारपीन) मल कर सेंकें, या "मस्टर्ड" (राई) का "प्लास्टर" लगावें। या गर्म जल में पोस्त की ढोंढ़ी डाल कर फलालेन के टुकड़े से सेंक करें। यदि इस विधि से पेट का उभरना और दर्द बंद न हो तो "तारपीन" १ ड्राम हींग १ ग्रेन मिलाकर दो घन्टे पीछे पिलावें। गर्म जल की लम्बी पिचकारी द्वारा

---

[१] ... जिसमें पारा चढ़ता उतरता है।

गुदा में पहुचावें। यदि दर्द तेज हो और रोगी तरुण हो तो नाभी से कुछ नीचे दहिने कटि की ओर एक छोटा सा ब्लिस्टर (आबला डालने वाली पट्टी) लगावें। इस विधि से दर्द तो दूर हो जाता है, किन्तु घाव सड़ने लगता है। शारीरिक क्लेश दूर करने को "ओपियम (अफीम) मारफिया" (अफीम का सत) या मारफिया की त्वचा में पिचकारी करना लाभदायक है। दस्त बहुत होते हो तो एक साथ बद न करें, केवल कम करने को यह नुसखा—

डोवर्स पौडर	१० ग्रेन
कार्बोनेट आफ बिसमथ	१० ग्रेन

एक पुड़िया। ऐसी ४ पुड़िया तरुण रोगी को दें। या

एसिड सलफ्यूरिक डाइल्युट	१५ बूंद
टिंक्चर ओपियम	५ बूंद
पानी	१ औंस

मिलाकर ऐसी एक मात्रा एक तरुण रोगी को प्रत्येक चार २ घन्टे पीछे दें। चाक् मिक्श्चर एक औंस प्रत्येक दो २ घन्टे पीछे दें। या

लिक्विड एक्सट्रैक्ट आफ ओपियम	२० बूंद
स्टार्च	१ औंस
पानी	१ औंस

मिला कर एक काच की लम्बी पिचकारी में भर कर गुदा में पहुचावें। यदि पेट पर अस्तर करनेवाली झिल्ली (प्रेटोनियम) में सूजन हो जावे तो "ओपियम" (अफीम) आधा ग्रेन बैलाडोना के सत के साथ या अकेली दें। पेट को "तारपीन" या गर्म जल से खूब सेंकें। "एक्सट्रैक्ट बेला-

होना" और एक्स्ट्रैक्ट आफ पापीज़ दोनो को मिलाकर पेट पर लेप करें। यदि आंतों से लोहू निकले तो "टैनिक" या "गैलिक" एसिड १० ग्रेन की मात्रा में दिन में चार बार पानी के साथ दें। या तारपीन २० बूंद पानी एक औंस मिला कर ऐसी एक मात्रा दिन में तीन चार बार पिलावें। बर्फ चुसावें। "आर्गोटीन" त्वचा में त्वचा की पिचकारी द्वारा पहुंचावें। आरम्भ में यवनी, और दूध ही खाने को दें। यदि वमन हो तो सोडावाटर या लाइम वाटर (चूने के पानी) के साथ दें। दूसरे सप्ताह में अवहा या सेगो आदि दें। पथ्य का पूर्ण प्रबंध करें। कड़ी, अपच, और सूखी पथ्य न दें। हलकी पतली पथ्य ही रोगी को लाभदायक होगी। कड़ी पथ्य से हाथों में घाव होने का भय है। थोड़ी मात्रा में मदिरा भी देना उचित है। जब रोगी ठहर पड़ जाय या निर्बलता अधिक हो तो मदिरा अवश्य दें।

मम्स=Mumps=कर्णमूल = गलसुआ = गालोमातिा।

यह भी एक छूतदार रोग है। इसमें कान के आस पास की गिलटियां सूज जाती हैं। इसे "पैरोटाइटिस" भी कहते हैं। यह कभी २ मरी की भांति फैलती है और चार पांच वर्ष के या अधिक अवस्था के बच्चे और जवान मनुष्य इस रोग में ग्रसित होते हैं।

कारण—जहां बहुत से लड़के जमा हों जैसे मदर्से आदि में, और जहां अधिक भीड़ हो जैसे मेले तमाशे आदि में, या बड़े कुनबेवाले घरों में इसकी छूत फैलती है। जहां एक को हुआ कि घर का घर इस रोग में ग्रसित हुआ।

कारण—सराई के देशों में ऋतु परिवर्तन के समय जहां बहुत से मनुष्यों की भीड़ जमा हो वहां यह उत्पन्न हो कर दूर २ तक अपना असर फैलाता है। रोग छूतदार है और मुख्य छूत ही इस का कारण भी है।

लक्षण—आदि में सब लक्षण साधारण जुकाम के ही उत्पन्न होते हैं, नाक बहने के उपरान्त किसी २ में नक्सीर का फूटना, तालू और मुख में पीड़ा आदि होना, कान के भीतर सूजन, कंठ में सूजन, खांसी और दम का उभरना आदि—लक्षण इसमें पाये जाते हैं। किसी २ रोगी को दस्त, और वमन लग जाते हैं। आमाशय के स्थान पर दर्द होता है, जीभ मांस की भांति लाल पड़ जाती है। आवाज़ बैठ जाती है। भूख कम, परन्तु प्यास अधिक, होती है। यदि साधारण है तो सात आठ घंटे में ज्वर आदि दूर हो जाते हैं। और कहीं कठिन हुआ तो नाक और कान की सूजन आगे बढ़ कर छाती के रोग उत्पन्न कर देती है जिससे आराम देर में होता है। निर्बलता इसमें साधारण जुकाम की अपेक्षा अधिक होती है।

निदान—यों तो साधारण जुकाम और इस रोग में बहुत कम फर्क जान पड़ता है तो भी इस का एक साथ मरी की भांति फैलना, और निर्बलता की अधिकता होना, शीघ्र अधिक बढ़ना आदि से निदान कर लेना सहज है।

परिणाम[1]—बच्चे, बुड्ढे, और निर्बल मनुष्यों में, या, उनमें जिन में हृदय वा फेफड़े के रोग हो, अशुभ परिणाम होता है, किसी २ में खांसी और जोड़ों में दर्द रह जाता

[1] जब यह रोग मरी की भांति फैले तो अशुभ परिणाम जानना।

है। पूर्ण नीरोगता देर में प्राप्त होती है।

रोग से बचने का उपाय—यथाई जुकाम से दूर रहना ही अच्छा है। रोगी से भी बचना चाहिये।

रोगी की चिकित्सा—साफ हवादार मकान में हवा से बचा कर रोगी को रक्खें। एक हलका जुल्लाब देकर पेट को साफ करें। यदि उबकाइयां आती हों तो वमन कारक औषधि जैसे वाइनम् एपीकाक् पानी में मिला कर दें। गर्मी में बर्फ चुसावें। यदि निर्बलता हो तो एमोनिया मदिरा आदि पिलावें। "क्लोरोफार्म" ईथर या "कोना-इम्" को गर्म जल में डाल कर कंठ में भाफ पहुंचावें। या यह नुसखा—

वाइनम एपीकाकेवाना	४ ड्राम
सिरप आफ हिमी हिपमिस	६ ड्राम
इनफ्यूजन आफ लिसीड	१२ औंस

मिला कर इस में से एक औंस की मात्रा में एक तरुण रोगी को प्रत्येक बार २ घण्टे पीछे दें। यदि क्रोध अधिक हो तो सावधानी से रात के समय १० ग्रेन "डोवर्स" पाउडर खिलावें। छाती का दर्द दूर करने को राई का प्लास्टर लगावें। या तारपीन के तेल से सेंक करें। यदि फेफड़े में सूजन (न्यूमोनिया) हो जावे तो—

एमोनिया कार्बोनास	५ ग्रेन
क्लोरिक ईथर	२ ड्राम
ब्रांडी	१२ ड्राम
टिंक्चर सिनकोना कम्पोड	२ ड्राम
डिकाक्शन सिनकोना	६ औंस

मिला कर इस में से एक औंस प्रत्येक तीन २ घन्टे पीछे एक तरुण रोगी को पिलावें। दर्द दूर करने को कुनेन, और पुटासियम् आयोडाइड, बराबर मिला कर खिलावें। इसकी पथ्य जैसे दूध, शोरवा, यखनी, अंडा, और सैगो (सागूदाना) आदि खिलावें। आरोग्य होने पर "ईस्टन सिरप" खिलावें। जल का परिवर्त्तन करावें।

एरीसिपेलस[1] Erysepolas = सुर्ख बादा।

यह एक कठिन छूतदार रोग है। इस में एक प्रकार की सूजन मुख पर वा अन्य स्थानों पर होती है, ज्वर भी तेज होता है। चोट आदि लगने के स्थान पर भी हो जाता है।

कारण—छूत लगना इसका मुख्य कारण है। यह छूत चाहे स्पर्श द्वारा लगे और चाहे वायु द्वारा शरीर में प्रवेश करके अपना असर प्रकट करे। किन्तु किसी २ में दोनों प्रकारों से भी होता देखा गया है। यह रोग दो प्रकार से होता है। (१) ट्रामेटिक (चोट आदि से), (२) "इडियो पेथिक" (जो प्राय सिर या चेहरे पर होता है) बिना चोट के।

(१) इडियोपैथिक के लक्षण—छूत लगने के दस या चौदह दिन के उपरान्त गले में दर्द उत्पन्न होता है। ज्वर, जो १०४ से १०५ दर्जे तक का होता है, चढ़ता है। ज्वर के दूसरे या तीसरे दिन एक लाल धब्बा, प्राय कान के पीछे या चेहरे पर, किसी २ के मस्तक, गाल, नाक, हथेली और कलाई पर, निकलता है। फिर उस धब्बे के चतुर्दिक् लाली और सूजन बढ़ जाती है। नाक या कान या मुख के कोने

---

१ इसको "सेन्ट एन्थोनीज फायर" भी कहते हैं।

पर प्रथम यह दशा पाई जाती है। धीरे २ यह सूजन फैलती और बढ़ती जाती है। यहां तक कि सिर, चेहरा, गर्दन, और कानों, और नाक के भीतर फैल कर दिमाग तक इस सूजन का असर पहुंच जाता है। सिर से कंधे तक लाली और सूजन फैल कर मनुष्य की आकृति[1] बिगाड़ डालती है। रोगी इस सूजन के कारण न तो आंखें खोल सकता है। न नाक बंद होने से नाक द्वारा सांस ले सकता है। गाल और होठ ऐसे सूज जाते हैं कि मुख खोलना कठिन हो जाता है। जलन और पीड़ा से रोगी को पल भर भी चैन नहीं पड़ता। सूजन के स्थान की त्वचा (चमड़ा) सूखी लाल और तनी हुई जान पड़ती है। मारे जलन के सारे शरीर पर फफोले से पड़ जाते हैं। दर्द ऐसा होता है कि रोगी से सहा नहीं जाता। तिसपर ज्वर[2] की प्रबलता और भी छक्के छुड़ा देती है। सूजी हुई त्वचा उभरी हुई होती है। इससे सूजन का आदि अंत भली भांति जान पड़ता है। लेकिन जहां से सूजन हटती है वहां की रेखा नहीं दिखलाई पड़ती।

तारीफ यह है कि यह सूजन प्राय एकही[3] ओर को बढ़ती है। कभी २ आगे बढ़ती जाती है और पीछे आरोग्य होती जाती है। सूजन उस स्थान पर अधिक होती है जहां मांस अधिक है और वहां दबाने से गढ़ा भी पड़ जाता है। किन्तु ऐसे स्थानों की सूजन में दर्द कम पाया गया है।

---

१ जैसे कोढ़ी का चेहरा होता है।

२ यह ज्वर "सूजनी" है अर्थात् सूजन के कारण होता है।

३ कभी २ चारों ओर से भी बढ़ती है।

विरुद्ध इसके जहां केवल हड्डी और चमड़ा है वहां दर्द तेज किन्तु देखने में सूजन कम, होगी। ज्वर १०४ से १०८ दर्जे तक का देखा गया है। नाड़ी १०० से १४० या १५० गति की हो जाती है। सूजन के बढ़ने पर ज्वर भी बढ़ता है और घटने पर घट जाता है। बढ़ाव का दर्जा शाम को अधिक होता है। सूजन के चारों ओर की गिलटियां भी सूज जाती हैं। मूत्र में "एलब्युमन" मिलता है। चेहरे की सूजन बड़ी दुखदायी होती है। पीछे या तो सूजन कम हो कर मूसी उड़ने लगती है या सूजन दिमाग (भेजा) या हवा, की नाली में फैल कर रोग को असाध्य बना देती है। दिमाग और उसकी झिल्लियों में सूजन पधारते ही मृत्यु हो जाती है।

लक्षण के अनुसार यह रोग तीन प्रकार का है। (१) "क्यूटेनियस[१]" जो केवल त्वचा ही पर होता है। और समय पर आराम हो जाता है। (२) "फलग् मोनिस[२]" इसमें सूजन मास झिल्ली, और चर्बी आदि में फैलती है। इसमें पीप पड़ जाती है, कभी २ सड़न दौड़ जाती है। यदि यही स्थिर न रह कर फैलती जावे तो "डिफ्यूज्ड"[३] एरीसिपेलस" कहते हैं, यह खराब है। (३) माइग्रेटरी या "एरेटिक एरीसिपेलस" जिस्में बेकायदा सूजन त्वचा में फैलती है। किन्तु लक्षण सरल होते हैं गर्मी केवल कुछ परिवर्तित होती है।

(२) ट्रामेटिक = चोट सम्बधी लक्षण—

यह प्राय अस्पतालों में जहां घाववाले रोगी होते हैं और जच्चाओं को ज़च्चाख़ानों[1] में होता देखा गया है। वे ज़ख्म जो कुचट से उत्पन्न हों वहां, और प्राय लिङ्गेन्द्रियों पर के ज़ख्म में और पेट और अण्डकोश के घावों में, इस की छूत लगती है। अमल ज़र्राही (आपरेशन आदि) के पीछे भी इसका उदय जर्राह की असावधानी के कारण होता देखा गया है। जहां घाव हो वहां इस विष का असर वायु द्वारा वा स्पर्श द्वारा होते ही शारीरिक लक्षण उदय होते हैं अर्थात् निर्बलता, हड़फूटन, सारे शरीर में दर्द, और जाड़ा देकर ज्वर की सवारी आ जाती है, रोगी बहुत निढाल हो जाता है। रोग तीन प्रकारों में से जिस प्रकार का हो उसी प्रकार का लक्षण भी सरल, कठिन, और भयानक होता है। स्थानिक लक्षण यह होते हैं कि—घाव लाल और उसके किनारे सूज कर बाहर लौट जाते हैं। पीप दुर्गंधित होती है। भेदों के अनुसार लक्षण भी उदय होते हैं, अर्थात्—

१ सरल—इसमें केवल घाव के चारों ओर अपरिमित लाली, त्वचा सूजी हुई मोटी, और कभी २ पीप के सड़ने के कारण झलकेदार, होती है। दर्द और जलन सब "इडियोपेथिक एरिसिपेलस" की भांति होते हैं।

२ कठिन—इसमें घाव के चारों ओर की त्वचा चमकदार सूजी हुई, गर्मी अधिक और तनी हुई होगी। इसके विपरीत सारे शरीर पर सर्दी और फीकापन पाया जावेगा। रोगिल स्थान छूने से कठोर और वहां दर्द टीस मारने वाला होगा,

---

१ जच्चाओं को प्रसूत ज्वर इसी से हो जाता है।

घाव का रंग बुरा, और बढ़ाव की ओर झुका हुआ पाया जावेगा।

३ भयानक—रोगित स्थान खूब सूज जाता है। रंगत सब स्थान की नीली होती है। कुछ दिन उपरान्त सड़ने की सी रंगत हो जाती है। इस की सूजन फैलती जाती है।

परिणाम—इडियोपेथिक[1] का—रोगित स्थान पर नीले रंग का फफोला पड़े, या रोगित स्थान काला पड़ जावे, पीप पड़ जावे, शिर दिमाग (भेजा) और हवा की नाली में भी सूजन पहुंच जावे, वा यह मरी की भांति फैले। इनके सिवाय बूढ़ा, बच्चा वा गुर्दे का रोगी हो, तो परिणाम अशुभ तथा भयानक है।

परिणाम—ट्रामेटिक का—(१) सरल यह १० वा ११ दिन में अराम हो जाता है। शर्त यह कि रोगी बलवान हो, किन्तु यदि रोगी निर्बल है तो घाव बिगड़ कर वा सड़कर खराब हो जाता है। शरीर का रोगित भाग बहुत दूर तक सड़ गल जाता है। यहां तक (२) कठिन का भी परिणाम आ गया। अब (३) भयानक-का परिणाम बहुत ही बुरा समझना अर्थात् इसमें रक्तविष (ब्लड पाइजनिंग) से रोगी मर जाता है।

सम्मिलित रोग—प्यूरपरल फीवर (प्रसूति ज्वर) पाइमिया, सेप्टीसीमिया, आदि।

रोग से बचने का उपाय—"इडियोपेथिक" से बचने के लिये चाहिए कि रोगी से और यदि मरी हो तो नगर से, दूर रहें। ऐसे रोगी के पास जाकर उसी कपड़ों से घर में

१ जो आपही आप बिना चोट आदि के हो।

न घुसें। परन्तु कपड़े आदि मरकरी लोशन (छूतनाशक जल) से धो कर बाहर सुखावें। अपने शरीर को भी उसी अर्क द्वारा या गर्म जल द्वारा शुद्ध करके तब अपने घर में जावें। क्योंकि यह बड़ा बुरा रोग है, और हर प्रकार से इसकी छूत तैय्यार रहती है, जहां जरा चूक हुई कि इसके वशीभूत होना पड़ा। इससे प्रथम तो ऐसे रोगी के समीप ही न जावे, यदि जाये तो बिना स्पर्श के दूर से देखे। कोई वस्तु अपने शरीर वा कपड़ों से न छू जावे इसका खूब ध्यान रक्खे। यदि उस घर में, जिसमें कि इस रोग का रोगी हो, कोई घाव वाला वा प्रसूता हो तो तुरत वहां से उन्हें हटा देना चाहिये। इन दोनो के हक में यह रोग बहुत ही बुरा है। जब इसकी वबा (मरी) फैली हो तब सब कुटुम्ब को उस स्थान से दूर ले जाकर रक्खें। आरोग्य होने पर घर की उसी भांति सफाई करें जैसा अन्यान्य छूत वाले रोगों में वर्णन कर आये हैं।

ट्रामेटिक (चोट वाले) में विशेष ध्यान जराहों वा जो मरहम पट्टी लगावें उनको देना उचित है। कहीं ऐसे रोगी को देख कर किसी अन्य घाव वाले रोगी वा प्रसूता के पास न चले जावें। क्योंकि यह रोग दोनों को बुरा है। घाव खूब साफ और छूतनाशक अर्कों द्वारा धोना चाहिये। धोने वाले का हाथ भी छूतनाशक अर्कों द्वारा शुद्ध रहना उचित है। घाव पर की रुई और बिगड़ी हुई पट्टी जला दें या गड़वा दें।

चिकित्सा, इडियोपेथिक एरीसिपेलस की—
बहुत बखेड़ा न लिख कर लाभदायक और जंची हुई औषधियां

ही लिख देना उचित समझते हैं। इस रोग में लोहे का टिंक्चर जिसे टिंक्चर स्टील कहते हैं वही उत्तम और लाभदायक औषधि है। यह औषधि न केवल खिलाने के काम की है, किन्तु बाहर लगाने में भी अपूर्व लाभ पहुंचाती है। इस औषधि से सब अशुभ लक्षण दूर हो जाते हैं। नुसखा यह है—

टिंक्चर स्टील	४० बूंद
क्लोरिक ईथर	४० बूंद
ग्लिसरीन	४० बूंद
पानी	२ औंस

मिला कर ऐसी एक मात्रा एक तरुण रोगी को तीन २ या चार २ घन्टे पीछे दें। ज्यों २ आराम जान पड़े त्यों २ औषधि की मात्रा घटाते जावें। और जो २ कष्ट उपस्थित हों, जैसे दर्द आदि, उनकी यथोचित चिकित्सा करें अर्थात् रात में नींद न आवे तो ब्रोमाइड आफ पुटास २० ग्रेन खिलावें। पाखाना न हो तो रेंडी का तेल या मेगनेसिया सल्फास १ ड्राम या २ ड्राम पानी में घोलकर पिलावें।

स्थानिक चिकित्सा में कास्टिक की बत्ती से सूजन के किनारे दाग दें। इससे उस समय अधिक लाभ होता है जब एरीसिपेलस "डिफ्यूज्ड" प्रकार का हो। पीछे नीचे लिखा मरहम लगावें।

हीरा कसीस
वेसलीन या सादा मरहम
खूब घोंट और मिला
पीछे रुई रख कर बांध दें

चिकित्सा, ड्रामेटिक एरीसिपेलस की—दुर्बलता में बलकारक ओषधि दें। घाव को "कार्बोल लोशन" = १-१००० वाले से या "मरकरी लोशन" $\frac{1}{2000}$ वाले से खूब साफ धोवें। पट्टी और फर्श साफ बांधें। यदि पीप अधिक निकलती हो तो घाव को दिन में दो तीन बार धोकर बांधे।

यलो फीवर Yellow Fever पीतज्वर

यह एक तेज छूतदार रोग है। इसमें त्वचा पीली पड़ जाती है। इसी से इसे "पीतज्वर" कहते हैं। यह निचली भूमि जैसे तराई आदि देशों में मरी की भांति फैलता है। यह एक बार होता है। इसमें दस्त और वमन काले रंग के होते हैं। जहां गर्मी का दर्जा ७२ दर्जे से कम है वहां यह नहीं होता। इस ज्वर को "हीमोगैस्ट्रिक" फीवर (आमाशय से रुधिर निकलने वाला ज्वर) भी कहते हैं।

कारण—रोगी द्वारा वा वायु द्वारा छूत का लगना है।

लक्षण—छूत लगने के दो से १५ दिन तक केवल रोगी सुस्त काहिल और चिड़चिड़ा हो जाता है। पीछे जाड़ा देकर ज्वर चढ़ता है। त्वचा पीलिया की भांति पीली पड़ जाती है, जीभ लाल, मध्य में मैली, होती है। रोगी शिथिल हो जाता है। आंखें पानी से डबडबाई और कुछ लाल हो जाती हैं। वमन बार २ काले रंग की होती है। दस्त भी, जिसमें लोहू मिला होता है, बहुत आता है। मल अलकतरा की भांति का होता है। मूत्र में "एलब्यूमन" मिलता है। कभी २ मूत्र बंद हो जाता है। आमाशय पर दर्द जान पड़ता है। कभी २ वमन में भी लोहू मिला होता है। यदि सरल रोग है तो दो तीन सप्ताह में अच्छा हो

जाता है। छठे दिन अशुभ लक्षण कम होने लगते हैं। और कठिन रोग में छः घन्टे पीछे अशुभ लक्षण उदय होते हैं। तीसरे दिन रुधिर वमन द्वारा निकलने लगता है। अन्त में निर्बलता हो कर रोगी मर जाता है।

निदान—इस रोग से और "लोरिमिटेन्ट फीवर" से बहुत कुछ मेल है इससे दोनो की पहिचान नीचे लिखते हैं।

यलो फीवर।	लोरिमिटेन्ट फीवर।
(१) यह बिना बारी का ज्वर है।	(१) यह बारी से आता है।
(२) ज्वर के दूसरे दिन मूत्र में एलब्यूमन मिलता है।	(२) नहीं मिलता।
(३) तिल्ली नहीं बढ़ती।	(३) तिल्ली बढ़ जाती है।
(४) "कमवलआन" हो तो शीघ्र होता है।	(४) धीरे२ कमवलआन होता है।
(५) तीसरे दिन मर जाता है।	(५) सातवें दिन से पहिले कम मृत्यु सुनी गई है।
(६) वमन और मल के साथ लोहू निकलता है।	(६) कभी२ लोहू निकलता है।
(७) कुइनाइन से ज्वर नहीं रुकता।	(७) रुक जाता है।

इसके सिवाय एक साथ भारी ज्वर चढ़ना, काले रंग की वमन और दस्तों का लोहू मिश्रित आना, त्वचा का पीला पड़ना, जोड़ों में बहुत दर्द, आदि से निदान पूर्ण हो जाता है।

परिणाम—बुरा है। काले रंग की वमन, और मूत्र का बन्द होना रुधिर का अधिक निकलना, "यूरेमिया" आदि होना अशुभ परिणाम है।

रोग से बचने का उपाय—यदि यह रोग घर या बस्ती के किसी भाग में हो तो तुरत स्थान परिवर्तन करें। रोगी के समीप न जायँ और न किसी को समीप जाने दें। आरोग्य होने पर घर की सफाई, जैसा पहिले लिख आये हैं, करें।

रोगी की चिकित्सा—वमन रोकने के लिये बर्फ चुसावें। या त्वचा में मारफिया की पिचकारी करें। "क्रियोसोट" चीनी में डाल कर दें। या विसमिथ सब नाइट्रास १० ग्रेन, क्रियोसोट १ मिनम, सोडा १० ग्रेन, मिलाकर ऐसी १ पुडिया तरुण रोगी को प्रत्येक तीन २ घन्टे पीछे दें। आमाशय पर तारपीन मल कर सेंक करें। ज्वर तेज हो तो गर्म जल से स्नान करावें या गीली चादर में रोगी को लपेटें। जब गर्मी उतर जाये तो वायु से बचा कर कम्बल उढ़ा कर ऊंचे स्थान में सुलावें। रोगी ठंढा पड़े तो मदिरादि दें। खाने को हलकी पथ्य जैसे दूध, शोरबा, यखनी आदि दें। रोगी को साफ हवादार और ठंढे कमरे में रक्खें। बन पड़े तो पहाड़ आदि ऊंचे स्थानों पर ले कर रहें। आरोग्य होने पर "इस्टन सीरप" का सेवन करावें।

सेरीब्रो-स्पाइनल फीवर (Cerebro-Spinalfever)

या सेरीब्रो-मेनिनजाइटिस Cerebro Maningitis

यह भी एक प्रकार के विष से उत्पन्न होता है इसमें दर्द बहुत तेज़ होता है। रोग मरी की भांति फैलता है।

कारण—जाड़े के दिनों में एक मुख्य छूत के विष से यह रोग प्रत्येक को होता है, किन्तु लड़कों को कम होता देखा गया है।

लक्षण—जाड़े से ज्वर चढ़ता है। शारीरिक गर्मी १०२ से १०४ दर्जे और नाड़ी प्रति मिनिट १०० से १२० या १३० गति की होती है। साँस शीघ्र २ चलती है। सारे शरीर में बड़ा दर्द होता है। रीढ़ में बड़ा बुरा दर्द, जिसे रोगी सह नहीं सकता, होता है। शरीर अकड़ जाता है। आँखें भीतर को खिच जाती हैं। पेट पीठ से लग जाता है। मस्तक पीछे झुक जाता है। मुख मिच जाता है। वमन भी होती है। आँख की पुतली सिकुड़ जाती है। सरल रोग में बुद्धि विकार नहीं होता, किन्तु कठिन रोग में बुद्धिविकार होता है। अचेतता में रोगी पड़ा रहता है। किसी किसी में लकवा, कभी आधे धड़ का और कभी आधे शरीर का होता है, जो पाया जाता है। कोई २ बहरे हो जाते हैं। कठिनता में जगह २ रुधिर के धब्बे शरीर पर दिखाई पड़ते हैं। दिमागी लक्षण, कठिनता में कठिन और सरलता में सरल होते हैं। कठिन दशा में रोगी का बचना असम्भव है।

सम्मिलित रोग और फल—जोड़ों में पीप पड़ जाती है। दाई आख फूल कर बैठ जाती है। फेफड़े की बीमारी जैसे खांसी "न्यूमोनिया" (फेफड़े की सूजन) "पीकार्डाइटिस" (हृदय के ढाकने वाली झिल्ली की सूजन) आदि रोग हो जाते हैं।

परिणाम—बुरा है। सैकड़े पीछे साठ आदमी मर जाते हैं। छोटे २ बच्चे बहुत शीघ्र मर जाते हैं।

रोग से बचने का उपाय—जहाँ यह रोग फैला हो वहां से भाग जावें। स्वास्थ्य रक्षण के नियमों का पालन करते रहें। रोगी से दूर रहें। सफाई मुख्य उपाय है।

चिकित्सा—पुटास आयोडाइड	५ ग्रेन
,, ब्रोमाइड	१० ग्रेन
टिंक्चर बेलाडोना	५ बूंद
एक्वा कैम्फर	१ औंस

मिलाकर ऐसी एक मात्रा प्रत्येक तीन ३ या चार ४ घण्टे पीछे पिलावें। रात को आधा ड्राम "लायकर मार-फिया" पानी में मिलाकर दें। अचेतता में केवल "स्टिम्यु-लेंट मिक्श्चर" देवें। जलवायु का उत्तम प्रबंध करें। निर्ब-लता न होने पावे इसका ध्यान रक्खें। यदि हो तो प्रारम्भ ही से "स्टिम्युलेंट" (शक्तिधारक) औषधियों का सेवन करावें।

डेंग्यू फीवर Dangue Fever लगड़ा बुखार।

यह बड़ा ही बुरा छूतदार रोग है। इसमें शरीर के सारे जोड़ जकड़ जाते हैं और उनमें बड़ी असह्य पीड़ा होती है। यह रोग सन् १८७२ ई० में सारे हिन्दुस्तान में हुआ था तब से आज तक फिर इसका रोगी नहीं दिखाई पड़ा। लेकिन इसका नाम बूढ़ों की जिह्वा पर अबलों खुदा हुआ है।

कारण—यद्यपि यह रोग भारत वर्ष में एक ही बार हुआ इसलिये इसका ठीक २ कारण नहीं ज्ञात हुआ, तो भी यह छूतदार अवश्य है इसमें सन्देह नहीं। कारण कि यह बवाई (मरी) है। बिना विष के मरी नहीं हो सकती।

लक्षण—जाड़ा देकर ज्वर चढ़ता है। ज्वर के सब लक्षण उदय होते हैं अर्थात् मस्तक में पीड़ा, मल का कड़ा होना, प्यास अधिक, भूख कम आदि, होकर नवीन गठिया

की भांति सारे शरीर के जोड़ों में दर्द होता है। दर्द भी ऐसा होता है कि मानो हड्डियां टूटी पड़ती हैं। इसी कारण कोई इसे "ब्रेक बोन फीवर" Break bone fever (हड्डी तोड़ने वाला ज्वर, हड़खाल) कहते हैं। निर्बलता अधिक होती है। रोगी चल फिर नहीं सकता। किसी २ की गिलटियां सूज जाती हैं। ज्वर से दूसरे या तीसरे दिन ऊपर के लक्षण कम होने लगते हैं। लेकिन ज्वर एक बार अच्छा हो कर फिर लौट आता है। सारे शरीर पर लाल चकत्ते पड़ जाते हैं। चकत्तों में खुजली और जलन अधिक होती है। आराम होने वाला होता है तो सात आठ दिन में रोगी आरोग्य हो जाता है। केवल निर्बलता और जोड़ों की, विशेष कर घुटनों की, कठोरता बाकी रह जाती है। किसी २ को खांसी, "न्यूमोनिया", पीलिया, आखों की सूजन, अदृश्य फोड़े, अतिसार आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

परिणाम—अच्छा है। कोई २ जोड़ों की कठोरता में बहुत दिन तक ग्रसित रहते हैं।

रोग से बचने का उपाय—

जब इसका कारण ही नहीं जान सके तब उपाय क्या करते? यह रोग एक ही बार हिन्दुस्तान में देखने में आया इस कारण न तो कुछ उपाय कर सके और न चिकित्सा ही उत्तम हो गई। भगवान करे यह रोग भारत से दूर ही रहे।

रिलेप्सिंग फीवर Relapsing Fever अकाल ज्वर

रिलेप्सिङ्ग फीवर अर्थात् बार २ लौटने वाला ज्वर दोनों प्रकारों की छूत वाला रोग है। प्राय यह अकाल में होता है इसीसे इसे Famine fever (फेमीन फीवर)

अकाल ज्वर कहते हैं। पुरुषों को अधिक होता है।

कारण—छूत लगना है। यह रोग जाड़ा बुखार रोग का भाई है। जिस वक्त जाड़ा बुखार का रोग कम होता है, उस समय यह उसकी एवज़ में काम करता है। जहां बहुत से अकाल-ग्रस्त मनुष्यों की भीड़ जमा होती है, वहां ही यह उत्पन्न होता है।

लक्षण—एक साथ जाड़े से ज्वर चढ़ता है। शारीरिक गर्मी १०२ से १०४, किसी २ में १०८, दर्जे तक की होती है। जोड़ों में दर्द उत्पन्न होता है। आंखों में गढ़े और उनके चारों ओर काला घेरा पड़ जाता है। पसीना एक बूंद नहीं आता। मूत्र[१] लाल रंग का, परिमाण में कम, निकलता है। रोगी बेचैन और शिथिल पड़ जाता है। पित्त बहुत वमन होता है। पेट और पांव पर लाल धब्बे पड़ जाते हैं। तिल्ली और जिगर (यकृत) बढ़ जाते हैं। दबाने से तिल्ली पर दर्द जान पड़ता है। रात में रोगी बक झक बकता है, कभी २ औन्मादिक लक्षण रात्रि में प्रगट होते हैं। मुख फीका और चेहरे पर उदासी छा जाती है। पीलिया रोग की भांति रोगी पीला पड़ जाता है। चार पांच दिन तक ज्वर एकसा रातदिन चढ़ा रहता है। कभी २ कुछ पसीना चुकचुका उठता है। पांच सात दिन में ज्वर एक साथ उतर जाता है। उपरान्त आठ दस दिन तक रोगी आरोग्य रहता है। किन्तु फिर ज्वर, जो प्रथम बार की अपेक्षा हलका होता है, चढ़ आता

---

१ "एलब्यूमन" भी निकलता है। कभी मूत्र बंद और कभी उसमें रुधिर पाया जाता है।

है और दो चार दिन रह कर चला जाता है। इसी प्रकार कई बार ज्वर आता और जाता रहता है। महीनों यही तार इस रोग का लगा रहता है। धीरे २ रोगी निर्बल हो कर या ठंडा पड़कर, कभी २ भेजे के रोगो के कारण, मर जाता है। यदि आरोग्य होने वाला है तो पांच छ सप्ताह में रोगी अच्छा होने लगता है।

सम्मिलित रोग और फल—इस रोग में गठिया, फेफड़े के रोग, गर्दन, बगल और जांघो की शोषक (लिम्फेटिक) गिलटियो में पीप पड़ना, आदि रोग हो जाते हैं। दस्त, पेचिश, न्यूमोनिया, आंख में सूजन या घाव, गर्भिन स्त्रियो में गर्भपतन, आदि रोग भी हो जाते हैं।

परिणाम—सैकड़े पीछे तीस या चालीस मनुष्य मर जाते हैं।

निदान—बार २ लौटना अर्थात् पांच सात दिन में ज्वर एक साथ (क्राइसिस द्वारा) उतरना और बारह चौदह दिन के उपरान्त फिर आना, इसी प्रकार कई बार आना जाना, दूसरे ज्वरों में नहीं होता।

रोग से बचने का उपाय—अनाथालयो आदि की दूषित वायु से बचते रहें। भूखे न रहें। और किसी ऐसे मेले तमाशे या अन्य स्थान में न जायें जहां बड़ी भीड़ हो। अकाल के दिनो प्रातःकाल कुछ जलपान कर लिया करें। रोगी से दूर रहें। किसी तंग कोठरी में बहुत से मनुष्यों के साथ न बैठें। स्वास्थ्यनियमों का पालन करते रहें। शुद्ध वायु का सेवन करें। इस हेतु किसी ऊंचे स्थान, जैसे पर्वत आदि पर, जा रहें। रोगी के घर की सफाई करें,

आरोग्य होने पर छूतनाशक अर्कों से घर और सामानों को खूब शुद्ध करें।

रोगी की चिकित्सा—ऐसा प्रबंध करें कि जिससे मल मूत्र का काम अच्छी प्रकार हो। यदि कब्ज[1] हो तो रेंडी का तेल वा सलफेट आफ मेगनेसिया चार ड्राम वा १ औंस की मात्रा में देकर पेट साफ करें। यदि ज्वर तेज हो तो उस के लिये नीचे का नुसखा दें—

लाइकर एमोनिया एसीटेटिस	१२ ड्राम
पुटास नाइट्रेट	३० ग्रेन
स्पिरिट ईथर नाइट्रिक	१ ड्राम
मेगनेसिया सल्फ (यदि कब्ज हो)	१२ ड्राम
एक्वा कैम्फर	६ औंस

मिला कर इसमें से एक औंस की मात्रा प्रत्येक तरुण रोगी को प्रत्येक तीन २ वा चार २ घन्टे पीछे दें। नींद लाने को

क्लोरेल हैड्रेट	२० ग्रेन
पुटास ब्रोमाइड	५० ग्रेन
पानी	२ औंस

मिला कर रात में सोते वक्त दें। गाल्ह सुजें तो कान के पीछे ब्लिस्टर (छाला डालने वाली औषधि) लगावें। और सयोगी रोगों की उचित चिकित्सा, जैसा देखें वैसा, करें करवावें। रोगी को पथ्य ऐसी दें जिससे कब्ज न हो और जो शीघ्र पचे; जैसे दूध, शोरवा, सैगो, बारली, आदि।

---

[1] कैलोमिल २ ग्रेन गोली बनाकर दें।

आराम से और सफाई से रक्खें। बहुत से मनुष्यों को पास न बैठने दें।

ट्रू क्रूप TRUE CROUP

इसको डिफथेरेटिक क्रूप Diphtheritic Croup या मेंम्ब्रेनस क्रूप Membranous Croup भी कहते हैं। यह एक कठिन घातिक छूत दार रोग है जो बहुधा बच्चों को होता है। यह कभी "स्पुरेडिक" और कभी "इपीडेमिक" प्रकार का देखा गया है। इसका विष स्वास द्वारा या रुधिर में प्रवेश हो कर अपना असर प्रगट करता है।

हवा की नाली की बलगमी झिल्ली में प्रथम रुधिर अधिक पहुंच कर एक प्रकार का रिसाव होने के उपरान्त, कौठवा के पास एक सफेद झिल्ली "डिफथीरिया" की भांति उत्पन्न होती है और सहज में उखड़ जाती है।

कारण—दो प्रकार का है १ आन्तरिक २ प्रत्यक्ष।

१ आन्तरिक कारण—बच्चों को दूध के दांत निकलने के समय, अर्थात् ६ महीने से ६ वर्ष तक की अवस्था में, बहुधा होता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में अधिक देखा जाता है। माता का दूध न मिलना, ऊपरी दूध पिलाना, तराई के देशों में एकाएक ऋतु में परिवर्तन होना, निर्बलता आदि भी इसके आन्तरिक कारण हैं।

२ प्रत्यक्ष कारण—कुल शरीर या केवल गले पर सर्दी लगना, भीगना, वा इस रोग के रोगी की छूत स्वास द्वारा या अन्य प्रकार से शरीर में प्रवेश करना हैं।

लक्षण—आरम्भ में ज्वर जुकाम के साथ होता है। शारीरिक गर्मी बढ़ जाती है, नाक बहने लगती है। जीभ

मैली हो जाती है। प्यास अधिक लगती है। कब्ज होता है। पश्चात् इसके बोली भारी हो जाती है। खांसी सूखी और एक मुख्य प्रकार की होती है, निगलने में दुःख होता है। एक दो दिन बीतने पर कठिन लक्षण अर्थात ज्वर अधिक हो जाता है। त्वचा की रंगत काली पड़ जाती है। हाथ और गोड ठंडे हो जाते हैं, नाड़ी की गति बढ़ जाती और वह कुछ कड़ी तथा भरी हुई चलती है। लड़का एकाएक चौंक कर बिछौने पर बैठ जाता है, दम घुटने लगता है, जिससे बेचैनी अधिक हो जाती है। चेहरे की रंगत फीकी पड़ जाती है या लाली छा जाती है, चेहरे की खूनी रगें उभर आती हैं, आँखें लाल, पानी से डबडबाई, स्वास लेने में कष्ट, भीतर की सांस लम्बी तेज़ और प्रत्येक इसप्रेशन[1] के साथ एक सूखा शब्द मुर्गे के चीख़ने की भांति जो एक बार सुनने से नहीं भूलता,—ये चिह्न होते हैं। जब उपर्युक्त लक्षणों में कमी होती है, तो बच्चा सुस्त और दुखी होता है। ऐंठनी (तसनुजी) खांसी, जिससे बच्चा बिलबिला उठता है, सुबह के समय अधिक होती है। फिर ऐसी ही खांसी का समय आने से सोता बच्चा जाग उठता है। लक्षणों में तेज़ी हो जाती है। चेहरा लाल, कुछ कालापन लिए, हो जाता है। बच्चा हरदम मुंह में उंगली डालता है। मानों कंठ से कोई अटकी हुई वस्तु निकालने की चेष्टा करता है। ऐंठनी खांसी उठते ही सिर पीछे झुका लेता है। सांस जल्दी २ लेने लगता है। कठिन रोगियों में विश्राम का दर्जा कम वा बिलकुल नहीं होता। हर समय दम घुटने की

---

१ स्वास के भीतर खींचने की दशा को कहते हैं।

दशा पाई जाती है। ठंडा पसीना सारे शरीर में आता है बेहोशी होकर मरने की दशा पहुंच जाती है।

अवधि—इस रोग की अवधि २४ घन्टे से लेकर ५ दिन तक है, कभी २ दो हफ्ते तक देखी गई है। शुभ लक्षण यह हैं कि खांसी तर हो जाय, बलगम निकलने लगे, खांसते २ झूठी झिल्ली निकल जाय, स्वास साफ हो जाय तो जीने वा आरोग्य होने की आशा है, नहीं तो अन्यान्य रोग सहायक हो कर मार डालते हैं।

निदान—इस रोग में और "कटारल लेरिंजाइटिस" (हवा की नाली की सूजन) "डिफथीरिया" (गले में झूठी झिल्ली वाले रोग) "फाल्स क्रूप" (झूठा क्रूप) में बहुत मेल है, इससे धोखा हो जाता है, अस्तु इन का आपस का भेद जानना उचित है।

डिफथीरिया।	ट्रू क्रूप।
(१) यह धीरे २ होता है।	(१) यकायक देखने में आता है।
(२) पथ्य की नाली (फेरिंग्स) में होता है।	(२) हवा की नाली (लेरिंग्स) में होता है।
(३) जबड़े की गिलटियां सूज जाती हैं। "लकवा" और एलब्यूमिनेरिया (मूत्र रोग) हो जाता है।	(३) इसमें नहीं होता।

लॅरिंजाइटिस।	ट्रू क्रूप।
(१) जवानों को होता है।	(१) बच्चे अधिक ग्रसित होते हैं।
(२) हवा की नाली में जलन होती है। झूठी झिल्ली तो नहीं, हां घाव अवश्य होता	(२) हवा की नाली में झूठी झिल्ली पैदा होती है। दम घुटता है। खांसी साथ

है। खांसी मुख्य प्रकार की और कफ अधिक निकलता है।	तरह की और बलगम (कफ) नहीं निकलता।
(३) जुकाम नहीं होता और ज्वर भी कम होता है।	(३) जुकाम और ज्वर साथ होता है। ज्वर तेज होता है।
फाल्स क्रूप।	**ट्रू क्रूप।**
(१) यकायक बिना किसी लक्षण के प्रगट होकर यकायक आराम हो जाता है।	(१) कोई न कोई लक्षण प्रगट होने के उपरान्त होता है। और धीरे २ आराम होता है।
(२) ज्वर नहीं होता।	(२) होता है।
(३) खांसी मुख्य प्रकार की नहीं होती।	(३) मुर्गे के चीखने की आवाज़ होती है।
(४) विश्राम में कोई क्लेश नहीं होता।	(४) विश्राम में भी क्लेश बना रहता है।
(५) कम्वलशन[१] होता है।	(५) कम्वलशन् नहीं होता।

परिणाम—जब विश्राम काल में क्लेश कम हो, झूठी झिल्ली खांसी के साथ निकल जावे, निर्बलता कम हो, और कोई अन्य रोग का संयोग न हो तो परिणाम अच्छा है। परन्तु जब हवा की नाली में ऐंठन होने के कारण हवा फेफड़े में न जावे, या रोग बढ़कर हवा की सूक्ष्म नालियों में फैल जावे, ज्वर आरम्भ ही से तेज हो, और श्वास लेने में कष्ट हो, शुष्क (सूखी) खांसी हो, नाड़ी बारीक, शीघ्र २ और अनियमित हो, निर्बलता अधिक हो, चेहरा नीला तथा फिंचा हुआ, आंखें घुमी हुई हों, तो

---

१ पट्ठों में एक प्रकार की ऐंठन होती है।

परिणाम अशुभ है।

रोग से बचने का उपाय—ऐसे रोगी बच्चे के समीप निरोगी बच्चों को न ले जावें। निरोगी बच्चों को साफ रक्खें, सरदी न लगने दें, ऊपर का दूध न पिलावें, यदि पिलावें भी तो बकरी का दूध दें। यदि यह रोग हो जाय तो उसकी चिकित्सा करें।

चिकित्सा— रोग के आरम्भ में रोगी को गर्म जल में दस मिनिट तक बैठावें, "एपीका केवाना" वमन लाने को दें। ज्वर के लिए उचित चिकित्सा करें। कफ निकालने के लिए "इपीका क्युआना" उचित मात्रा में दें। यह नुसखा उत्तम होगा—

लाइकर एमोनिया एसीटेटिस	२ ड्राम
टारटार एमेटिक्	१० ग्रेन
स्पिरिट ईथर नाइट्रिक	१५ मिनम्
पुटासी नाइट्रास	५ ग्रेन
मेगनेसिया सलफास	दो ड्राम
वाइनम् एपीकाक	१० मिनम
पुटास ब्रोमाइड	१० ग्रेन
पानी कपूर का	१ औंस

मिलाकर इसमें से एक या दो ड्राम की मात्रा में एक या दो वर्ष के बच्चे को प्रत्येक ३ या २ घण्टे पीछे पिलावें। जब रोग कठिन हो तो "फलालेन" या स्पञ्ज के टुकड़े को गर्म पानी में डुबो निचोड़ कर गले को सेंकें। पीछे फलालेन या और गर्म पट्टी से गले को बांध रक्खें। यदि इससे लाभ न हो तो "एपीका क्युआना" वमन कारक मात्रा में दस २

या पन्द्रह २ मिनिट में खिलावें जब तक कि भली भांति वमन न हो जावे। पांच वर्ष के बच्चे के लिए यह नुसखा उत्तम है–

आयोडाइड आफ पुटासियम	१ ग्रेन
एरोमेटिक स्पिरिट आफ एमोनिया	२ मिनम्
टिंचर सुमेगा	२ ,,
पिपरमेंट वाटर	३ ड्राम

यह एक मात्रा है। ऐसी मात्रा दो दो या तीन २ घन्टे पीछे दें। खाने को दूध, शोरवा, चाह आदि पिलावें। यदि ज्वर अधिक हो तो गर्म जल से स्नान कराए या स्पञ्ज भिगोकर शरीर को पोंछें। निर्बलता में स्टीम्युलैन्ट Stimulant औषधियां जैसे एमोनिया, ईथर, ब्रांडी, आदि देवें। झूठी झिल्ली निकालने को भाप या चूने का गर्म पानी, "स्प्रे"[१] Spray के द्वारा कंठ में पहुंचावें। मरकरी आइन्टमेंट (पारे का मरहम) रोग स्थान पर मलें। पारा आदि न खिलावें। साफ हवादार घर में रोगी को रक्खें। साफ कपड़े आदि पहिरावें। स्वास्थ्यरक्षण के नियमों का पूरा २ बन्दोबस्त करें।

प्लेग = PLAGUE मरी–ताऊन

परिभाषा—छूतदार रोगों में इस का आसन सब से ऊंचा है। अथवा यों कह लीजिए कि यह छूत वाले रोगों का दादा है। प्राय दस बारह वर्ष से यह जनसंहारक रोग भारत वर्ष को जन शून्य बनाने की चेष्टा कर रहा है।

---

१ एक टोटीदार यन्त्र है जिस में गर्म जल भर कर मुख द्वारा कंठ में भाप लेते हैं।

यद्यपि यह रोग पहिले भी भारतवर्ष में कई बार हो चुका है तदपि इसे सर्वसाधारण, जो इस सदी में विद्यमान थे वा हैं, नहीं जानते थे। इसी से इस के पधारते ही जनसमुदाय में भांति २ के तर्क वितर्क उठ खड़े हुए। कोई कहता है कि यह ईश्वर का कोप है, कोई कहता है कि नहीं यह कोप वोप कुछ नहीं सरकार ने ही मनुष्यों के मारने के लिए नयी बीमारी फैलाई है, आदि इन्ही शङ्काओं के वशीभूत हो कितने ही स्थानों में बलवे, दंगे, आदि कितने ही बखेड़े हुए। फल भी वही हुआ जो प्राय होता है। अर्थात् कई एक फांसी पा गए। कई एक कठिन कैद में डाले गए। विचार से सिद्ध हुआ है कि यह बीमारी एशियाई है, इस का पता चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थों तथा पुराणों में अच्छी तरह लगता है। तुजुक जहांगीरी में भी इस का आगरे आदि नगरों में होना सिद्ध है।

सब से प्रथम यह रोग ईसा के ४३० वर्ष पूर्व "एथन्स" नगर में हुआ था। उस के पीछे यह मिश्र देश में पहुंचा। छठी शताब्दी में मिश्रदेश से यूरप में जा पहुंचा। सन् १६६७ में फिर इसने इंगलैंड पर चढ़ाई की। पश्चात् सन १८४० में रूस के कुस्तुनतुनिया में और १७०६ में फिर इंगलैंड में पधारा था।

भारतवर्ष में सन् १३४५ ई० में प्लेग का बीजारोपण होकर सन् १५६० के लग भग यह काशी शहर में हुआ। जहांगीर के समय सन् १६१८ ई० में आगरा और काशी में इसने खूब धूम मचाई। गो० तुलसीदासजी के समय में भी यह काशी में विद्यमान था। सन् १८१४ ई० में कच्छ और गुजरात

में तथा १८२५ में कमाऊं प्रदेश में हुआ। फिर इस का सन् १८३६ में बरेली तथा सन् १८३७ से सन् १८४४ तक हांसीहिसार में होना सिद्ध है। पश्चात् सन् १८९६ ई० में बम्बई नगरी में यह दुष्ट आया। तब से आज तक इसने भारतवर्ष को नहीं छोड़ा और न सांस दे। सांस की फुरसत ही दी।

उपर्युक्त लेख से यह सिद्ध हो चुका कि यह रोग न तो नया है और न दयालु सरकार ही इस में कुछ हस्तक्षेप करती है। यह जनसंहारक रोग पुराना पापी है, भारतवर्ष का चिरशत्रु है।

इस सदी में यह रोग पहले पहल सन् १८९५ ई० में बम्बई नगरी में हुआ। होने का कारण यह बतलाते हैं कि सन् १८९५ ई० के अक्टोबर महीने में हांगकांग से बहुत सामान से लदा एक तिजारती जहाज बबई में पहुंचा। उस जहाज से कुछ सामान बबई में उतारा गया। उन्हीं सामानों के किसी पुलिंदे में कई प्लेगी चूहे मरे निकले। लोगों ने साधारण चूहे जान कर इन्हें फेंक दिया। बस उन चूहों का असावधानी से फेंकना ही इस दुष्ट के फैलने का कारण कहा जाता है। बम्बई नगरी में फैलते ही लोगों ने भागना शुरू कर दिया। फल यह हुआ कि जहां २ वे लोग ग्रसित वा अग्रसित होकर पहुंचे वहीं २ यह प्लेग भी साथ लगा गया। प्राचीन काल में रेल आदि न होने से प्लेग जिस नगर में होता था वहीं जनसंहार करके चुप हो जाता था। किन्तु इस नवीन समय में रेल द्वारा आज बबई में तो कल पूना में और कल पूना में तो परसों कलकत्ते में इस का पहुंचना सहज हो गया। इन्ही कारणों से सम्पूर्ण भारत वर्ष में

फैल कर इसने अपना संहारक शासन शुरू कर दिया। सन् १८९६ ई० से १९०८ ई० तक ६० लाख के लगभग मनुष्य अकेले इस भयङ्कर रोग से मर चुके हैं। सन् १९०४ और १९०७ का "प्लेग" बड़ा ही भयावना हुआ है। लाशें ठेलों में लकड़ियों की भांति भर कर फेंकी, गाड़ी, तथा जलाई गयी हैं !! नगर गांव, महल तथा झोंपड़े जन शून्य हो गये !!

प्लेग की उत्पत्ति—कहते हैं कि लिबिया Libya उत्तरीय अफ्रीका में लगभग ४० या ४५ इंच नीचे की जमीन में एक प्रकार के जहरी कीड़े पाये जाते हैं। वे आकार में इतने सूक्ष्म होते हैं कि बिना सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के नहीं दीख सकते, किन्तु विकार में बड़े भयंकर होते हैं। इन्हें चूहे बड़े प्यारे हैं। यों तो ये गिलहरी, बंदर, आदि से भी खुश हैं तो भी इन कीड़ों को अपने स्वदेशी भाई चूहे ही अधिक प्रिय हैं। स्वदेशी कहने का यह अभिप्राय है कि चूहे भी पृथ्वी में निवास करते हैं, और प्लेगी कीड़े भी पृथ्वी के नीचे रहते हैं। अत एक दूसरे से बहुत शीघ्र मिल जाते हैं। चूहे बिल खोद कर इनके पास पहुंच जाते हैं। ये (कीड़े) चूहों के शरीर में प्रवेश कर उनके साथ ही बाहर आके उन्हें "प्लेगी चूहा" बना देते हैं, कीड़ों के असर से चूहे तत्क्षण मर जाते हैं। चूहों के मृतक शरीर से निकल कर प्लेगी कीड़े नरनारियों में फूट निकलते हैं। प्लेगी कीड़े ही इस रोग के प्रधान कारण माने जाते हैं। चूहे ही नर नारियों में इस रोग को फैलाते हैं। क्योंकि गृहस्थों तथा चूहों से बड़ा सम्बंध है। अथवा यों समझ लीजिए कि जहां अन्न राश है वहां चूहों का निवास है। और जहां चूहों का निवास

है वहीं प्लेगी कीड़ों का राज महल है। प्लेगी चूहे जहां एक घर से दूसरे में पहुंचे तहां तुरत प्लेग का प्रादुर्भाव हुआ। इसी से एक घर में होते ही आस पास के सब घरों में प्लेग फैल जाता है।

प्लेगी कीड़ों का आकार दो सरसो के बीच में एक डोरा लगा हुआ o—o इस प्रकार का है जो सूक्ष्मदर्शक से भली भांति दृष्टि आता है। अर्थात् एक बाल की जड़ में कई कीड़े निवास कर सकते हैं। एक आदमी के प्राण लेने को एक कीड़ा काफी है। मृतक शरीर में ये एक से एक हजार तक हो जाते हैं। इन की जन्मभूमि मिसर, श्याम, लिबिया आदि के सिवाय भारतवर्ष भी है।

इनका स्वभाव ऐसा है कि ये सीत, कीचड़ तथा ठंडक से बड़े बलवान होते हैं, और कुछ भी गर्मी से घबड़ा कर मर जाते हैं। यह घृणित तथा अपवित्र पदार्थों से अधिक प्रेम रखते हैं। ऐसे पदार्थों में पहुंच कर ये एक के अनेक हो जाते हैं। मनुष्यों की प्लेग गांठ में पहिले एक ही दो कीड़े होते हैं। फिर एक दो दिन में अधिक बढ़ जाते हैं। इनके बढ़ाने की तरकीब एक डाक्टर साहब ने यों बतलाई है कि थोड़ा शोरबा एक गिलास में भर कर कुछ गिनती के कीड़े उसमें डाल कर ऊपर से घी फैला दो दूसरे दिन उसमें अनगिनत कीड़े उत्पन्न हो जायगे।

इन कीड़ों का असर चूहे, गिलहरी, बन्दरों के रुधिर पर जल्दी होता है। चूहों का रुधिर इन्हें अधिक प्रिय है, चूहों के रुधिर में ये एक से एक सौ तक हो जाते हैं। एक चूहा एक कीड़े से मर जाता है किन्तु मरते ही उसके

शरीर में लाखों कीड़े हो जाते हैं जो और चूहों पर आक्र- मण कर नर नारियों में फैल जाते हैं। जिस मनुष्य का खून उनकी रुचि के प्रतिकूल होता है वही बच जाता है। अन्यथ उनके शरीर में प्रवेश करते ही मनुष्य का सारा रुधिर दूषित हो जाता है।

कारण—कारण दो प्रकार के हैं। (१) आन्तरिक (२) प्रत्यक्ष।

(१) आन्तरिक कारण–प्लेगी कीड़ों का मनुष्य के शरीर में प्रवेश करना ही मुख्य कारण है, जैसा ऊपर वर्णन कर आए हैं। चाहे ये कीड़े किसी प्रकार से क्यों न प्रवेश करें, उन के प्रवेश करते ही मनुष्यों में प्लेगी लक्षण उदय हो जाते हैं। इस के अतिरिक्त श्वास द्वारा या प्लेग रोगी के पीप, वस्त्र, तथा और सामानों द्वारा भी इस रोग का विष पैदा हो जाता है।

(२) प्रत्यक्ष कारण—नंगे रहना, नंगे पांवों फिरना, कंगाल होना, मैला रहना, अन्न आदि का जहां ढेर हो उस स्थान में रहना, मरे चूहे को हाथों से उठा कर फेंकना या छूना, प्लेग रोगी को छूना या उस के समीप रहना, ऐसे घर में रहना जहां एक बार प्लेग हो चुका हो, इस रोग का मरा मुर्दा उठाना या छूना, भूखा रहना, ऐसी कोठरी में सोना जिस में सील अधिक तथा गर्दगी हो, जिस स्थान में इस रोग की दवा हो वहां रहना, आदि प्रत्यक्ष कारण हैं। घरों में चूहों का मरना इस रोग के आगमन की सूचना है, इसे जान कर भी जो उन स्थानों को नहीं त्या- गते वे समय पाकर अवश्य ही इसके शिकार होते हैं। इस

के अतिरिक्त भय भी एक प्रधान कारण है। भयातुर मनुष्य शीघ्र ही आक्रान्त होते देखे गए हैं। उस समय तो निश्चय जब कि इस रोग की बवा बहुत तेज हो, जैसे कि सन् १९०४ तथा १९०७ में थी, तब निश्चय से भय के कारण अधिक मनुष्य मरे यह मैंने अपने नेत्रों से देखा है।

लक्षण—लक्षण को पांच दर्जों में लिखेंगे।

(१) दर्जा—अर्थात् विष कीटको का प्रवेश-काल-कीड़ों के शरीर में प्रवेश करने के उपरान्त २ दिन से ७ दिन, किसी २ में दो तीन सप्ताह तक, तो कोई मुख्य लक्षण प्रगट नहीं होते। किन्तु जब यह रोग प्रबल हो तो दो चार घंटे ही में सब कुछ हो जाता है।

(२) दर्जा—इस में हाथ पैरों में और मस्तक में पीड़ा होती है। इतनी पीड़ा कि जिसे रोगी बरदाश्त नहीं कर सकता। जहां गिलटी निकलनी होती है वहां इस दर्जे में केवल कुछ पीड़ा जान पड़ती है। जी में एक प्रकार की घबराहट, जब ज्वर हो जावे तो भोजन में अरुचि, सुस्ती, तथा इन्द्रियों में शिथिलता, निर्बलता, और शरीर में विशेष कर हृदय में एक प्रकार की पीड़ा, होती है। कभी दस्त लग जाते हैं, कभी वमन होती है। दो दिन तक यही लक्षण दिखाई देकर गिलटी गले, बगल, वा जांघों में निकल आती है। कभी २ इन लक्षणों के बिना ही ज्वर १०३-१०४-कभी २ ५ ६ ७ डिगरी का चढ़ आता है। नाड़ी की संख्या अधिक हो जाती है। प्यास अधिक, मूर्छा, तथा आंखें लाल हो जाती हैं, कोई २ रोगी तो ज्वर चढ़ते ही अचेत हो जाते हैं, परन्तु बहुधा धीरे २ अचेत हो जाते हैं, मल मूत्र कर

फटी बच जाती है। ज्वर भस्मीभूत एक सा दिन रात चढ़ा रहता है।

(३) दर्जा–कांख जांघ तथा गले की गिलटियां उभरते ही उन में दर्द उत्पन्न हो जाता है। देखने में कोई मूंगे, कोई मटर के दाने की भांति, कोई गोल कोई चपटी, छूने से गर्म देखने से तनी हुई लाल होती है। किसी २ में तो ५ ७ तक निकलती देखी गई हैं। इस दर्जे में किसी २ को दस्त काले रंग के, मूत्र लाल रंग का होता है। रुधिर वमन भी होता है। यदि यह लक्षण प्रगट हो तो रोग असाध्य समझना चाहिए। किसी को गांठ निकलते ही ज्वर प्रबह चढ़ कर दो एक घन्टे में रफू चक्कर करता है। कोई कोई ५-७ दिन तक जीते रहते हैं। इस दर्जे में ज्वर प्राय १०५ १०६ डिगरी तक रहता है, नाड़ी शीघ्र २ चलने लगती है हृदय की गति अनियमित शीघ्र तथा निर्बल होती है, रोगी या तो अचेत रहता है या बोलने या बुलाने से हां हां करता है। आंखें लाल, चेहरा भयावना हो जाता है। जीभ बाहर निकलने में हांपने लगती है। उपरान्त जिस प्रकार का प्लेग हुआ उसी प्रकार का परिणाम भी प्रगट होता है। अर्थात "न्यूमोनिक" हुआ तो फेफड़े की सूजन और "ब्यूबोनिक" हुआ तो ब्यूबो (बद-गांठे) 'कोलरिक' हुआ तो हैजा आदि के लक्षण प्रगट होते हैं। किसी २ में कोई दर्जा नहीं प्रगट होता। रोगी आदि से ही अचेत, गांठें निकलने भी नहीं पातीं कि मर जाता है। किसी २ में तो यह दशा पाई गई कि तुरंत ज्वर हो कर गांठें निकलीं और घंटे दो घंटे में सुना कि मर गया।

४ दर्जा–इस दर्जे में आरोग्यता के चिन्ह दिखाई पड़ने

लगते हैं, मुख पर प्रकाश, आंखों में उजाला, आ जाता है, ज्वर घट जाता है, गाठें या तो बैठ जाती हैं या उनमें पीव पड़ जाती है जो महीनों में अच्छी होती है। भूख लगने लगती है। पाखाना पीले रंग का ढीला होता है। मुख का रंग बदल जाता है, केवल निर्बलता रह जाती है। कोई २ रोगी प्लेग के पञ्जे से छूट कर निर्बलता से मरते देखे गए हैं।

भेद १ गांठ वाला–इसमें कंठ, गले, जांघों तथा काखों में गिल्टियां निकल आती हैं। किसी २ में मुख के भीतर भी निकल आती हैं। इसे "ब्यूबोनिक प्लेग" कहते हैं। इस में सौ में ३०। ३५ आदमी बच जाते हैं।

भेद २ जिस में हैजे के चिन्ह हों–इसमें हैजे के लक्षण प्रगट होते हैं, किसी में केवल हैजे के चिन्ह, किसी २ में ब्यूबोनिक के साथ, प्रगट होते हैं। के या तो साधारण हैजे की वा काली पीली तथा रुधिर की होती है। दस्त पतला काले रंग का दुर्गंधित होता है। हिचकियां भी आती हैं। इसे कालरिक प्लेग कहते हैं। कोई २ इसे इन्टेस्टाइनल प्लेग कहते हैं। सौ में २०, २५ मनुष्य इसमें बच सकते हैं।

भेद ३—हृदय में शूल उत्पन्न करने वाला। यह हृदय के चतुर्दिश पसलियों में दर्द करने वाला बड़ा भयानक रोग है। इसमें तत्क्षण मृत्यु होती है। कुल १५-१६ आदमी सौ में बचते हैं।

भेद ४–फेफड़े में सूजन उत्पन्न करने वाला–इसमें फेफड़ा सूज जाता है। अंगरेज़ी में इसे "न्यूमोनिक" प्लेग कहते हैं। इसमें १० १५ आदमी बचते हैं।

भेद ५—मस्तक में विकार उत्पन्न करने वाला—इसमें औन्मादिक लक्षण प्रगट होते हैं। इसे "कार्डिक प्लेग" कहें तो अनुचित न होगा। इसमें रोगी कभी बक झक करता, कभी खर्राटे ले लेकर लोगों को डराता है। इसमें सौ में १०, १५ २० तक बचते देखे गए हैं।

भेद ६—भय से होने वाला—इसमें भूख जाग जाती है। मनुष्य देखते वा सुनते ही रोगग्रसित होता है और उप र्युक्त भेदों में से किसी एक का विकार होता है। इसमें ५० से भी अधिक बच जाते हैं। उचित चिकित्सा की जावे, जिस से कि भय दूर हो, तो ८० ९० तक बचत हो सकती है।

भेद ७—सड़ने वाला—इसमें तुरत रोगी की गिलटियां वा सारा शरीर भीतरही भीतर सड़ जाता है। मृत्यु होते, वा किसी २ में जीते ही, कीड़े पड़ जाते हैं। यह बड़ा भयानक तथा घृणित प्लेग है। इस प्लेग के शव की भाफ से मनुष्य रोगी हो सकता है। इसमें सौ में चार पांच ही मनुष्य बच जाते हैं। अंगरेज़ी में इसे सेप्टिसीमिक प्लेग कहते हैं। प्राय यही अधिक होता है। ऐसे रोगी के शव में असंख्य प्लेगी कीड़ों के होने की सम्भावना की जाती है क्योंकि कीड़ों को सड़ी दुर्गंधित चीजें अधिक प्रिय हैं।

इन भेदों के अतिरिक्त और भी बहुत से भेद हैं जो संयुक्त रोगों के साथ होने से विविध नामों से पुकारे जाते हैं। यथा किसी २ में रुधिर वमन होने से "हिमाप्टेटिक" प्लेग, तथा सन्निपात होने से "टाइफाइड" प्लेग आदि कहते हैं।

अवधि—कोई ठीक नहीं। बहुधा २ दिन से ७ दिन तक देखी गई है। कोई रोगी २४ रोज कोई २४ घन्टे तथा कोई २ तत्क्षण २४ मिनिट ही में चल बसते हैं।

परिणाम—अशुभ है। यदि कोई अन्य रोग न आ मिलें, बहुत निर्बलता न हुई हो, गाठों में पीप पड़ जाय, ज्वर कम हो, हृदय में बिगाड़ न उत्पन्न हुआ हो तो आरोग्यता की आशा है। यदि गाठें गलें, मुख वा कनपटी पर हों, हैजे के चिन्ह दिखाई दें, अचेतता अधिक हो, ज्वर १०४ से ऊपर १०६-१०८ डिगरी पर हो तो भयानक परिणाम समझना चाहिए। गले वा मुख के भीतर की गिलटियां सूजी हों तो अवश्य मृत्यु होती है। कांखें तथा जांघों की गिलटिया अच्छी होती देखी गई हैं। सड़ने वाला प्लेग बहुत खराब है, फेफड़े वाला दुखदाई होने के सिवाय प्राणघातक भी है। सारांश यह कि इसका परिणाम भेदानुकूल है। सरल भय से उत्पन्न होने वाला केवल एक ही प्लेग है। शेष सब कठिन तथा भयानक हैं।

निदान—इस रोग में टाइफस फीवर (काला ज्वर) का संदेह होता है। निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखने से संदेह दूर हो जाता है कि इस रोग में त्वचा पर कोई दाने नहीं निकलते वरन् शोषक गिल्टियां कठ कांख तथा जांघों की सूज जाती हैं। मृत्यु २४ घन्टे से लेकर ३ दिन के भीतर होती है। यह बात टाइफस फीवर में नहीं पाई जाती।

प्लेग से बचने के उपाय—इस रोग से बचने के दो उपाय हैं। एक तो जहां प्लेग हो रहा हो वहां उससे बचना। दूसरा प्लेगी हो जाने पर उससे रक्षा पाना।

(१) उपाय (क) जिस स्थान में प्लेग शुरू हो, या घरों में चूहे मरने लगें तो तुरत उस स्थान को छोड़ कर कहीं दूसरी जगह चले जावें या उस शहर तथा ग्राम को छोड़ कर, वन, बाग, या बारी में निवास करें। यदि यह अस म्भव हो तो इस बात को ध्यान में रख कर रहें, कि घर ऐसा हो कि जिसमें शुद्ध वायु का गमनागमन हो, प्रकाश, तथा सूर्य की धूप आती हो। घर यदि पक्का है तो चूने से और यदि कच्चा है तो पोतनी मिट्टी गोबर आदि से उसे पुतवा लिपवा कर साफ रक्खें। पाखाना मोरी आदि फिनल धुलवा कर साफ करें। दुर्गंधि दूर करने को चूना या कार्बोलिक एसिड लोशन, या परमैंगनेट आफ पुटास आदि का व्यव हार करें। या २० तोला हीरा कसीस, १० तोला सुहागा और आधा तोला करोसिव सबलिमेट (दार चिकना = परक्लोराइड आफ मरकरी) ढाई सेर पानी में मिलाकर पाखाने तथा पनाले आदि को धुलवा दिया करें। घर के किवाड़ आदि धूप निकलते ही खोल दें, किन्तु सूर्यास्त होते ही उन्हें बंद करदें; लेकिन ऐसा न बंद करें कि शुद्ध वायु का प्रवेश ही न हो। यदि सीली ज़मीन हो तो कोयला जलावें या आंवां की गरम२राख लाकर बिछावें। गंधक, गुग्गुल, धूप, लोबान, या नीम की पत्ती की धूनी दिया करें। हो सके तो दीवारों को खड़िया मिलाकर पोतवावें। घर के आस पास यदि कूड़ा करकट आदि जमा हो तो उठवा दें। जहां तक हो सके ऊपर के खुले कमरे में रहें। किसी वस्तु को जो किसी दूसरे से प्राप्त हो बिना धूप दिखाये गर्म किये वा शुद्ध किए घर में न लावे। हो सके तो खाने पीने और पहिरने बर्तने की

चीजों को दूसरे स्थान से जहां प्लेग न हो मंगवा लिया करें । किसी के घर न जाय और न छुआछूत फैलावें । (इस स्थान पर हमारे पूर्व आचारी याद आते हैं । हाय ! वह आचार कहां गया जो हमें ऐसी छूतों से बचाता था) । नंगे पावों घर से बाहर न निकलें । जब घर आवें तो जूता चौखट के बाहर ही उतार दें, कपड़े आदि तुरत बदल डालें, उनको धुला या धुलवा डालें । शरीर को खूब साफ रक्खें । गर्म जल से नित स्नान करें, देह में तेल लगावें, तलवों में भी तेल मलें, वस्त्र साफ धुले हुए अछूते पहिरें । बाल बच्चों को बाहर न निकालें । हो सके तो आप भी इस से बचें । जमीन में न सोवें । भोजन गर्म गर्म, घी अधिक, पाचक तथा ताजा, खावें । आटा दाल आदि को सावधानी से ढाँक कर रक्खें । बासी न खावें । समय पर खावें । भूखे पेट न रहें । दूध, चाय, काफी, आदि दोनों वक्त गरमागरम पीवें । पानी कूए का ताजा या गर्म किया हुआ कपूर डाल कर पीवें । सर्दी, बादी, तथा अपच वस्तुओं से परहेज करें । घर में चूहे मरे हुए मिलें तो उन्हें चिमटी से उठाकर किसी हांडी या टोकरी में डाल कर बस्ती से दूर ले जा कर जला दें । जहां से उठावें उस स्थान को ऊपर लिखे लोशन द्वारा साफ करें, या उस पर आग सुलगा दें । गर्म कपड़ा पहिरें, शराब हानिकारक है इसे न पीवें । रंज शोक भय को दूर करें । वन बाग बारी और वाटिकाओं में विचरण करें । दिन में न सो कर रात में खूब सुख की नींद सोवें । बहुत सबेरे उठें, और गर्म जल से स्नान करें । सदा प्रसन्न रहें और औरों को प्रसन्न रखने की चेष्टा करें । मृत्यु देव

कर न डरें। अपने पास कपूर वा "नेफथलीन" का टुकड़ा अवश्य रक्खें।

(ख) प्रथम ही इनओक्युलेट (Inoculate) करावें। जैसे डाक्टर जेनर ने गौथन का सीतला का टीका प्रचार करके सीतला से भारतवासियों की रक्षा की उसी प्रकार डाक्टर हाफकिन ने प्लेग का टीका खोज निकाला है। कहते हैं कि जैसे सीतला का टीका लगाने से सीतला नहीं निकलती, यदि निकलती भी है तो सरल, उसी प्रकार प्लेग के टीके से प्लेग नहीं होता, यदि होगा भी तो सरल होगा। जो हो, इसी सिद्धान्त पर सीतला का टीका निकाला गया था जिससे आज करोड़ों प्राणी उस रोग की यन्त्रणा से मुक्त हुए दीखते हैं। सम्भव है कि प्लेग का टीका भी किसी दिन वैसा ही काम देने योग्य हो। अभी तो इसका प्रचारमात्र है। लाभालाभ आगे देखने में आवेगा।

२ उपाय—इसमें औषधि द्वारा चिकित्सा की आवश्यकता है।

(क) ब्युबोनिक प्लेग—इसमें स्थानिक तथा आन्तरिक दो प्रकार की चिकित्सा करें। स्थानिक चिकित्सा में रोगी को हवादार खुले मकान, किसी २ के मत से खुले मैदान या वृक्ष के नीचे, साफ बिस्तर और पलंग पर लिटावें। गांठो में तेज आइडीन Liqur Iodid Fart अर्थात Lenimentt Iodine लगावें और उसे खूब सेंक कर बांध दें। या रसौत १ तोला, अफीम १ माशा, फिटकिरी १ तोला, आइडिन १ माशा, मिलाकर गर्म करके आंधे या नागफनी काटे का फल छीलकर

बाधें। यदि इस से न बैठे तो तेलनी मक्खी का प्लास्टर Cantheradis plaster(कैंथेरेडिस प्लास्टर) को बांध कर छाला डालें। उपरान्त छाला काट कर मक्खन लगावें। लोहे को गर्म करके जलाना भी लाभदायक बताते हैं किन्तु यह कार्य्य कठिन क्लेशदायक है। सब से उत्तम यह है कि उसे तेज चाकू से भली प्रकार चीर कर उसका सम्पूर्ण रक्त तथा पीप निकाल दें। कच्चे पक्के का ध्यान न रक्खें। धतूरे के पत्ते को सेंक कर बांधने से भी आराम होता देखा गया है।

आभ्यन्तरिक चिकित्सा में हजारों औषधियां सैकड़ों डाक्टरों वैद्यों तथा हकीमों ने व्यवहार कीं किन्तु कोई भी लाभकारी न ठहरी। यों तो बहुत से रोगी बिना चिकित्सा ही के अनेक स्थानों में अच्छे होते देखे गए हैं, तब किसी २ औषधि से किसी २ को आराम हुआ, किसी २ को नहीं भी हुआ। मतलब यह कि अभी तक कोई ऐसी औषधि नहीं मिली है कि जिस पर हम पूरा भरोसा करें। पर इसमें सन्देह नहीं कि रक्तविकार दूर करने वाली औषधियां कुछ उपयोगी ठहरी हैं। क्योंकि प्लेग के कीड़े मनुष्य के शरीर में तथा रुधिर में ही विचरते हैं, रुधिर विष-नाशक औषधियों के सेवन से इनका भी नाश होना सम्भव है। इस विचार से, फिनायल, परमैंगनेट आफ़ पाटेश, परक्लोराइड आफ मरकरी, आदि देना लाभदायक है। निर्बलता दूर करने को ब्रांडी दूध में मिला कर हर तीन तीन घण्टे पीछे दें। मल शुद्ध करें। रोगी को उठने कौन कहे करवट तक न बदलने दें, क्योंकि नेक ही कुचेष्टा में हृदय की गति बिगड़ जाने का बड़ा भय है। हमने निम्न लिखित

मुनसे से कई एक रोगियों को अच्छे होते देखा है और स्वय इससे लाभ उठाया है।

टिक्चर डिजीटेलिस	५ बूंद
स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक	२० बूंद
लाइकर हैड्राजराइ परक्लोराइड	½ ड्राम
टिकचर सिनकोना कम्पौंड	२ बूंद
ब्रान्डी	१ ड्राम
पानी	१ औंस

मिलाकर एक तरुण रोगी को हर ३-३घन्टे पीछे पिलावें। प्यास दूर करने को सोडा वाटर, बर्फ आदि दें।

(ख) न्यूमोनिक प्लेग—इसमें आन्तरिक चिकित्सा वही करें जो ब्यूबोनिक में लिखी गई है। इसके सिवाय छाती पर राई या बेलाडोना का प्लास्टर (पलस्तर) लगावें। तारपीन के तेल से सेंकें, या पुलटिस बार २ बदल २ कर लगावें। दूध खाने को दें। ब्रान्डी भी लाभ दायक है।

(ग) शूल प्लेग—इसमें बहुत कम समय चिकित्सा के लिए मिलता है।

(घ) आन्तरिक प्लेग—इसमें प्लेग के सिवाय के तथा दस्त दुरुस्त करने वाली औषधि जैसे केम्फर, बिसमिथ, आदि दें।

(ङ) मस्तक विकार प्लेग—इसमें सिर के पीछे तथा पिंडलियों पर राई या मक्खी का प्लास्टर लगावें। बाकी चिकित्सा ब्यूबोनिक प्लेग की तरह करें।

(च) भय जनित प्लेग—यह ब्यूबोनिक प्लेग की भांति होता है अस्तु उसी प्रकार की चिकित्सा करें।

(छ) सेप्टीसीमिक प्लेग। इसकी चिकित्सा कभी

तोक के पेट में है क्योंकि इसमें यह सहज दौड़ जाती है। सहज रोकने का उपाय अभी डाक्टरों के मस्तक में है।

कालरा-Cholera-हैजा-विशूचिका।

यह एक प्राणघातक रोग है। इसमें वमन और चांवल की पीच की भांति दस्त होते हैं। शरीर के भीतरी तथा बाहरी विभागों में एक प्रकार की एंठन होती है। शरीर ठंडा पड़ जाता है, पित्त और मूत्र नहीं निकलता। पीछे सेकेन्डरी फीवर भी होता है। इस रोग को अंगरेजी में कालरा या कहते हैं कि इसमें पित्त गिरता है, और यह पित्तों के विकार से होता है। यह एशिया में अधिक होने से "एशियाटिक कालरा" कहा जाता है, यूरपीय कालरा से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं। वह इस से भिन्न है। यह "एपीडेमिक इन्फेक्सस" अर्थात वायु द्वारा एक दूसरे पर आक्रमण करने वाला है। संस्कृत में इसे विशूचिका कहते हैं। गर्म देशों में यह अधिक होता है।

प्रत्यक्ष कारण—एक मुख्य विष के असर से यह होता है। यह विष छूतदार है। इसका असर एक रोगी से दूसरे पर हो जाता है। जिस स्थान में बहुत मनुष्यों की भीड़ हो जैसे प्रयाग, हरिद्वार, आदि तीर्थों में, या मेले, तमाशे, तथा थियेटरों में, वहां यह उत्पन्न हो कर बमारी को फैला बनाता है। छूत का अंश रोगी के दस्त तथा वमन में होता है। अतएव यदि दस्त या वमन का कुछ अंश पीने खाने तथा बर्तने वाली वस्तुओं में लग जाय, और वह वस्तु एक निरोगी पुरुष व्यवहार में लावे तो वह भी रोगी हो जायगा। पानी के द्वारा इसका असर सहज ही होता

है। मान लीजिए कि एक रोगी ने वमन किया। उसका वमन छिटक कर एक पीमे के लोटे पर पड़ा, एक निरोगी मनुष्य पानी पीने को वही लोटा लेकर कूए पर गया और उसने लोटा कूए से भर कर पानी पीया। पीते ही उसे दस्त तथा वमन आरम्भ हुआ। कूए में जो विष मिला उसके असर से जिस २ ने उस कूंए का पानी पिया उन सब को हैजा हुआ। इस प्रकार जलद्वारा इसका असर नगर २ में फैल जाता है। प्रवेश के समय इस रोग का विष चाहे जितना कम हो किन्तु शरीर में पहुंचते ही बढ़ जाता है। मल भी इसका कम छूतदार नहीं है। इस रोगी का मल सूख कर वायु में उड़ता है, फिर वायु द्वारा मनुष्यों में प्रवेश करता है। यही कारण है कि मेले आदि में बहुत मनुष्य इस रोग से मरते हैं।

आन्तरिक कारण—थकन, कंगालपन, कुपथ्य, मदिरा पान, बदचलनी, शोक, भय, तथा गोरे रंग आदि का होना। इसके सिवाय बुढ़ापा, जुल्लाब बार २ लेना, तबीयत का बिगड़ना, स्थान परिवर्तन, गर्म से शीत वा शीत से गर्म देश में आना, एक बार हैजा हो चुकना, वायु का गर्म, तर, तथा भारी चलना, मनुष्यों की बस्ती के समीप मैला कुचैला कूड़ा करकट आदि जमा रहना, ऐसा उद्यम करना जिसमें स्वास्थ्य भंग हो, गांवों के चारों ओर घूरे आदि का होना, बिगड़े वा विष मिले पानी का पीना, वायु और पृथ्वी की अवस्था में अन्तर पड़ना, अफ़ीम का कम हो जाना आदि आन्तरिक कारण हैं। प्रात काल का हैजा भयानक समझा जाता है।

लक्षण—लक्षण को ४ दर्जों में लिखना उचित समझते हैं।

(१) दर्जा—इसमें विष २ दिन से १८ दिन तक बिना कोई लक्षण प्रगट किए शरीर में रहता है। निम्न लक्षण किसी २ में रोग आरम्भ होने से पहिले प्रगट होते हैं। सुस्ती, उद्वेग, मस्तक में पीड़ा, कानों में झनझनाहट, आमाशय के स्थान पर दर्द तथा भारीपन, दस्त बिना पीड़ा के, मुख का प्रकाश धूमिल, आदि। पश्चात् दूसरा दर्जा शुरू होता है।

(२) दर्जा—इसमें दस्त वमन होने लगते हैं। बहुधा प्रात काल या अन्य समय दस्त आरम्भ होते हैं। प्रथम २ दस्तों में कुछ मल दर्द के साथ आता है और मरोड़ होती है। फिर चावल की धोवन की भांति दस्त पतले पानी की तरह सफेद तथा बिना दर्द के होने लगते हैं। दस्तों के साथ कभी उसके पीछे वमन शुरू होती है। इसमें भी वैसी ही सफेद रंगत होती है। इस दर्जे में प्यास अधिक लगती है। रोगी पानी २ चिल्लाता है। किन्तु पानी ठहरता नहीं, पीते ही उल्टी हो जाती है। हाथ, पैर, तथा सिर के पट्ठों में ऐंठन होने लगती है। सारा शरीर दुखता है। दस्त और वमन से रोगी ऐसा निढाल हो जाता है कि उससे बोला तक नहीं जाता। इसके बाद धीरे २ तीसरा दर्जा आरम्भ होता है।

(३) दर्जा—इस दर्जे में दस्त और वमन द्वारा शरीर के पनीले परमाणु सब निकल जाने से रोगी ठंढा पड़ जाता है। शरीर की गर्मी बिलकुल कम हो जाती है।

शरीर का खुला हुआ भाग मुर्दे का सा जान पड़ता है। अस्तु। मुख में थर्मामिटर (उष्णमापक यन्त्र) द्वारा देखने से ९९ से ९८ दर्जे और काख में ९७ या ९७ दर्जे, इसी प्रकार योनि वा आमाशय पर लगाने से १०३ या १०४ दर्जे, की गर्मी मालूम होती है। इतना ठंढा पड़ने पर भी रोगी को गर्मी जान पड़ती है; वह "पानी २" चिल्लाता तथा शरीर पर से ओढ़ना फेंक देता है।

मुखकी आकृति एक प्रकार की अर्थात् गाल पिचके, आखें बैठी हुई, अधखुली तथा श्वेत भाग चपटा हो जाता है। नाक नोकदार हो जाती है। होंठ, जीभ, तथा सब शरीर टेढ़ा और नीला पड़ जाता है। सारे शरीर में ठंढा पसीना निकलता है। सांस ज़ोर से निकलती है और कार्बोनिक एसिड गेस के कम होने के कारण ठंडी होती है। बोला नहीं जाता। अँगुलियां नीली और ऐसी झुर्रीदार हो जाती हैं जैसे पानी में देर से भीगी हों। नख नीले, पीले तथा नाड़ी ठहरने के निकट, कभी २ भुजा में भी नहीं जान पड़ती। "कोलेप्स" अर्थात् ठंढा पड़ जाने के दर्जे में यदि कोई रुधिर रक्त की नाली को खोले तो अलकतरे की भांति गाढ़ा रुधिर निकलता है। चैतन्यता अंत तक बनी रहती है। किन्तु निर्बलता के कारण रोगी लाचार चुपचाप पड़ा रहता है। जीने की इच्छा बनी रहती है। दूध के सिवाय सारे रिसाव बंद हो जाते हैं। मूत्र कम परिमाण में तथा किसी २ को बिलकुल नहीं होता। दस्त कुछ कम हो जाते हैं परन्तु वमन ज्यों की त्यों बनी रहती है। पट्ठों में ताकत बनी रहती है जिससे रोगी उठ बैठ सकता है। बेचैनी अधिक रहती है

और बहुधा करवटें बदलता रहता है। कभी २ ऐंठनके कारण रोगी अँकड़ जाता है, हिचकियाँ भी आने लगती हैं। जब ये लक्षण प्रगट हों तो इनसे २४ घन्टे में रोगी मर जाता है। और जो यह समय निकल जावे तो आराम होने की आशा रहती है।

(४) दर्जा—इस दर्जे में वमन कम हो जाती है, शरीर में गर्मी आ जाती है। मुख लाल हो जाता है, श्वास तथा रक्त भ्रमण नियमानुसार होने लगता है। बेचैनी दूर हो जाती है। पेशाब आने लगता है। कुछ काला रंग का दुर्गंधित दस्त भी होता है। इस दर्जे में ये शुभ लक्षण माने जाते हैं। परन्तु कभी यह दशा थोड़ी देर के ही लिए होती है। क्योंकि उपर्युक्त लक्षणों के पश्चात् दिमाग तथा फेफड़े में खून का जमाव आरम्भ होता है। मूत्र का अंश रुधिर में मिल जाने से शिर पीड़ा, चौरान, बेहोशी, ऐंठन, और खुर्राटे से श्वास आदि उत्पन्न होकर रोगी "युरेमिया" होकर मर जाता है। इस दर्जे में किसी २ रोगी को ज्वर होता है जो बहुत दिनों में आराम होता है। स्त्रियों में तीसरे दर्जे में गर्भाशय से रुधिर निकलता है। थोड़े दिनों की गर्भवतियों का गर्भ गिर जाता है। पूरे दिनों के गर्भ का बालक गर्भ ही में मर जाता है। पसीना अधिक आने से रोगिन भी मर जाती है।

संयुक्त रोग और फल—

सरल।

(क) ज्वर होना- जो कई प्रकार का होता और जल्दी आराम हो जाता है।

(ख) आमाशय में सूजन होने के कारण वमन का अधिक होना।

(ग) हिचकी, तथा डकारों की अधिकता, और भूख न लगना।

(घ) नींद का न आना।

कठिन संयोग—

(क) गुर्दे में प्रारम्भिक सूजन होना।

(ख) अँतड़ियों में सूजन होना।

(ग) दस्त और मरोड़ पैदा होना।

(घ) फेफड़े या उसकी झिल्ली में सूजन का होना।

चौथे दर्जे में जब ज्वर होता है तो जिल्दी रोग जैसे पित्ती उछलना, दाद होना, कंठ और थूक की गिलटियों का सूजना, आंखों की स्याही में घाव होना या सड़ जाना मुंह में छाले पड़ जाना, शरीर में जगह २ फोड़े फुंसी का निकलना या घाव हो जाना, निर्बलता अधिक दिन तक ठहरना, आदि पाए जाते हैं।

निदान—साधारण दस्तों तथा संखिया के खाने से जो दस्त हों उनमें और हैज़े में यों पहिचान करें कि साधारण दस्तों में इतनी जल्दी और ऐसे भयंकर लक्षण नहीं होते जैसे कि हैज़े में देखे जाते हैं। संखिया में पहिले वमन पीछे दस्त रुधिरमिश्रित होता है और कंठ में तंगी जान पड़ती है। इसके विरुद्ध हैज़े में पहिले दस्त पीछे वमन तथा कंठ में तंगी नहीं होती और न गला भिचता है। अन्यान्य दस्तों के रोगों में हैज़े की भांति मुख्य चिन्ह नहीं पाए जाते।

परिणाम—बुरा है, इस वबा की तेज़ी एकसी नहीं होती। किसी वबा में सैकड़े पीछे ८० और किसी में २०

रोगी अच्छे होते हैं। आरम्भ में अधिक तथा अंत में कम मृत्यु होती है। बुड्ढे, निर्बल, मैले, बदपरहेज, शराब पीने वाले, या वे जो बुरी जगहों में रहते या गुर्दे के रोगी हैं, इनमें अशुभ परिणाम देखा गया है। चौथे दर्जे में अशुभ परिणाम का अधिक भय रहता है। हां जब मूत्रादि निकलने लगते हैं तो भय दूर हो जाता है।

रोग से बचने का उपाय—जब यह बबा की भांति फैले तो जहाज, रेल तथा मुसाफिरों के लिए "क्वारनटाइन ला" जारी करें। लोगों को साफ तथा प्रसन्न रक्खें। बहुत से आदमी जहां इकट्ठे हों वहां न जाय। किसी बंद कोठरी में बहुत आदमियों के साथ न बैठें। घर के हौदे पनारे तथा पाखाने आदि खूब साफ रक्खें। सड़े फल तथा मछली आदि का सेवन न करें, शराब न पीएं। पानी औटा कर ठंढा करके पीवें। उपवास, तथा कुपथ्य से बचें। तेज जुलाब न लें। शरीर खूब शुद्ध रक्खें। उस स्थान को छोड़ कर अलग रहें जहां हैजा फैला हो। वहां के कूए आदि का पानी तथा बाजार की मिठाई पूरी आदि न पीवें खावें। रोगी से अलग रहें। रोगी के मल मूत्र तथा वमन आदि को, कांडील सोल्यूशन, कार्बोलिक सोल्यूशन, सेन्डोफलस पौडर, क्लोराइड वा सलफेट आफ जिंक, या क्लोराइड आफ लाइम, क्लोरस एलम, आदि में मिलाकर बस्ती से दूर ले जाकर गाड़ें किन्तु ध्यान रहे कि आस पास कूआ वा तालाब आदि न हो। नित्य प्रातःकाल एक मात्रा डाइल्यूट सलफ्यूरिक एसिड १० वा १५ बूंद लेमोनेड के साथ पीवें इससे हैजे का विष नहीं व्यापता। हैजे के दिनों में अजीर्णता वा और

किसी कारण से यदि दस्त होने लगें तो तुरत किसी योग्य वैद्य वा डाक्टर को बुला कर चिकित्सा करें क्योंकि आरम्भ में चिकित्सा से बड़ा लाभ होता है।

चिकित्सा—इस रोग में प्रथम ही चिकित्सा से अधिक लाभ होता है। इसके लिए कैम्फर Camphor—काफूर बड़ी लाभ दायक दवा है। सौ में ९५ रोगी इससे उस समय निश्चय बच सकते हैं जब यह पहिले दर्जे ही में दी जाय। दूसरे दर्जे में भी इससे कम लाभ नहीं होता। इसके देने से तीसरा दर्जा आने ही नहीं पाता। यदि दैव योग से आ भी गया हो तो दूर हो जाता है।

दस्तों के रोकने की चिन्ता न करें क्योंकि दस्त रुकने से विष शरीर में ही रह जाता है। दस्तों को होने दें। यदि समय देखें तो रेंडी का तेल एक, दो तोले और पिला दें, जिससे हैजे का विष निकल जावे। यह नुसखा पहिले दर्जे में अधिक लाभदायक है। दूसरे दर्जे में भी इससे अच्छा लाभ पहुंच सकता है।

डाइल्यूट सलफ्युरिक एसिड	२० बूंद
टिंकचर कार्डिमम कम्पौंड	२० बूंद
स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक	२० बूंद
,, क्लोरोफार्म	२० बूंद
कैम्फर वाटर	१ औंस

मिला कर ऐसी एक मात्रा प्रत्येक तीन २ घंटे पीछे बराबर पिलाते रहें। आवश्यकता हो तो प्रत्येक वमन तथा दस्त के पीछे एक २ मात्रा दें।

प्यास दूर करने को—बर्फ की रोड़ी मुख में देवें।

वा पुटासीक्लोरास २० ग्रेन, एक औंस जल, इसी हिसाब से एक बोतल बनावें। इसी में कुछ बर्फ भी छोड़ दें और पानी मांगते ही इसे पिलावें। दूध पानी मिला कर पिलावें, इससे न केवल प्यास ही बंद होती है किन्तु वमन को भी फायदा होता है। वमन रोकने के लिए आमाशय पर राई का प्लास्टर लगावें।

दूसरे दर्जे में–किसी योग्य डाक्टर की सम्मति लेकर चिकित्सा करें। यदि यह न हो सकता हो तो कपूर के अर्क को देना न भूलें। यदि यह दवा ठीक २ समय पर दी जावें तो इसमें सन्देह ही नहीं कि तीसरा दर्जा पास न फटके। बाकी चिकित्सा सब वही करें जो प्रथम दर्जे के लिये बत-लाई गई है। अर्थात् प्यास तथा वमन आदि की। ऐंठन कैंफर मलने ही से दूर हो जाती है। इसे शरीर पर मलना चाहिए। मर्सटर्ड कैम्फर इसमें बड़ा फायदा पहुंचाता है।

तीसरे दर्जे की चिकित्सा बड़ी बुद्धिमानी से करें। इस दर्जे में दस्त तो कम होते हैं पर वमन ही अधिक भयावनी होती है। इस दर्जे में मुख्य चिकित्सा ठंढे शरीर को गर्म करना है, इस लिए गर्मी लाने वाली औषधियों को देवें।

इस दर्जे में दवा की मात्रा कम देनी चाहिए किन्तु उसे आधे २ घंटे में देवें। शेम्पेन, ब्रांडी आदि मदिराएं बर्फ मिला कर देवें। यह नुसखा इस दर्जे में देना लाभ दायक होगा–

एरोमेटिक स्पिरिट आफ एमोनिया	२ ड्राम
सलफ्यूरिक ईथर	१ ड्राम
क्लोरिक ,,	१ ड्राम

वाइनम गेलीसाई ग्राही	६ ड्राम
पिपरमेंट वाटर	६ औंस

मिला कर इसमें से चार ड्राम की मात्रा में घन्टे २ पीछे पिलावें। यदि इतनी मात्रा भी न पचे तो और कम करके आधे २ घंटे में दें। कैम्फर (कपूर) इस दर्जे में भी दे सकते हैं। कभी २ इससे लाभ अवश्य होता है।

पिंडलियों तथा तलुओं में कायफल मलें। इससे पसीना सूखता है और गर्मी कम निकलने पाती है। शरीर को गर्म कपड़ों से खूब ढांक रक्खें। अत में क्लोरोफार्म सुघाने से भी, बड़ा लाभ होता है।

एक नई तरकीब[1] यह निकली है कि फ्री एमोनिया वाटर Free ammonia water एक पिचकारी द्वारा रक्त नस में पहुचाना। इससे मैंने स्वय दो तीन केस, जो मिर्जापुर में दत्त डाक्टर ओमेरा साहेब सिविल सर्जन द्वारा बचे, अच्छे होते देखे हैं।

चौथे दर्जे में चिकित्सा करनी व्यर्थ है और उससे नुकसान भी पहुचता है। केवल शीघ्र पाचक पथ्य थोड़ी २ मात्रा में समय पर देते जावें। ज्यों २ आरोग्य होता जावे मात्राबढाते जावें। पानी जितना रोगी पी सके पिलावें। यदि ज्वर हो तो सोडावाटर, पतली आदि दें। यदि ज्वर के प्रकोप से चेहरा लाल होते देखें तो राई का प्लास्टर लगावें। सिर पर ठंढा पानी डालें। "इपीका क्युआना" या "डोवर्स पौडर" खिलावें। दिमाग में खून जम गया हो तो दो एक जोंकें कनपटी पर लगावें, फेफड़े में रुधिर जमता देखें तो

[1] ट्रान्सफ्यूजन आफ ब्लड।

छाती, पीठ तथा पसुलियों पर तारपीन का तेल मल कर सेंक करें; क्लोरेट आफ पुटासियम खाने को दें। प्यास इस दर्जे में भी हो और कै न बंद होती हो तो सोडावाटर बर्फ आदि दें। पेशाब बंद हो तो कमर पर "कपिङ्ग" (गिलास-पुरवा) लगावें। या बिलाडोना, हीफ, तथा क्लोरोफार्म लिनीमेन्ट बराबर २ लेकर मलें। या गर्म २ भूसी की पुल-टिस या राई का प्लास्टर कमर पर लगावें। कोई २ गर्म पानी से नहला कर "कुनेन" तथा "टिक्चर स्टील" देना लाभदायक बताते हैं। या सलाई डाल कर मूत्र निकाल दें। रुधिर में नमक का भाग कम हो जाता है, इसलिए पानी के साथ नमक वा कार्बोनेट आफ सोडा मिलाकर दें। पथ्य का भी ध्यान रखना चाहिए। ऐसा न हो कि औषधि ही औषधि देते रहें पथ्य बिलकुल न दें। बिना पथ्य के केवल औषधि से काम नहीं चल सकता। अस्तु, दूध, यखनी, थोड़ी २ मात्रा में नियमित समय पर दें। और ज्यों २ रोगी को आराम होता जावे पथ्य बढ़ाते जावें। इस रोग का रोगी निर्बलता से न मरे इसका ध्यान रक्खें। बलकारक औषधि तथा बलकारक पथ्य देते रहें। संयुक्त रोगों की यथोचित चिकित्सा करें। आरोग्य होने पर जल वायु बदलवा दें। स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का पालन करते रहें।

थाइसिस PHTHISIS सिल-क्षयी।

इस रोग के नाम का अर्थ ही क्षय है अर्थात् शरीर का क्षय हो जाना। किन्तु परीक्षा से जाना गया है कि यह रोग एक विष के, जिसे "ट्यूबरकिल" कहते हैं, फेफड़े में जमने से होता है। फेफड़ा इस रोग में ऐसा बिगड़ जाता

है कि फिर नहीं सुधरता। ज्वर, जो इस रोग में होता है, जीर्ण होता है। इसको ट्यूबरक्यूलर थाइसिस Tubercular Phthisis भी कहते हैं।

ट्युबरकिल जो फेफड़े में जमता है वह प्रायः फेफड़े की नोक पर जमता है। कभी एक अर्थात् बायें फेफड़े पर कभी दहिने बायें दोनो ओर जम जाता है। वायु की नालियों की दीवारों और वायु की नालियों आदि में भी जम जाता है। इन ट्यूबरकिलों के दबाव पड़ने से रोग ग्रसित स्थान का पालन अच्छी तरह नहीं होता, इरीटेशन की वजह से उसके चारों ओर सूजन हो जाती है। इस कारण वहां की बनावट नर्म होकर गल जाती है और वह खांसी द्वारा ट्युबरकिल सहित वायु की नाली में से होकर बाहर निकलती है। इसी से इस रोगी का कफ भारी और छिछड़ेदार पीप की भांति होता है। रोगी स्थान में गढ़ा पड़ जाता है जिसको वोमिका Vomica कहते हैं। जब ऐसे कई एक गढ़े पास २ हों, और कुछ समय में मिल कर एक हो जावें तो एक बड़ा गढ़ा फेफड़े में हो जाता है। ऐसे गढ़े बहुधा फेफड़े के ऊपरी और निचली नोकों पर देखे गए हैं जो पीप से भरे तथा अन्यान्य दुर्गंधित जलों से पूर्ण होते हैं और बलगम के साथ निकलते रहते हैं। धीरे २ फेफड़े की कुल बनावट गल सड़ कर निकल जाती है। इस रोग का रोगी कुत्तों की मौत मरता है।

इस रोग के दो बड़े भेद हैं। एक एक्यूट (नवीन) थाइसिस, दूसरा क्रानिक (जीर्ण) क्षयी रोग। जो लोग फेफड़े की सूजन ही इस रोग की जड़ मानते हैं उनके मत में

"न्यूमोनिक थाइसिस" और "फाईब्राइड थाइसिस" ये दो भेद और हैं। कारणों के अनुसार प्लूरेटिक, (जो "प्लूरा" फेफड़े को असर करने वाली झिल्ली के रोगी होने के कारण हो), "हेमेरेजिक", (जो खून थूकने के उपरान्त हो) "मेकानीकल" (जो धातु पदार्थों के संयोग से हो) "एलकोहालिक", (जो शराब पीने से हो) "सिफलिटिक", (जो उपदंश आदि से होता है) भी कहते हैं।

कारण—मुख्य कारण इस रोग का पैत्रिक होना है। अर्थात् वंश में किसी को हो या पहिले हुआ हो तो यह रोग उसी वंश में दूसरे को हो जाता है। जवानी ही में यह प्राय होता है। स्त्रियों को प्राय कम होता है। कोमल स्वभाव या कठ माला वाले को या उनको जो अधिक बैठे रहते हैं, शराब अधिक पीते हैं, मैथुन अधिक करते हैं, जिनको अजीर्णता घेरे रहती है, घी दूध आदि जिन्हें अप्राप्य हैं, दिन रात जो पढ़ते ही रहते हैं या जिनकी बुद्धि में कुछ बिगाड़ है, शोक, चिंता आदि जिनके पीछे पड़े रहते हैं, जिन्हें बहुमूत्र, खसरा, कूकर खांसी, क्रूप, काला व लाल ज्वर होने के उपरान्त इसकी अगवानी करनी पड़ती है, जो स्त्रियें बहुत दिन तक अपने बालकों को दूध पिलाती हैं ऐसे समय में उनके पालन पर ध्यान नहीं दिया जाता, जिनसे खून या पानी, पीप, या अन्य रिसाव रिसते २ एक साथ बंद हो जावें, जिन्हें स्वास्थ्यरक्षण की कुछ भी परवाह नहीं होती, जो जेल, अनाथालय, या किसी बंद घर में रहते हैं या किसी विषैले कारखाने में काम करते हैं, जो शीत, तथा तराई के रहने वाले हैं,

बार २ जिन्हें फेफड़े का रोग सताता हो, जो बीमार पशुओं का दूध मांस खाते हों, उन्हें यह रोग हो जाता है।

मुख्य कारण जो इसका जाना गया है वह यह है कि बलगम, (कफ) जो रोगी थूकता है, उसमें एक प्रकार का कीड़ा होता है। यह कीड़ा वायु द्वारा या खाने पीने की चीजों द्वारा यदि फेफड़े में पहुंच जाय तो यह रोग होता है। इससे सिद्ध हुआ कि क्षयी के रोगी का बलगम (कफ) छूतदार है। यदि असावधानी से वह सूख कर हवा में मिले और वह हवा मनुष्य सूंघे वा उसके फेफड़े में वह स्वांस द्वारा प्रवेश करे तो यह रोग हो जाता है। माता यदि रोगिन है तो दूध द्वारा और पिता रोगी है तो वीर्य्य द्वारा यह रोग बच्चे में पहुंच सकता है। इसके अतिरिक्त रोगी के हाथ से पान आदि खाने या बलगम का छींटा जिसमें पड़ा हो ऐसा दूध या पानी आदि पीने से इस रोग का विष फेफड़े में पहुंच कर यह रोग हो जाता है। नाटे मनुष्यों की अपेक्षा लम्बे, काले की अपेक्षा गोरे मनुष्य प्राय इसमें ग्रसित होते हैं। जिनके हाथो पैरों की उंगलियां लम्बी, नाखून नोंकदार तथा चौड़े, शरीर दुर्बल, हों उनको अधिक ग्रसित होते देखा गया है।

एक्यूट थाइसिस ACUTE PHTHISIS नवीन क्षयी

इसको एक्यूट गैलोपिंग कन्जम्शन (कन्जम्पशन) भी कहते हैं। यह एक कठिन संघातिक रोग है। इससे रोगी बहुत शीघ्र मृत्युस्थान पहुंच जाता है परन्तु कुशल इतना ही है कि पीछे की अपेक्षा यह कम होता है।

लक्षण—किसी २ को आरम्भ में फेफड़े से मुख द्वारा रक्त निकलता है। ज्वर जाड़े से आता है। सांस बढ़ जाती है। खांसी उठने लगती है। जब कि फेफड़े के रोग के पीछे उत्पन्न हो तो हेक्टिक् फीवर होने लगता है। छाती में दर्द, स्वांस में कष्ट होता है, खांसी बहुत उठती है। कफ भी अधिक निकलता है, कफ का रंग लोहे में मोर्चे के समान होता है, शरीर गल, घुल कर कृश हो जाता है। रात को पसीना आकर ज्वर शान्त होता है। पसीने के आने से रोगी सुस्त हो जाता है। किसी २ को दस्त लग जाते हैं।

परिणाम—बहुत बुरा है। यदि फेफड़े के रोगों के फल से उत्पन्न हुआ हो तो कभी आराम हो जाता है या जीर्णक्षयी में पलट जाता है।

चिकित्सा—शक्ति बनाए रखना, निर्बलता बढ़ने न देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। क्योंकि इस रोग से मुक्त होते प्राय कम देखे गये हैं। खांसी, ज्वर, पीड़ा, आदि की यथोचित चिकित्सा करें। किसी २ के मत से ब्रांडी लाभदायक है। रोगी को गर्म कपड़ा पहिना कर साफ हवादार मकान में रक्खें। दूध, शोरबा, सैगो, आदि हलकी पचने वाली पथ्य दें। छाती पर राई आदि का प्लास्टर लगावें। बचने का उपाय आगे लिखेंगे।

क्रानिक थाइसिस CHRONIC PHTHISIS जीर्ण क्षयी।

यही प्राय होती है। कभी तो आरम्भ ही से और कभी नवीन के उपरान्त इसमें जीर्ण लक्षण उदय होते हैं।

लक्षण—यह भी अचानक खून थूकने के उपरान्त आरम्भ होता है। धीरे २ खांसी, ज्वर, ऋतु बंद, बदहजमी

आदि प्रगट होते हैं। छाती में पीड़ा जो हसुली के पास से कधों तक फैलती है और किसी २ में पीठ और पसलियों में पहुंचती है। यदि फेफड़े की झिल्ली, जिसको प्लूरा कहते हैं, रोग ग्रसित हो तो दर्द बहुत तेज होता है। हृदय धड़कता है। स्वासा तेज होती है, सोते जागते खांसी उठती है, कभी भोजन के पीछे वमन हो जाती है। यदि पथ्य का-नल भी रोगी हो तो बोल भारी होता है। कफ आदि में लुआबदार, कड़ा, पीछे लसदार, गदा पड़ने पर मैला गाढ़ा और गोला पक्का सा निकलता है जिसको "नम्यूलेटिड स्प्यूटा" कहते हैं। यह पानी में डालने से डूब जाता है और सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देखने से उसमें फेफड़े की बनावट और एक प्रकार के कीड़े जिन्हें "बेसिलाई" Vaceli कहते हैं पाये जाते हैं।

यदि फेफड़े का फोड़ा हवा की नालियों में फूट पड़े तो कफ के स्थान में पीप मुंह से निकलती है। किसी २ को आदि में किसी २ को अन्त में और किसी २ को आदि मध्य और अन्त में मुंह से खून निकलता है—यह खून किसी २ में कम और किसी २ में अधिक निकलता है। ऐसी दशा में मृत्यु सिरहाने खड़ी रहती है। यह दशा सैकड़े में ५० रोगियों में देखी जाती है। जीर्णज्वर आदि में तो कम किन्तु ज्यों २ रोग बढ़ता है यह भी बढ़ता जाता है। दोपहर के उपरान्त भोजन के पश्चात् ज्वर बढ़ता है, शारीरिक गर्म्मी १०४–१०५ दर्जे की हो जाती है। सुबह १००–१०१–वा १०२ तक बनी रहती है। जितनी गर्मी अधिक हो उतनी ही जल्दी हानि होने की सम्भावना की जाती है। नाड़ी आदि में शीघ्र, कड़ी, और अन्त में दबने वाली नर्म, सूत

सी शीघ्र २ चलती है। भोजन के पश्चात् दोपहर से ज्वर बढ़ता है, आधी रात के समय ठंढा पसीना, जो माथे और छाती पर होता है, आकर ज्वर उतर जाता है। किसी २ को आधे ऊपरी धड़ में इतना पसीना आता है कि बिछौना भींग जाता है। रोगी सुस्त हो जाता है। इस पसीने को "हाल्टीक्टेटिव स्वीटिंग" कहते हैं। इन दशाओं से रोगी दिन २ दुर्बल होता जाता है। चर्बी, पट्ठे, नस, सभी घुल कर ढीले पड़ जाते हैं, चेहरा फीका हो जाता है, किन्तु प्रकाश ज्यों का त्यों रहता है। मरते २ भी चेहरे से यह बात नहीं पाई जाती कि यह रोगी है। जीर्ण ज्वर में हथेली और पैर के तलुओं में जलन होती है। जो गोरे रोगी हैं उन के गालों पर एक दाग जिसे "हेक्टिक् फ्लश" कहते हैं ज्वर की दशा में हो जाता है। कुपथ्य की ओर रोगी का चित्त झुकता है। दस्त आने लगते हैं जिससे और भी निर्बलता बढ़ जाती है। ऐसे समय के दस्तों को "काल्टीक्टेटिव डाइ-रिया" कहते हैं। भूख कम हो जाती है नींद नहीं आती। रोगी चिड़चिड़ा हो जाता है। निर्बलता के कारण वह बिस्तर से उठ नहीं सकता। पड़े रहने के कारण चूतड़ वा पीठ में घाव, जिसे "बेड सोर" कहते हैं, हो जाता है। सिर के बाल झड़ जाते हैं। किसी २ को भगन्दर (फिश्चूला एनाइनो) हो जाता है। गर्भवतियों में गर्भकाल में तो कम किन्तु प्रसव के पीछे यह तेजी पकड़ता है। किसी २ में प्रत्यक्ष कोई लक्षण नहीं ज्ञात होते पर जब छाती की परीक्षा की जावे तब भेद खुलता है। इसे "लेटेन्ट थाइसिस" अर्थात् गुप्त क्षयी कहते हैं। इस में रोगी अकारण ही दिन २

क्षीण होता जाता है।

छाती की परीक्षा—तीन दर्जों में बांट कर लिखेंगे।

१ दर्जा—डीपाजीशन स्टेज-इसमें फेफड़े की निचली नोक पर ट्यूबरकिल (विष) जमता है। अस्तु छाती का ऊपरी भाग चपटा और छोटा पड़ जाता है। और आड़ा व्यास अगले और पिछले व्यास की अपेक्षा चौड़ा हो जाता है। जितने ही "ट्यूबरकिल" अधिक जमते हैं, उतनाही छाती सांस लेने में कम फूलती है। ठोकने से रोगित स्थान पर ठस आवाज आती है। हथेली, छाती पर फैला कर रोगी को एक, दो, तीन बुलवाने से शब्द की तेजी कभी कम और कभी सुनाई नहीं पड़ती। फेफड़ा नीचे झुक जाता है। दिल की उछाल दूर से दिखाई देती है।

२ दर्जा—साफनिंग स्टेज-इस में ट्यूबरकिल मुलायम होने लगते हैं, और फेफड़े में गढ़ा पड़ने लगता है। छाती छोटी और चपटी हसली के ऊपरी और नीचे के हिस्से दबे होते हैं। छाती का फुलाव सांस लेने में कम, रोगी सामने को झुका जान पड़ता है। हथेली छाती पर रख कर बुलवाने से शब्द हथेली में तेज जान पड़ता है। कान लगा कर लकड़ी (स्टेथिसकोप) द्वारा सुनें तो छोटे २ या बड़े २ बुलबुले फूटने का शब्द रोगित स्थान पर सुनाई पड़ेगा। हृदय ऊपर को हट जाता है और उस का शब्द तेज सुनाई देता है।

३ दर्जा—एक्सकेवेशन स्टेज-इस में ट्यूबरकिल मय फेफड़े की बनावट के गल कर निकल जाते हैं।

फेफड़े में केवल गढे रह जाते हैं। छाती दब जाती है। पसलियां उभर आती हैं या दब जाती हैं। हृदय का धक्का रोगिल स्थान से कुछ ऊंचाई पर मालूम होता है। ठोकने से बहुत ठस आवाज़ सुनाई पड़ती है। कान लगा कर सुनने से छाला फूटने की भांति शब्द, जब फेफड़े के गढ़े में पीप भरी हो तो, सुना जाता है, और जब गढ़े खाली हों तो खाली घड़े में फूंकने से जैसी आवाज आती है वैसी ही सुनाई देगी। दिल दूसरे दर्जे के अनुसार ही इस दर्जे में रहता है।

सूचना—प्रगट हो कि यह परीक्षा बहुत कठिन और अभ्यास की है। इसे अच्छा अभ्यासी डाक्टर ही कर सकता है। इस में अभ्यास और शारीरिक विद्या (एनाटमी) की बड़ी आवश्यकता है। अस्तु, सर्वसाधारण के निदानार्थ कुछ संक्षेप से ही लिखा गया है। आस्कल्ट टेशन (कान लगाकर सुनने को कहते हैं) यह इस में अच्छी तरह नहीं लिखा है, इस लिए कि यह बड़े अभ्यासी वैद्य का कार्य है। जब इस रोग का कुछ संदेह हो तो किसी अभ्यासी और पुराने वैद्य से इस की परीक्षा करावें। जिस से कि पूर्ण विश्वास सया रोग का निदान हो।

संयुक्त रोग—लेरिंग्स और ट्रेकिया में घाव, खांसी; फेफड़े में सूजन, फेफड़े की झिल्ली में सूजन, फेफड़े में वायु, यकृत का चर्बी में परिवर्तन, भगंदर-गुर्दे के रोग जिन्हें ब्राइट् साहब ने खोज निकाला है, आंतों में घाव, जलधर (जलोदर), उन्माद, पेट के अस्तर करने वाली झिल्ली में सूजन, दस्त (अतिसार), पेचिश (मरोड़), आदि रोग इस

मिला कर इसमें से दो ड्राम की मात्रा लेकर दूध के साथ भोजन के पीछे पिलावें। "कार्बोनेट आफ गोयकोल" खिलावें। रात को नींद लाने के लिए "डोवर्स पौडर" १० ग्रेन फँकावें। खाने को दूध, शोरबा, यखनी, सागूदाना और आराकूट, आदि दें। गदही का दूध इसमें बड़ा फायदा करता है। गदही तीन चार मास की बियाई हो तो उसका दूध ताजा दूह कर पीवें। दूध का परिमाण प्रति दिन बढ़ाते जावें। कोई कोई केकड़ा[१] खिलाते हैं। जब कफ बहुत और दुर्गंधित निकले तो "क्रियाजूट" १ या २ बूंद अथवा कार्बोलिक एसिड एक या दो बूंद खौले हुये जल में डाल कर मुख में भाफ पहुचावें। इन्हीं औषधियों की गोली बनाकर खिलावें। दस्त लग गये हों तो "बिसमथ" और "डोवर्स पौडर" मिला कर दें। या चाक मिक्सचर एक औंस में १० बूंद टिंक्चर ओपियम मिला कर, या अन्य दस्त बंद करने वाली औषधि, दें। "टिंक्चर आइओडीनिया" भी देते हैं। तीतर बटेर, मुरगाबी, लवा, चिड़ा, और चूजा मुर्ग आदि का मांस खिलावें। तेल की चीज न दें। मछली भूंज कर खिलावें। ज्वर के समय फीवर मिक्श्चर दें। पीने को बरसाती पानी देवें या औटा कर जल दें। कमजोरों में स्टीम्यूलेंट औषधि दें। पसीना रोकने को अक्साइड आफ जिंक २ ग्रेन से ५ ग्रेन तक एक्सट्रेक्ट बेलाडोना ¼ ग्रेन के साथ गोली बना कर खिलावें। गैलिक एसिड और कुइनाइन मिला कर दें। रोगी को जिस प्रकार का कष्ट हो उसी के अनुसार औषधि आदि दें। "आइल आफ यूकेलिप्टस" खौलते पानी में

[१] केकड़ा मादा हो।

डाल कर मुख में भाफ लेने से खांसी और दुर्गंधि का बड़ा लाभ होता है।

स्थानिक चिकित्सा—छाती में दर्द हो तो तारपीन ओपियम लिनीमेंट के साथ या कैम्फर लिनीमेंट आदि मलें। राई का प्लास्टर लगावें। क्रियाजूट, कार्बोलिक एसिड, यूकेलिप्टस आइल, थाइमिन, क्लोराइन, आदि को खौलते जल में डाल कर "स्प्रे" के द्वारा नाक वा मुख में भाफ पहुंचावें।

लेप्रसी LEPROSY कुष्ठ = जुजाम = कोढ़

यह दो प्रकार का रोग है (१) ट्यूबरक्यूलर लेप्रसी, (२) एनिस्थेटिक लेप्रसी। पहिले में लाल २ धब्बे त्वचा पर निकलते हैं जिन को छूने या सुई आदि गड़ाने से रोगी को कुछ भी क्लेश नहीं ज्ञात होता अर्थात् ये स्थान सुन पड़ जाते हैं। दूसरे में हाथ पैरों की उंगलियां गल कर झड़ जाती हैं।

कारण—यह रोग पैत्रिक है। यदि दूध पिलाने वाली माता वा दाई को यह रोग हो तो, बच्चे को जो दूध पीता है दूध द्वारा इस रोग का असर हो जाता है। सिवाय इस के और कोई कारण इस के छूतदार होने का नहीं है। हर अवस्था में यह हर एक को हो सकता है।

लक्षण—(१) ट्यूबरकिल लेप्रसी (सुन कुष्ठ) इस में ज्वर हो कर लाल धब्बे शरीर पर निकलते हैं। कभी २ सारे शरीर पर बहुत से धब्बे और कभी पहिले एक ही दो धब्बे निकलते हैं। प्राय प्रथम मुख, नाक, और कान के पास धब्बा प्रगट होता है। कान, नाक और ओठ की लौ सूज जाती है। मुख बिगड़ जाता है। सूरत बदल जाती

मिला कर इसमें से दो ग्राम की मात्रा लेकर दूध के साथ भोजन के पीछे पिलावें। "कार्बोनेट आफ गोपबोल" खिलावें। रात को नींद लाने के लिए "डोवर्स पौडर" १० ग्रेन फँकावें। खाने को दूध, शोरवा, यवनी, सागूदाना और आरारूट, आदि दें। गदही का दूध इसमें बड़ा फायदा करता है। गदही तीन चार मास की बियाई हो तो उसका दूध ताजा दुह कर पीवें। दूध का परिमाण प्रति दिन बढ़ाते जावें। कोई कोई केकड़ा[1] खिलाते हैं। जब कफ बहुत और दुर्गंधित निकले तो "क्रियाजूट" १ वा २ बूंद अथवा कार्बोलिक एसिड एक वा दो बूंद खौले हुये जल में डाल कर मुख में भाफ पहुंचावें। इन्हीं औषधियों की गोली बनाकर खिलावें। दस्त लग गये हों तो "बिसमथ" और "डोवर्स पौडर" मिला कर दें। वा चाक मिक्श्चर एक औंस में १० बूंद टिक्चर ओपियम मिला कर, वा अन्य दस्त बंद करने वाली औषधि, दें। "टिंक्चर आइओनिया" भी देते हैं। तीतर बटेर, मुरगाबी, लवा, चिड़ा, और चूजा मुर्ग आदि का मांस खिलावें। तेल की चीज न दें। मछली भूंज कर खिलावें। ज्वर के समय फीवर मिक्श्चर दें। पीने को बरसाती पानी देवें वा औटा कर जल दें। कमजोरों में स्टीम्यूलेंट औषधि दें। पसीना रोकने को सल्फाइड आफ जिंक २ ग्रेन से ५ ग्रेन तक एक्सट्रेक्ट बेलाडोना ¼ ग्रेन के साथ गोली बना कर खिलावें। गैलिक एसिड और कुइनाइन मिला कर दें। रोगी को जिस प्रकार का कष्ट हो उसी के अनुसार औषधि आदि दें। "आइल आफ यूकेलेप्टस" खौलते पानी में

[1] केकड़ा मादा हो।

डाल कर मुख में भाफ लेने से खांसी और दुर्गंधि को बड़ा लाभ होता है।

स्थानिक चिकित्सा—छाती में दर्द हो तो तारपीन ओपियम लिनीमेंट के साथ या कैम्फर लिनीमेंट आदि मलें। राई का प्लास्टर लगावें। क्रियाजूट, कार्बोलिक एसिड, यूकेलेप्टस आइल, आइडिन, क्लोराइन, आदि को खौलते जल में डाल कर "स्प्रे" के द्वारा नाक वा मुख में भाफ पहुंचावें।

लैप्रसी LEPROSY कुष्ठ = जुज़ाम = कोढ

यह दो प्रकार का रोग है (१) ट्यूबरक्यूलर लैप्रसी, (२) एनिस्थेटिक लैप्रसी। पहिले में लाल २ धब्बे त्वचा पर निकलते हैं जिन को छूने या सुई आदि गड़ाने से रोगी को कुछ भी क्लेश नहीं ज्ञात होता अर्थात् ये स्थान सुन पड़ जाते हैं। दूसरे में हाथ पैरों की उंगलियां गल कर झड़ जाती हैं।

कारण—यह रोग पैत्रिक है। यदि दूध पिलाने वाली माता वा दाई को यह रोग हो तो, बच्चे को जो दूध पीता है दूध द्वारा इस रोग का असर हो जाता है। सिवाय इस के और कोई कारण इस के छूतदार होने का नहीं है। हर अवस्था में यह हर एक को हो सकता है।

लक्षण—(१) ट्यूबरक्लि लैप्रसी (सुन कुष्ठ) इस में ज्वर हो कर लाल धब्बे शरीर पर निकलते हैं। कभी २ सारे शरीर पर बहुत से धब्बे और कभी पहिले एक ही दो धब्बे निकलते हैं। प्राय प्रथम मुख, नाक, और कान के पास धब्बा प्रगट होता है। कान, नाक और ओठ की लौ सूज जाती है। मुख बिगड़ जाता है। सूरत बदल जाती

है। सिर और भौं आदि के बाल गिर जाते हैं। रोगी का चेहरा भद्दा हो जाता है। पीछे धब्बे सब शरीर पर मिल जाते हैं। धब्बों की त्वचा सुन पड़ जाती है। उस में सुई आदि गड़ाने से रोगी को कुछ नहीं जान पड़ता।

(२) "एनिसथेटिक"—गलित कुष्ठ—यह सून की नाड़ियों पर आरम्भ होता है। चेहरा, छाती या पैरों पर दुअन्नी से लेकर रुपये तक के बराबर धब्बे, कुछ लाल भूरे रंग के, चमकदार झुर्रीदार कुछ उभड़े और खरदरे दिखाई देते हैं। धब्बों में सुन विद्यमान होती है। पीछे इन धब्बों पर बड़े २ फफोले पड़ जाते हैं जो फूट कर खुरंड (दिखली) बंध जाते हैं। शारीरिक लक्षण भी धीरे २ बढ़ने लगते हैं। बुद्धि मोटी हो जाती है। शरीर ठंडा हो जाता है। नाड़ी धीमी चलती है। भूख बहुत लगती है। हाथ पैरों की उंगलियों के पोरुवे लाल, चमकदार, और सूजे हुए होते हैं। कुछ दिन पीछे उंगलियां गलने लगती हैं। पोरुवों के जोड़ खुल जाते हैं। शरीर पर जगह २ घाव जिन में दर्द नाम को नहीं होता, पड़ जाते हैं। धीरे २ हाथ, और पैरों की उंगलियां कभी २ पंजे तक गल कर गिर पड़ते हैं। कांच और बगलों की गिलटियां सूज जाती हैं। नाक से दुर्गन्धित जल बहता है। रोगी घिनावना हो जाता है।

निदान—धब्बों में हिस न होना इस रोग का पूर्ण निदान है। यह बात और २ चर्म्म रोगों में (सोरा-यसिस और एग्ज़ीमा आदि में) न पाई जावेगी। गलित कुष्ठ सब जानते हैं। इस के समान दूसरा रोग है ही नहीं।

परिणाम— बहुत बुरा है।

रोग से बचने का उपाय। ऐसी रोगिणी स्त्री का जिसे कि यह रोग हो बच्चे को दूध न पिलावें। रोगी के शरीर का उसके स्पर्श किए सामान और अन्य खाद्य पदार्थों से परहेज रक्खें।

चिकित्सा। संखिया या संखिया मिली औषधियों का सेवन कराना अच्छा है। नीम के पत्तों का खिलाना और नीम का मद मलना भी अच्छा है। चावल मोगरा का तेल लगाना भी कोई २ लाभ दायक बताते हैं। गर्जन आइल[1] एक हिस्सा, चूने का पानी दो हिस्सा मिला कर मलें। सिह, रूंदुसा, और रीछ की चर्बी भी लाभदायक है। गधे का मूत्र, और मगर का मांस कोई २ लाभदायक बताते हैं। जहां दर्द हो वहां

सोप लिनीमेन्ट	१ हिस्सा
केजोपुट आइल	½ हिस्सा
क्लोरोफार्म	½ हिस्सा

मिलाकर दर्द के स्थान में मलें। खाने को—

संखिया	$\frac{1}{12}$ हिस्सा
मदार की जड़ की छाल का चूर्ण	१ ग्रेन
कालीमिर्च का चूर्ण	१ ग्रेन
एक्सट्रेक्ट जिनशियन	१ ग्रेन

मिलाकर गोली बनावें। ऐसी एक गोली एक सख्त रोगी को दिन में दो बार (सुबह शाम) खिलावें। या

रेसारसिन	१ ग्रेन
एकचाल	१ ग्रेन

मिलाकर दें। और लगाने को वेसलीन, या लेनोलीन

लगावें। इस रोग से दैवात् किसी का गला छूटता है, क्योंकि कोई औषधि काम नहीं देती। उपर्युक्त औषधियां केवल बल बढ़ाने और रक्त शुद्ध करने को दी गई हैं सही, किन्तु पूर्ण आरोग्य होना कठिन है। मैंने तो आरम्भ में न्यूनाधिक प्रकार का आराम होते देखा है, किन्तु रोग पूर्ण होने पर या गलित कुष्ठ होने पर कोई रोगी मुक्त होते नहीं देखा।

स्केबीज SCABIES or ITCH इच = खाज = खुजली

यह एक छूतदार रोग है। इसमें "अकेरस स्केबियाई" नामी एक प्रकार का कीड़ा पाया जाता है। इसी कीड़े के त्वचा में प्रवेश करते ही वहां छोटे २ दाने सरसों के समान निकल आते हैं। उस स्थान पर ऐसी खुजली होती है कि रोगी बेचैन हो जाता है। खुजलाने से घाव पड़ जाते या दरारें पड़ जाती हैं और पीप निकल कर उस स्थान पर छिलली बन जाती है। बच्चों में चूतड़, पांव और हाथ की हथेली पर और जवानों में अँगुलियों की गाइयों, पहुंचे के सामने पेट और जांघों पर देखा जाता है। प्रायः पुरुषों के लिङ्ग और स्त्रियों के कांख और छाती के नीचे होता है।

कीड़े का वर्णन। यदि अकेरस स्केबियाई (खुजली का कीड़ा) को किसी निरोगी त्वचा (चमड़े) पर रख दें तो १० से १५ मिनिट के भीतर चमड़े में तिरछा छेद करके $\frac{1}{8}$ से ४ सूत लम्बी नाली बनाकर यह चमड़े के भीतर घुस जावेगा और एक घर, जो सरसों के समान होता है, बना कर बैठ जावेगा। तारीफ यह है कि यह रास्ते में अण्डा धरते हुए भीतर पहुंचता है। यदि उसके घर को सुई से खुरचें तो सुई की

१ पिलारी भी हैं।

मोक में उक्त कीड़ा लग कर निकल आता है जो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा भली भांति दिखाई देता है। एक कीड़ा तीन चार मास तक जीवित रहता है। इसके पीछे मर जाता है। पुन दूसरे मादा कीड़े बाहर निकल कर नर से, जो दिल्ली, आदि में छिपा होता है, गर्भित हो फिर भीतर पहुंच कर रोग को नया कर देते हैं। कीड़े की सूरत कछुवे के समान होती है किन्तु इनके चपड़े की भांति लम्बे २ बाल और चार पांच पैर होते हैं।

कथार-मैले, दरिद्र मनुष्यों (बच्चों और जवानो) को यह अधिक होता है। फुंसियों की पीप यदि निरोगी शरीर पर लग जावे तो यह रोग हो जाता है।

निदान-इस के समान अन्यान्य चर्म रोग (छाजन और नाग्रकडू=प्रोराईगो आदि) न तो छूतदार हैं और न ऐसा कीड़ा किसी दूसरे में पाया जाता है।

चिकित्सा-(१) कीड़ों को मारना। इस काम के लिये गंधक बड़ी उत्तम और लाभदायक औषधि है। इस के लगाने से कीड़े मर जाते और उनके अण्डे बरबाद हो जाते हैं। जैसे-

गंधक (सलफर)	१ हिस्सा
मक्खन	४ हिस्सा

मिलाकर रोगिल स्थान को कार्बोलिक साबुन से धोकर लगावें। या-

सल्फर (गन्धक)	½ ड्राम
ह्वाइट परसीपिटेट	४ ग्रेन
क्रियाजूट	४ बूंद

गुलबाबूना का तेल (कैमोमाइल आइल) ४ बूंद
चर्बी या मक्खन १ औंस

मिलाकर रोगी स्थान को खूब कार्बोलिक या "सल्फर" सोप (साबुन) से धोकर दिन में दो बार लगावें। या-

सल्फर (गन्धक) आधा ड्राम
जिंकओक्साइड लाई १ औंस

मिलाकर बच्चे की खुजली पर लगावें। लगाने के उपरान्त अपना हाथ कार्बोलिक सोप से धो डालें। ध्यान रखे कि रोगिल स्थान जितना साफ रहेगा उतना ही औषधि का असर होकर शीघ्र आरोग्य होगा। विरुद्ध इसके वह जितना गंदा होगा उतनी ही देर लगेगी। घावों पर ठंडी औषधि कपूर आदि लगावें।

(२) रोग से बचने का उपाय-ऐसे रोगी से बहुत दूर रहें। यदि घर में एक को यह रोग हो तो उसे दूर रक्खें। उसका कमरा, पलंग, और बिस्तर आदि अपने व्यवहार में न लावें। यदि औषधि आदि अपने हाथों लगावें तो हाथों को भली भांति धो डालें क्योंकि प्रायः यह रोग ऐसों ही को अधिक होता है जो ऐसे रोगी को औषधि लगाते वा ऐसे रोगी का वस्त्र आदि पहिर लेते हैं। घर में एक को होते ही सब के सब इस रोग में ग्रसित हो जाते हैं।

रिंगवर्म[1] RINGWORM दाद।

यह रोग भी छूतदार है। इस में एक प्रकार का कीड़ा जिसे "ट्राइकोफाइटिन टान्सुरेंस" कहते हैं पाया जाता है।

---

१ "रिंग" के माने छल्ले के हैं और "वर्म" कहते हैं कीड़े को, अर्थात् छल्लेदार कीट वा दाद।

यह रोग शरीर के विविध भागो पर होता है। अस्तु, स्थानों के अनुसार नाम भी अनेक हैं।

(१) टिनिया टान्सुरेंस या रिंगवर्म आफ दी स्कैल्प—यह रोग निर्बल मैले तथा दरिद्री बच्चों के और कभी कभी जवानों को एक बिछौने पर सोने वा रोगी का वस्त्र आदि पहिरने से हो जाता है। प्राय यह सिर पर होता है। सिर पर प्रथम गोल २ लाल, सूखे, भूसीदार और कुछ उभड़े दाने पैदा होते हैं। इन दानों में खुजली अधिक होती है। कीड़ो के कारण रोग बढ़ता जाता है। सिर के बाल टूट २ कर गिर जाते हैं। धब्बे बढ़ने लगते हैं। कभी २ धब्बे बहुत और समीप होने के कारण आपस में मिल कर कुल सिर घेर लेते हैं। यदि धब्बो में कोई बाल लगा रह जावे तो वह कड़ा और सूज कर मुड़ा होगा। धब्बे विविध प्रकार के देखे जाते हैं। किसी २ के बाल पीप के कारण चिपक कर खुत्ती से बन जाते हैं। यह रोग जीर्ण है। रोगिल स्थान के बाल गिर कर रोगी के गंजा कर देते हैं।

(२) टिनिया सरसीनेटा—यह चेहरे, छाती, हाथ और पाव पर निकलता है। इसमें प्रथम गोल २ दाने उठते हैं। दाने उभड़े और कुछ बीच में दबे होते हैं। खुजली अधिक होती है। दाने धब्बो के मध्य निकलते और मुरझाते रहते हैं। कभी एक धब्बा उत्पन्न हो कर फैलता और बढ़ता जाता है। बच्चों में यह गर्दन, चेहरे, और हाथों में होता है और आप ही आप अच्छा हो जाता है। इसी प्रकार का दाद जवानों के जांघ कमर और लिंगेन्द्रियों पर होता है। इस में खुजली जलन बहुत होती है। कभी तो धब्बे

त्वचा पर पड़ जाते हैं। प्रथम छोटी २ गोल कुछ पीलापन लिये फुंसियां पोस्ते के दाने के समान या मटर के दाने के समान शरीर के उन स्थानों पर जो दायें बायें समान हैं (यथा बगल जांघ आदि) निकलती हैं, जो कुछ दिन में आपस में एक दूसरे से मिल कर बेकायदे सूरत की हो जाती हैं। उन के मध्य की त्वचा आरोग्य त्वचा के सदृश होती है। इसी से यह रोग पहिचाना जाता है। इस में न तो जलन पड़ती है, न खुजली। इसी कारण रोगी इस की विशेष परवाह नहीं करता। किसी में कुछ साधारण खुजली जान पड़ती है। जब रोग जीर्ण होता है तो रोगिल त्वचा से सफेद पतली भूसी निकलती है। इस में भी एक प्रकार की काई (कीड़ा) माइक्रस पोरन फर फर नाम की पाई जाती है। रोग क्रमशः पेट, छाती और पीठ के ऊपरी भागों तक फैल जाता है। यह रोग हाथ और पैरों पर नहीं देखा गया है। मैले और ऊनी कपड़े द्वारा इस की छूत शरीर में लगती है।

चिकित्सा–

१ टिनिया टान्सुरेंस—शारीरिक चिकित्सा, काड लिवर आइल या संखिया, लोहा, मिली दवाओं से करें। स्वास्थ्य रक्षण के नियमों पर चलावें। पाचक और हलका पथ्य दें।

स्थानिक चिकित्सा, कीटनाशक औषधियों से करें। यदि रोग आरम्भ हो तो सिर के बाल यदि हों तो काटकर तेज़ "एसीटिक एसिड" (सिरके का तेजाब) लगावें। या टिंक्चर आयोडिन लगावें। यदि हो सके तो चिमटी से बाल उखाड़

सलफ्यूरस एसिड लगावें या आलीएट आफ मरकरी लगावें। बाक़ी चिकित्सा टिनिया टान्सुरेन्स की भांति करें।

(६) टिनिया वर्सीकोलर की चिकित्सा—त्वचा को कार्बोलिक सोप और गर्म जल से धोवें, पीछे खूब रगड़ कर किसी तौलिये से पोंछें। पीछे सलफ्यूरस एसिड और पानी बराबर लेकर लगावें। या—

सोल्यूशन आफ सलफाइड आफ सोडा	१ ड्राम
गिलसरीन	१ औंस

मिलाकर लगावें। या—

टिंक्चर आयोडीन	२ ड्राम
टरपनटाइन आइल	३ ड्राम
टिंक्चर कैंथ्राइडिज़	२ ड्राम
रेड आक्साइड आफ मरकरी	२४ ग्रेन
लिनसीड आइल (अलसी का तेल)	२ औंस
लाइम वाटर (चूने का पानी)	१२ औंस

मिलाकर लगावें। किन्तु ध्यान रक्खें कि प्रथम साबुन और गर्म जल से शरीर (रोगी स्थान) शुद्ध कर लिया ... और पहिरने के कपड़े बदल दिया करें। स्वास्थ्य ...ते रहें।

मौलसकम् कंटेजिओसम।

...टे, मुख के चारों ओर इधर उधर, कभी हथेली ... पर, कगनी दाने से लेकर मटर के समान ... अधिक दाने निकलते हैं जो कभी ... छोर जाते रहते हैं। हर एक दाने के ... रहता है जिसमें से दूध के सदृश सफेद

सकते हैं। बच्चों में कार्बोलिक आइन्टमेंट (१ ड्राम १ औंस वाला) या हलका सिटरन आइन्टमेंट डायल्यूट करके लगावें। यदि भैंसा दाद (जीर्ण दाद) हो तो निम्न लिखित औषधि लगावें—

क्राइसोफेनिक एसिड	२० ग्रेन
चर्बी या मक्खन	१ औंस

मिला कर लगावें। या गधक सारपीन में मिलाकर व्रण स्थान पर खूब खुजला कर मलें।

(३) टिनिया साइकोसिस—इस की चिकित्सा (१) टिनिया टान्सुरेंस के समान करें।

(४) ओनीको माइकोसिस—नाखून (नख) को चाकू से छील कर तेज सिरके का सेज़ाब लगावें। और यह नुसखा—

हाइपो-सलफाइड आफ सोडा	२ ड्राम
डिस्टिल्ड वाटर	५ औंस

बना कर इसमें कपड़े का टुकड़ा भिगो कर नख पर बांधें। कोई २ "कास्टिक लोशन" (२० ग्रेन एक औंस वाला) लगाते हैं या आइडिन आइन्टमेंट की मालिश करते हैं।

(५) टिनिया फेवोसा की चिकित्सा—यदि सिर पर बाल हों और वे सुरड में चिपटे हों तो पहिले आस पास के बालों को, मूड़ने लायक हों तो मूंड कर और काटने लायक हों तो काट कर, गर्म जल और सलफर या कार्बोलिक साबुन द्वारा धोवें। पीछे सिर पर पुल्टिस बांधें जिसमें सुरी निकल जावे। पश्चात् सेचूरेटेड सोल्यूशन आफ

सलफ्यूरस एसिड लगावें या आलीएट आफ मरकरी लगावें। बाकी चिकित्सा टिनिया टांसुरैन्स की भांति करें।

(६) टिनिया वर्सीकोलर की चिकित्सा—त्वचा को कार्बोलिक सोप और गर्म जल से धोवें, पीछे खूब रगड़ कर किसी तौलिये से पोंछें। पीछे सलफ्यूरस एसिड और पानी बराबर लेकर लगावें। या—

सोल्यूशन आफ सलफाइड आफ सोडा	१ ड्राम
ग्लिसरीन	१ औंस

मिलाकर लगावें। या—

टिंकचर आयोडीन	२ ड्राम
टरपनटाइन आइल	६ ड्राम
टिंकचर कैंथ्राइडिज़	२ ड्राम
रेड आक्साइड आफ मरकरी	२४ ग्रेन
लिनसीड आइल (अलसी का तेल)	२ औंस
लाइम वाटर (चूने का पानी)	१२ औंस

मिलाकर लगावें। किन्तु ध्यान रक्खें कि प्रथम साबुन और गर्म जल से शरीर (रोगी स्थान) शुद्ध कर लिया हो। बिस्तर और पहिरने के कपड़े बदल दिया करें। स्वास्थ्य और सफाई से रहें।

मोलसकम् कंटेजिओसम।

चेहरे, पपोटे, मुख के चारों ओर इधर उधर, कभी हथेली के पीछे और पपोटे पर, कगनी दाने से लेकर मटर के समान कभी दो चार कभी अधिक दाने निकलते हैं जो कभी अच्छे होते निकलते और जाते रहते हैं। हर एक दाने के केन्द्र पर एक छेद रहता है जिसमें से दूध के सदृश सफेद

कभी २ आमाशय तक, पहुच जाती है। यह रोग छोटे बच्चों को होता है।

कारण—छूतदार रोग है। छूत लगने के सिवाय विविध रोगों में, जैसे क्षयी आदि के अन्त में, देखा जाता है। पाचन शक्ति नष्ट होने पर या कोई अन्य रोग के पीछे देखा जाता है।

लक्षण—मुख में सूजन होती है। राल बहती है। गलकड़े जीभ और गाल के भीतरी भाग पर लाल चमकदार धब्बे निकलते हैं। कभी २ घाव भी देखे जाते हैं। मुख में ज्वाला दर्द और चमक जान पड़ती है। मुख से दुर्गंध आती है। कुछ खाया पीया नहीं जाता। स्वाद बिगड़ जाता है। ज्वर भी यदि दांत निकलते हों तो होता है। ऐसी अवस्था में बच्चे को कनवल्शन (एक प्रकार की ऐंठन) होती है।

चिकित्सा—क्लोरेट आफ पुटाश खिलावें और इसी दवा को लगावें। या गिलसरीन बोरिक के लोशन से कुल्ली करावें। इसी को फुरेरी द्वारा मुख में लगावें। अलसी का क्वाथ बना कर कुल्ली करावें। कालो के पानी से मुख को धोवें। राल बहुत निकलती हो तो फिटकरी का चूर्ण धब्बों पर छिड़कें। घाव हों तो कास्टिक लोशन (२ ग्रेन या ४ ग्रेन एक औंस वाला) लगावें[१]। नुसखा पिलाने को—

पुटासी क्लोरास	५ ग्रेन
डिकाक्शन सिनकोना	४ ड्राम

१ दांतों के निकलने के कारण ज्वर आदि बन जावें तो मसूड़ों को चीर दें।

मिला कर ४ या ५ वर्ष के लड़के को पिलावें। क्लोरेट आफ पुटास ग्लिसरीन में मिला कर मुख में लगावें। खाने को दूध और चूने का पानी मिला कर दें।

रोग से बचने का उपाय—स्वास्थ्य रक्षण के नियमो पर ध्यान दें। माता जब दूध पिलावे तब छाती धो डाला करे। अन्य बच्चों को बचावें। रोगी बच्चे की जूठी कोई वस्तु निरोगी बच्चे को न दें। राख आदि किसी बर्तन में डाल कर छूत नाशक अर्क मिला कर दूर गाड़े। रोगी बच्चे का वस्त्र निरोगी बच्चा मुख में न डाल ले (जैसा प्राय बच्चे जो पाते हैं मुख में डाल लेते हैं) इस का ध्यान रक्खें। रोगी बच्चे को साफ रक्खें। समय २ पर गाय का ताजा दूध कुछ चूने का पानी मिला कर पिलावें।

न्यूमोनिया Pneumonia जातुरिया = फेफड़े की सूजन

फेफड़े की सूजन ३ प्रकार की है–१ एक्यूट, २ कटारल, ३ क्रानिक (जीर्ण)।

यह रोग दो प्रकार का है (१)ट्रामेटिक न्यूमोनिया जो चोट आदि से, जैसे छाती में बर्छी आदि लगे या पसलिया टूट कर फेफड़े को छेदें। इसे छूतदार न समझ कर छोड़ दिया।

२ "इडियोपेथिक" आप ही आप होने वाला। इसे कोई २ छूतदार मानते हैं। यद्यपि यह रोग बहुत से छूत वाले रोगो के फल से उत्पन्न होता है जैसा कि पीछे खसरा शीतला, टाइफाइड, टाइफस, ज्वर, डिफथीरिया, प्रसूतिज्वर और सेप्टिसीमिया में लिख आये हैं तो भी यहां केवल इस के छूत दार होने का कारण मात्र लिखते हैं।

कारण—इस के कारण तो बहुत हैं, जैसा कि ऊपर

लिख आये हैं। इस के छूत दार होने का कारण अब यह बतलाते हैं कि इस रोग के रोगी के कफ में एक कीड़ा जिसे न्यूमोकोकाई कहते हैं पाया जाता है। यह कीड़ा किसी भांति से निरोगी मनुष्य के फेफड़े में यदि चला जावे तो फेफड़े में तुरत सूजन हो जाती है। फेफड़े में कफ पृथ्वी में सूख कर वायु में मिल कर प्रवेश करता है वा स्वास द्वारा भी कीड़ा फेफड़े में पहुच सकता है।

लक्षण—विस्तार भय से कुल लक्षण तो नहीं लिख सकते। मुख्य लक्षण ये हैं। छाती के जिस ओर सूजन हो वहा दर्द, उस करवट लेटने में पीड़ा। स्वास कष्ट और स्वास के साथ छाती की पीड़ा असह्य होती है। ज्वर तेज अर्थात् १०४ से १०८ तक। खासी अधिक, कफ, आदि में चिप चिपा, ईंट के रग का या मुरचे के रग का, पीछे झागदार पीले रग का, निकलता है। मूत्र गदला लाल रग का कम परिमाण में निकलता है। जिस ओर फेफड़े में सूजन होगी, वहा हाथ से देखने से गर्मी अधिक होगी। गाल भी लाल उसी ओर का होगा जिस ओर का फेफड़ा ग्रसित है। निर्बलता इतनी होती है कि रोगी करवट तक नहीं बदल सकता। नाड़ी ९० से १२० प्रति मिनिट चलती है। स्वास ३० से ६० या ८० बार प्रति मिनिट चलती है। जब दोनो ओर के फेफड़े ग्रसित हों जिसे डबल न्यूमोनिया कहते हैं तो लोहू साफ न होने के कारण चेहरा नीला पड़ जाता है। रोगी स्वासकष्ट से बेचैन या अचेत हो कर मर जाता है। बूढ़ों, निर्बलों, और शराबियो में अशुभ लक्षण उदय होते हैं। ऐसों में जीभ सूखी भूरी या काली, ओठों और

दांतों पर पपड़ी जम जाती है। रोगी बकता झकता या बिछौने को नोचता है। हाथ पैर कांपते हैं। ओठ फटते हैं। पीछे वह अचेत हो कर मर जाता है। यदि आरोग्य होने वाला हुआ तो ८ से ११ दिन के भीतर ज्वर उतर जाता है और अशुभ लक्षण दूर हो जाते हैं।

निदान—साधारण खांसी में न तो इतना ज्वर होता है और न मोरचे और ईंट के रंग का कफ निकलता है। प्लूरसी (फेफड़े के झिल्ली की सूजन) में दर्द तेज़ सुई चुभाने के सदृश और ज्वर १०१ या १०२ दर्जे से अधिक नहीं होता।

फिजीकल साइन्स (देख, सुन, ठोक, और छूकर परीक्षा) हमने यों छोड़ दी कि यह काम सर्वसाधारण नहीं कर सकते। यह अभ्यासी वैद्यों का काम है, इससे यह परीक्षा किसी अभ्यासी वैद्य से कराकर निदान करवावें। जितना सर्वसाधारण के समझने योग्य था लिख दिया गया।*

रोग से बचने का उपाय—फेफड़े पर सरदी न लगने पावे और रोगी के कफ आदि से बचे रहें।

चिकित्सा—दो प्रकार की करें—शारीरिक और स्थानिक।

(१) शारीरिक चिकित्सा-रोगी को निर्बलता से बचावें इस लिये स्टिम्युलेंट—

कार्बोनेट आफ एमोनिया ५ ग्रेन

* परिणाम—जब दोनों ओर के फेफड़े रोग ग्रसित हों तब परिणाम भयानक होता है। एक ओर के रोगी फेफड़े वाले, यदि दूसरे रोग न आ मिले हों तो, प्रायः अच्छे हो जाते हैं।

टिंक्चर सिनकोना कम्पौंड — २० बूंद
स्पिरिट् क्लोरोफार्म — २० बूंद
टिंक्चर डिजीटेलिस (यदि नाड़ी की गति
प्रति मिनट १०० से १२० हो तो) — ५ बूंद
ब्रांडी (यदि कमजोरी अधिक हो तो) १ या २ ड्राम
डिकाक्शन सिनकोना — १ औंस

मिलाकर ऐसी एक मात्रा प्रत्येक तीन तीन घण्टे पीछे पिलावें जब नाड़ी १०० से नीचे आ जावे तो टिंक्चर डिजीटेलि बन्द कर दें। यदि रात में नींद न आवे तो क्लोरल हाइड्रेट १ से २० ग्रेन तक खिलावे। आरोग्य होने पर "टानिक मि क्चर" देवे।

(२) स्थानिक चिकित्सा–छाती पर सेक करें। फलालैन के टुकड़े पर तारपीन छिड़क कर सेंकें या राई का प्लास्टर लगावें। गर्म २ अलसी की पुलटिस बांधें। लेकिन आध २ घण्टे पीछे उसे बदलते जावे।

सूचना—कटारल न्यूमोनिया में कफ ईंट के रंग का नहीं होता। फेफड़े में जो जल रिसता है वह या तो कफ द्वारा निकल जाता है या पीप में बदल कर क्षयी रोग उत्पन्न करता है। और क्रानिक न्यूमोनिया में दर्द आदि कम होते हैं। उस में क्षयी के से लक्षण प्राय देखे जाते हैं खांसी इसमें मुख्य प्रकार की और थारी से उठती है। रोगी प्रति दिन निर्बल होता जाता है। शेष लक्षण कारण और अन्य दशायें सब एक्यूट न्यूमोनिया के सदृश ही पाए जाते हैं

स्लीपिङ्ग डिज़ीज़ ।

निद्रा रोग SLEEPING DISEASE.

इस रोग में अच्छा भला नीरोगी मनुष्य सोता का सोता ही रह जाता है। यद्यपि यह रोग अभी इधर नहीं आया है[१] तौभी प्लेग होने के समय कहीं २ भारतवर्ष में भी इस का होना सुना गया था। इस रोग का मूल कारण अभी खोजा जा रहा है। किन्तु इस में सन्देह नहीं कि यह छूत-दार है। इस की छूत वायु द्वारा आक्रमण कर के रोगी को फिर सोते से नहीं जगाती। मनुष्य रात को भोजन आदि कर के पलग पर सोए है, प्रात काल देखा गया है कि वे मुर्दे पड़े हैं। इस का सविस्तर हाल अभी यों नहीं लिख सकते कि इस रोग की अभी परीक्षा हो रही है। जब तक परीक्षा द्वारा इस के कारण और लक्षण न सिद्ध हो जांय तब तक इस पर कुछ लिखना व्यर्थ है। अभी तक यह योरप और अफ्रिका, उत्तरी एशिया आदि में घुमा है। भगवान न करे कि यह भारतवर्ष में आवे।

बचने का उपाय—जिस स्थान में इस भांति लोगों की मृत्यु होती देखें तुरत वहा से भाग निकलें क्योंकि यह रोग इनफेक्शस मालुम होता है। सम्भव है कि कटे-जस भी हो।

स्त्रियो के मुख्य रोग ।

प्योरपरल फीवर PUERPERAL FEVER प्रसूत ज्वर

यह रोग स्त्रियों को बचा जनने के पीछे होता है।

---

१ अफ्रिका में अधिक है।

गर्भाशय[1] के द्वारा विष प्रवेश होकर रुधिर में मिलता है जिससे यह रोग होता है।

कारण—लड़का पैदा होने के पीछे भग में कोई वस्तु जैसे झिल्ली या आंवल बेल (खेड़ी) का टुकड़ा, या खून का लोथड़ा आदि का रह जाना और सड़ना। या गर्भाशय की दीवार में पैदा होते समय दबाव या औजार आदि से चोट पहुंचना और चोट द्वारा विष रुधिर में प्रवेश करना। चोट आदि के कारण गर्भाशय का सड़ना, या गर्भाशय में जनने से प्रथम घाव आदि का होना। प्राय बच्चा जनते समय दायी आदि की असावधानी से भग बच्चे के सिर के दबाव के कारण तन कर फट जाती है। और इस रोग का विष इसी फटे या छिले हुए मार्ग से रुधिर में प्रवेश कर जाता है।

ऊपर कहे कारणों के सिवाय "डिफथीरिया"—"लाल बुखार"—"एरीसिपेलस" (सुर्ख बादा) "पिरिटोनाइटिस" (पेट पर असर करनेवाली झिल्ली की सूजन) आदि छूत वाले रोगों का विष यदि जच्चा के शरीर में लग जावे तो यह रोग तत्क्षण ही प्रगट होता है। एक रोगिणी जच्चा से दूसरी निरोगी जच्चा भी रोगिणी हो जाती है। अर्थात् रोगिणी प्रसूता का विष अरोगिणी प्रसूता को लग जा कर यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण—बच्चा जनने के दूसरे या तीसरे दिन उक्त विष छिले या फटे हुए मार्ग से रुधिर में पहुंच कर अथवा

---

[1] बच्चा जनने के उपरान्त यदि नाड़ी की गति प्रति मिनिट १०० से ऊपर हो तो इस रोग का संदेह करना पड़ता है।

असर प्रगट करता है। एक साथ जाड़ा देकर ज्वर, जो १०२ से लेकर १०८ दर्जे तक का देखा गया है, चढ़ता है। नाड़ी १०० से लेकर १४० या १५० की गति से प्रति मिनिट चलती है। श्वांस जल्द २ और उस में मीठी २ गंध आती है। जीभ आदि में मैली और तर किन्तु अंत में काली हो जाती है। पेट फूल कर ढोल हो जाता है। दबाने से दर्द भी करता है। मुख फीका चुचका हुआ हो जाता है और आँखें बैठ जाती है। कभी २ रोगिन बकझक करती है। किसी २ को अंत तक होश हवास बने रहते हैं किन्तु कोई २ अचेत हो कर खुर्राटे की श्वास लेती हैं। दस्त और वमन काफी की भांति काले रंग की होती है। बच्चा जनने के पीछे एक प्रकार का लोहू मिश्रित जल पांच सात दिन तक भग से निकला करता है वह इस रोग में या तो बिलकुल बंद हो जाता या दुर्गंधित और कम परिमाण में निकलता है। गर्भाशय के ऊपर (पेड़ू पर) दर्द जो दबाने से अधिक होता है जान पड़ता है। स्तनों का दूध बंद हो जाता है या कम हो जाता है। जब अन्तिम दशा पहुंचती है तो नाड़ी बारीक सूत सी होती है मानो ठहरने चाहती है। और पेट ढोल सा बनने लगता है। श्वास उलटी हो जाती है। एक ही सप्ताह में रोगिन परलोक सिधारती है। किसी में ऊपर के कुल लक्षण एक साथ नहीं भी पाए जाते। किसी २ में "सेप्टीसीमिया" के लक्षण पाये जाते है।

सेप्टीसीमिया के लक्षण।

शरीर के विविध भागों में पीप का पड़ जाना, जाड़ा, ज्वर, और शरीर का पीला पड़ जाना, त्वचा पर

घब्बे पड़ना, आंख के श्वेत भाग में घाव या सड़न होना, फेफड़े और उसकी झिल्ली (प्लूरा) में पीव भर जाना, हृदय की झिल्ली में पीप पड़ना आदि सेप्टीसीमिक सिम्टम्स (सड़न के लक्षण) हैं।

कम्प्लिकेशन (सम्मिलित रोग)-इस रोग से पेट की अस्तर करने वाली झिल्ली जिसे "प्रेटोनियम" कहते हैं सूज जाती है। आश्चर्य्य यह कि पेट की झिल्ली की सूजन से प्रसूत ज्वर और प्रसूत ज्वर से पेट की झिल्ली की सूजन हो जाती है। इससे जान पड़ता है कि एकही विष दोनों रोगों में होता है। इसके सिवाय न्यूमोनिया (फेफड़े की सूजन) प्लूरसी (फेफड़े के ढकने वाली झिल्ली की सूजन) पैरी कार्डाइटिस (हृदय की झिल्ली की सूजन) पीलिया, जिगर और गुर्दे की सूजन, आदि भी शामिल हो जाते हैं।

रोग से बचने का उपाय-जच्चा के पास किसी रोगिणी स्त्री को न आने दें। दाई आदि, किसी ऐसी रोगिणी को देख कर जो एरीसिपेलस, डिफ्थीरिया, लाल बुखार और पेट की झिल्ली की सूजन वाली हो, जच्चा के समीप न आवें। जच्चा का कमरा साफ हो। गन्दगी आदि या मोरी पनारा आदि जच्चाखाने के समीप न रहें। नहाकर और साफ कपड़े बदल २ कर जच्चा के समीप आवें। जल वायु का उत्तम प्रबन्ध करें। यदि कोई स्त्री घर में प्रसूत ज्वर से पीड़ित हो तो अन्य प्रसूता को दूसरे स्थान में रक्खें। दाई आदि अपने हाथ कार्बोलिक लोशन (छूतनाशक अर्क) द्वारा खूब धोकर तब जच्चा को छूवें। जच्चा को भी साफ कपड़े पहिनावें ओढ़ावें।

चिकित्सा—बच्चे के पैदा होते समय इस बात का ध्यान रक्खें कि भग का कोई भाग किसी यन्त्र वा बच्चे के दबाव से फटने वा छिलने न पावे। उपरोक्त मरकरी लोशन—एक हिस्सा एक हजार हिस्से वाला ($\frac{1}{1000}$) लेकर डूश (जो एक लोहे का बना होता है) में भर भर भग और गर्भाशय को दोनो वक्त धोवें, इस विधि से विष यदि हो तो नष्ट हो जाता है। यह कार्य कम से कम एक सप्ताह तक करें। बच्चे के जन्म धारण करते ही ५ ग्रेन की मात्रा में कुइनाइन Quinine नित्य प्रात काल एक दो सप्ताह तक बराबर दें। इस औषधि से ज्वर आदि तो दूर रहते ही हैं किन्तु गर्भाशय के भीतर के खून आदि विषैले पदार्थ भी बाहर निकल जाते हैं। यदि असावधानी आदि से यह रोग (प्रसूत ज्वर) हो जावे तो उसकी यों चिकित्सा करें—कि दोनों वक्त पिचकारी द्वारा "कांडीज फ्लुइड" या मरकरी लोशन ($\frac{1}{1000}$) से भग को खूब साफ करें। लम्बी नली पिचकारी में लगा कर गर्भाशय को भी धोवें। पीछे कुइनाइन से चिकित्सा आरम्भ करें अर्थात् कुइनाइन १० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार प्रतिदिन खिलावें। यह औषधि कभी २ बड़ी लाभदायक पाई गई है। इससे ज्वर और विष दोनों को बड़ा लाभ होता है। यदि "कुइनाइन" काम न दे तो वारबर्ग साहेब का टिंकचर Barburg's Tincture पिलावें। यह उस समय अधिक लाभदायक होगा जब कि ज्वर की अधिकता हो। यदि पेट की अस्तर लगाने वाली झिल्ली सूज जाय तो चिकित्सा तारपीन के तेल से करें। नुसखा नीचे देखो।

स्पिरिट आफ टरपनटाइन (शराब में मिलाया हुआ तारपीन) — १ औंस

दो अंडे की जरदी — मतलब भर

लुआब बबूर के गोंद का — २ औंस

सिरप आफ लेमन (नीबू का शरबत) — १ औंस

टिंक्चर बेलाडोना — २ ड्राम

सोल्यूशन आफ मारफाइन (अफीम के सत का अर्क) — १ ड्राम

एसेंस आफ पिपरमेंट — ४ ड्राम

क्लोरोफार्म वाटर — ५ औंस

मिलाकर इसमें से चार ड्राम की मात्रा में तीन २ घन्टे पीछे पिलावें। यदि कब्ज़ हो तो कैलोमल तीन या चार ग्रेन कालोसिंथ के साथ रात को सोते वक्त दें। यदि वमन होती हो तो मारफिया सोल्यूशन (अफीम के सत का अर्क) त्वचा में त्वचा की पिचकारी (हिपोडरमिक सिरिंज) द्वारा पहुंचावें। पेट की सूजन में अफीम $\frac{1}{4}$ ग्रेन, बिलाडोना का सत $\frac{1}{4}$ ग्रेन मिला कर गोली बना कर तीन २ घन्टे पीछे देवें। रोगिणी को साफ धुले वस्त्र पहिरा कर साफ बिस्तर पर लिटावें। भग में साफ कपड़ा या लिंट का टुकड़ा रक्खें लेकिन जब वह भींग जाय वा ख़राब हो जाय तो तुरत बदल दें। दूध गरम २, यदि निर्बलता हो तो "ब्रांडी" मिलाकर, तीन २ घन्टे पीछे उचित मात्रा में पिलावें। साबू दाना आदि भी देते रहें। स्वास्थ्य रक्षण के नियमों का परिपूर्ण पालन करना उचित है।

पाइमिया = सेप्टीसीमिया = साइक्रोमिया ।

सेप्टीसीमिया एरीसिपलिस की छूत लगने से होती है। किसी २ के मत से "विक्टोरिया" (सूक्ष्म कीट) के रुधिर में पहुँचने से, और किसी २ के मत से किसी फोड़े की पीप रुधिर में मिलने से, होती है। कभी यह रोग अपने आप और कभी चोट आदि लगने के पीछे देखा जाता है। एरीसिपेलस (सुर्ख बादा) की छूत से सेप्टीसीमिया और सेप्टीसीमिया की छूत से "एरीसिपेलस" होते देखा गया है। अस्तु तीनों का कारण और विष एक ही प्रकार होता है। पुराने ज़माने में जब कि घावों आदि की सफाई पर लोग विशेष ध्यान नहीं देते थे तब यह रोग बुरी भांति मनुष्यों में फैलते थे। किन्तु आज दिन इन बातों पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है। इससे ये रोग भी अब कम हमला करते हैं।

कारण—प्रसूत ज्वर और सेप्टीसीमिया में कुछ विशेष भेद नहीं है अर्थात् "सेप्टीसीमिया" प्रसूत ज्वर का अन्तिम लक्षण है जैसा कि प्रसूत ज्वर में वर्णन कर आए हैं। प्रसूत ज्वर के कारण में वर्णन कर आये हैं कि भग या गर्भाशय द्वारा विषैली वस्तु सोखी जाने से "प्यूरपरल फीवर" होता है, बस यही कारण सेप्टीसीमिया के भी हैं। जैसे एरीसिपेलस लाल बुखार आदि रोगों की छूत लगने से वह होता है यह भी उसी प्रकार की छूतों से उत्पन्न होता है। चोट आदि या घाव आदि के द्वारा विष रुधिर में प्रवेश करता है। सड़न का विष यदि खून में मिल जावे, या कोई फोड़े की पीप खून में मिल जावे या भग द्वारा सड़न लोहू में प्रवेश करे तो यह रोग प्रसूत ज्वर के अन्त की दशा की

भांति उत्पन्न होता है।

लक्षण—दिन में कई बार जाड़े से ज्वर, जिसकी गर्मी १०५ से १०७ १०८ दर्जे की होती है, चढ़ता है। सुबह गर्मी कम और शाम को अधिक हो जाती है। इसी प्रकार नाड़ी आरम्भ में कड़ी और गति में शीघ्र २ किन्तु अन्त में नर्म सूत सी और अप्रग्रथित होती है। मुख की रंगत फीकी घबराई हुई, त्वचा की रंगत मटीली या पीली होती है। शारीरिक और हार्दिक निर्बलता के कारण रोगिन सुस्त पड़ी रहती है। जीभ सूखी और भूरे रंग की होती है। सांस में मीठी गंध आती है। प्यास अधिक लगती है। जी मचलाता है और कभी वमन भी होती है। पश्चात् सारे शरीर के कभी ऊपरी और कभी भीतरी विभागों में पीप पड़ जाती है। शरीर पर जगह २ पीप से भरे हुये फोड़े निकलते हैं (जिनको पायमिक एबसिस कहते हैं)। दस्त लग जाते हैं, दस्तों में बुरी भांति की गंध आती है। मूत्र कम और उसमें "एलब्यूमिन" (एक लसदार पदार्थ) पाया जाता है। श्वास की गणना बढ़ जाती है। त्वचा, नस, पट्ठे और मांस आदि से रुधिर निकलता है, हृदय की दीवार, फेफड़ा और तिल्ली आदि भी लोहू उगलते हैं। भेजा फेफड़ा जिगर और तिल्ली किसी २ के कोषों में पीप (जैसा ऊपर लिख आये हैं) पड़ जाती है। अंत में मूर्छा या कनवलशन हो कर रोगी मर जाता है।

निदान—एरीसिपेलस और टाइफस, टाइफाइड ज्वरों और न्यूमोनिया से धोखा होता है किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि यह रोग प्रायः शस्त्रक्रिया (अपरेशन)

आदि के पीछे (जैसा बच्चा निकालते वक्त या कोई भाग काटते वक्त देखा जाता है) होता है। आरम्भ ही से इस के लक्षण भयानक होते हैं। फोड़े फुंसियों के निकलने से तो पूर्ण निदान हो जाता है।

परिणाम—बुरा है। सैकड़े पीछे ७५ मनुष्य एक ही सप्ताह में मर जाते हैं।

बचने का उपाय—एरीसिपेलिस (सुर्ख बादा) देखो।

सूचना—यह रोग न केवल जननहारियों ही में होता है किन्तु प्रत्येक स्त्री पुरुषों को प्रत्येक अवस्था में हो सकता है। हां, जननहारियों को यह विशेष होता है। इसी के फल से उन में प्रसूत ज्वर उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—एरीसिपेलस और प्रसूत ज्वर की भांति करें। निर्बलता के लिये स्टिम्युलेंट निकश्वर आदि दें। कुइनाइन अधिक मात्रा में खिलावें। सलफाइड या हाइपोसलफाइड आफ सोडा कुइनाइन के साथ दें। टानिक (बलकारक) औषधियां जैसे लोहा आदि भी देवें। स्वास्थ्य रक्षा के नियमों पर पूरा २ ध्यान रक्खें क्योंकि इन रोगों में सफाई प्रधान है।

पशुओं से मनुष्यों में होनेवाले छूतदार रोग।

—— o ——

ग्लैंडर्स। GLANDERS

यह रोग सुमदार जानवरों जैसे घोड़े, गधे, खच्चरों में होता है। यदि पशुओं से इस रोग की छूत मनुष्यों को लग जावे तो मनुष्यों को भी यह हो जाता है। इस प्रकार का विष

नाक की लुआबी झिल्ली (म्यूकस मेम्ब्रेन) पर होता है। और शरीर पर एक प्रकार के दाने निकल आते हैं।

कारण—जब कोई पशु उक्त रोग में ग्रसित हो और उस के नाक का पानी मनुष्य के शरीर पर लगे तो यह रोग मनुष्य को हो जा सकता है। यह रोग प्रायः सईसों और घोड़े के सवारी आदि को होता है। घोड़ा जब हिन-हिनाता है तो उस के नाक का पानी जिस जीव पर पड़े उसी को यह रोग हो जाता है[1]।

लक्षण-आरम्भिक-छूत लगने के तीन से आठ दिन के भीतर ज्वर होकर तमाम जोड़ों में दर्द उत्पन्न होता है। कमर, पीठ, और मस्तक में भी पीड़ा होती है। नाक की लुआबी झिल्ली सूज जाती और उस में सरसों की भांति दाने निकल आते हैं। दाने फूट २ कर घाव हो जाते हैं घावों से पतली दुर्गंधित पीव निकलती है। कभी २ लोहू मिली पीव निकलती है। नाक बंद हो जाती है। स्वास रोगी मुख से लेता है। सारे शरीर पर फुंसी और फोड़े निकल आते हैं। फुंसियों का आकार शीतला सा होता है उन के चारों ओर लाल घेरा भी पाया जाता है। किसी २ में पीव और किसी २ में सड़न पैदा हो जाती है। कभी २ फफोले पड़ जाते हैं। निर्बलता इतनी होती है कि रोगी करवट तक नहीं बदल सकता है। रात को बकता झकता है। कुछ लक्षण सेप्टीसीमिया के उदय होते हैं। प्रायः एक ही सप्ताह में रोगी परलोक सिधारता है।

---

[1] घोड़े के काट खाने से भी इस विष का असर लोहू में पहुंचता है।

लक्षण जीर्ण—जीर्ण की दशा कम पहुचने पाती है क्योंकि प्राय आरम्भिक दशाही में रोगी मर जाता है। यदि हो भी तो नाक से लोहू मिली पीप निकलती है। पसीने में दुर्गंध आती है। गोड़ सूज जाते हैं या उन में पीप पड़ जाती है। नाक का बांसा बैठ जाता है या गल कर गिर जाता है। शरीर सूख जाता है। किसी किसी में दस्त लग जाते हैं; किसी २ में दस्त और वमन दोनों होते हैं। निर्बलता के कारण रोगी धीरे २ कुत्तों की मौत मरता है।

फार्सी—FARCY.

इसमें और ग्लेंडर्स में केवल यही अंतर है कि यदि पशु की छूत मनुष्य की लुआबी झिल्ली पर लगे तो ग्लेंडर्स और जो शरीर में घुस कर शोषक गिलटियों (लिम्फेटिक ग्लेंड्स) और अन्य विभागों पर असर करे तो उसे "फारसी" कहते हैं।

कारण—घोड़ा काट खाय या किसी छिछली जगह से घोड़े का उक्त विष मनुष्य के शरीर में प्रवेश करे। यह प्रायः साईस और कोचवान आदि को होता है। सवारों को भी हो जाता है।

आरम्भिक लक्षण—जिस स्थान से विष प्रवेश करता है वहां के आस पास की गिलटियां सूज जाती हैं। भीतरी विभागों में पीप पड़ जाती है। जहां मांस और चर्बी अधिक होती है वहां सूजन और पीप पड़ जाती है। नाक से दुर्गंधित जल बहता है। ग्लेंडर्स की भांति सारे शरीर में दाने निकलते, या सड़न पैदा हो जाती है।

जीर्ण लक्षण—यह रोग उतना भयानक नहीं है जितना कि ग्लेंडर्स है। यदि इस रोग के साथ ग्लेंडर्स भी

शरीक हो जावे तो अवश्य परिणाम भयानक समझा जाता है। जीर्ण दशा में जहां से विष प्रवेश हुआ हो उस स्थान पर एक सड़ा हुआ घाव हो जाता है। पश्चात् सिर बगल छाती पीठ और सारे शरीर पर घाव हो जाते हैं। और निर्बलता बढ़ते २ रोगी मर जाता है।

इक्वाइनीया माइटिज़ Equinia Mitis

घोड़े के एक मुख्य रोग से यह रोग मनुष्यों को हो जाता है। घोड़े की एड़ी के पास जो सूजन होती है उसमें एक प्रकार का जल होता है वही जल यदि मनुष्य के शरीर पर लग जाय तो मनुष्य इस रोग में ग्रसित हो जाता है।

कारण—घोड़े की एड़ी की छूत लगना है।

लक्षण-जाड़े से ज्वर चढ़ता है। पीपदार दाने सारे शरीर पर निकलते हैं। सूखने पर खुरंड बन जाती है।

परिणाम-उपर्युक्त तीनों प्रकार के रोगों का परिणाम भयानक है। कभी कभी २ आराम होते देखा गया है।

रोग से बचने का उपाय—ग्लैंडर्स फार्सी और इक्वाइनिया माइटिज़ तीनों घोड़े से अधिक उत्पन्न होते हैं। अस्तु घोड़ों के नाक के जल से अपने हाथ और शरीर को बचावें कटहे घोड़े से या रोगी घोड़े से दूर रहें। रोगी घोड़े आदि से अन्य पशुओं को भी दूर रक्खें। साज आदि साफ रक्खें सवार लोग इसका ध्यान रक्खें। घोड़े की नाक ओंग पर न पड़े।

चिकित्सा-ग्लैंडर्स में तेज कास्टिक लोशन फुरेरी से नाक में लगावें। स्टिम्यूलेंट मिक्श्चर पीने को दें। किन्तु

एक्यूट (आरम्भिक) ग्लैंडर्स की कोई चिकित्सा नहीं है ।

फारसी में जहां घोड़े ने काटा हो वहां लोहा गर्म कर के या तेज़ कास्टिक की बत्ती से जलादें। घाव हो तो कार्बोलिक एसिड या मरक्यूरी लोशन (१-१०००) से खूब धोवें । संखिया, कुचला मिली औषधियां खाने को दें । या "पुटासियम आयोडाइड" १५ ग्रेन, लिकाकशन सिनकोना १ औंस में मिलाकर, दिन में तीन चार बार पिलावें । फोड़े हो तो चीर कर पीव निकाल दें। घावों को छूतनाशक जलों से साफ रक्खें। नाक में भी छूतनाशक जलों की पिचकारी लगावें । सफाई का ध्यान रक्खें । खाने को दूध शोरवा, यखनी, आदि उचित समय पर दें । जलवायु का ध्यान रक्खें । रोगी निर्बल न हो इस पर विशेष ध्यान रक्खें ।

मेलिग्नेन्ट पश्चूल[1] या शारबन ।

CHARBON

यह बड़ा भयानक छूतदार[2] रोग है। यह भेड़ बैल, घोड़े आदि जानवरों में अधिक होता है। कभी २ छूत लगने से मनुष्य भी इस से ग्रसित हो जाते हैं।

कारण और लक्षण-छूत का शरीर में प्रवेश करना, या रोगी पशु का मांस खाना। मक्खी और मच्छर रोगी पशुओं से विष लेकर प्राय मनुष्यों के ऊपर बैठ कर उन्हें रोगी बना देते हैं। विष प्राय खुले स्थानों जैसे मुख या ओठ द्वारा शरीर में प्रवेश करता है। जहां यह विष लगे वहां मच्छर के काटने के सदृश ददोड़ा पड़ जाता है। उक्त स्थान लाल चमकदार

१ यह रोग कसाइयों और मांसाहारियों को अधिक होता है ।

२ चरबन नामक रोग की छूत है ।

हो जाता है और उस पर दाने निकल आते हैं। खुजली और जलन अधिक होती है और खुजलाने से दाना टूट जाता है। मुख से राल टपकती है। त्वचा काली पड़ जाती है। मुख से दुर्गंध निकलती है। पसीना बहुत निकलता है। सूजा हुआ स्थान काला पड़ जाता है। पश्चात् "सेप्टीसीमिया" के लक्षण प्रगट होते हैं (देखो सेप्टीसीमिया)। आठ दस दिन में रोगी मर जाता है।

परिणाम—भयानक है।

बचने का उपाय—जानवरों के मांस समझ कर खावें अर्थात् रोगी भेड़ बकरी का मांस न खावें। मक्खी मच्छर आदि किसी खाने पीने की चीज पर न बैठें।

चिकित्सा—शीघ्र उस स्थान को जहां विष लगा हो काट डालें या "पोटाश फ्यूजा" से जला दें। आयोडिन का १/२ ग्रेन वाला सोल्यूशन त्वचा में त्वचा की पिचकारी द्वारा पहुंचावें। "क्लोराइड आफ पोटाश सोल्यूशन" पानी के स्थान में पीने को दें।

सलफाइड आफ सोडा	$\frac{1}{2}$ ड्राम
,, ,, मेगनेशिया	२० ग्रेन
इनफ्यूजन क्वासिया	२$\frac{1}{2}$ औंस

मिला कर ऐसी एक मात्रा चार २ घन्टे पीछे पिलावे।

निर्बलता में स्टिम्यूलेंट मिकश्चर १ औंस की मात्रा में प्रत्येक चार २ घन्टे पीछे दें। आरोग्य होने पर शराब, कुनैन, और लोहा मिली औषधियां दें। वायुदार घर में रोगी को रक्खें, हलकी पाचक पथ्य दें।

हैड्रोफोबिया[1]-रेबीज-HYDROPHOBIA OR RABIES
हडकवाय।

यह रोग दो प्रकार का होता है, एक फाल्स हैड्रोफोबिया जिसमें शक के कारण झूठे लक्षण उदय होते हैं। यह प्राय वहमी मनुष्यों में पाया जाता है।

दूसरा ट्रू हैड्रोफोबिया—यह कुत्ते गीदड़ और बिल्लियों के काटने से उत्पन्न होता है। इन जानवरों में एक रोग जिसे "रेबीज" कहते हैं उत्पन्न होता है। कुत्तों में प्राय यह रोग गर्मी और वर्षा के आरम्भ में उत्पन्न होता है। कुत्ते इस रोग से पागल हो जाते हैं। इस मर्ज़ के कुत्ते प्राय चिल्लाने और काटने दौड़ते हैं। कोई २ चुपचाप पड़े रहते हैं। कुत्तों की दशा दो दर्जों में वर्णन करेंगे।

१ दर्जा-इस दर्जे में कुत्ता चुपचाप दुम लपेटे पड़ा रहता है। देखने से उसका चेहरा घबड़ाया हुआ लगता है।

२ दर्जा-इस दर्जे में बिना किसी कारण के कुत्ता काटने को दौड़ता है और उसकी बुद्धि बिगड़ जाती है। वह होश में नहीं रहता। बोली बदल जाती है। जिसके कारण बुद्धिविकार, श्वासकष्ट, और निगलने में कष्ट होता है। देखने सुनने और समझने में भी अन्तर आ जाता है। मस्तक के आठवें जोड़े स्नायु (ईसाफेजियल नाल) पर ऐसा इस रोग का असर पड़ता है कि रोगी पानी का नाम सुनते ही कांपने लगता है, घिग्घी बंध जाती है। श्वास में कष्ट होने लगता है। पानी का नाम अथवा दर्शन नहीं सुनना और करना चाहता।

---

१ हैड्रो का अर्थ पानी, "फोबिया" अर्थात् डरना।

लक्षण-शारीरिक-आदि में ज्वर और मस्तक में पीड़ा, मिजाज़ में चिड़चिड़ापन, रात में भाति २ के स्वप्न होते हैं। पीछे मुख्य लक्षण उदय होते हैं अर्थात् जिस समय रोगी को प्यास लगती है तो पानी पीने को मागता है किन्तु जहां पानी का दर्शन किया कि एकायक एक प्रकार की ऐंठन (स्पाज्म) हाथ और मुख में उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण रोगी एक घूंट जल कंठ में नहीं डाल सकता। पीछे पानी प्यास रहते भी नहीं मागता। पानी से एक प्रकार घृणा करने लगता है। जिस समय पानी सामने देखता है उस समय कंठ के पट्ठे तन जाते हैं। श्वांस बाहर की बाहर और भीतर की भीतर ही रह जाती है। मुख, दम घुटने का सा भयानक हो जाता है। हाथ ऐसा कंपाने लगता है जैसे मृगी वाला रोगी कंपाता है। लुआब दार बलगम (कफ) मुख में भर आता है। जिसके निकालने को रोगी "खो "खों" का शब्द मुख से करता है। इसी दशा को अर्थात् "खो" २ को मूर्ख लोग कुत्ते की भांति भोंकना समझते हैं। रोगी बेचैनी के कारण भागता और काटने को दौड़ता है। पश्चात् नीचे के धड़ के फालिज (लकवा) होने से घुटने के बल चलता है। इसी दशा को कुत्ते के समान चलना कहते हैं। नींद शाम को नहीं आती। प्यास के मारे (यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो) कंठ सूख कर कांटा हो जाता है। पेशाब (मूत्र) आदि या तो बार २ या एक बूंद भी नहीं होता। इसके पीछे रोगी बकने झकने भागने और भोंकने लगता है। इस दशा में यदि कोई सामने पड़ जाय तो काट भी खाता है। अंत में निर्बल

होकर या प्यास की कठिनता में अचेत होकर मर जाता है। तीव्र रोग से एक सप्ताह के भीतर मृत्यु होती है। *

निदान-इस रोग से और टिटेनस (एक प्रकार की ऐंठन वाला रोग) से धोखा हो सकता है। इसलिए निदान का नक्शा लिखा जाता है।

हैड्रोफोबिया	टिटेनस ।
१ आदि ही से चेहरा भया घना और परेशान होता है।	१ चेहरा हसने की भांति कुछ दुखी और आखों में कुछ अन्तर नहीं होता।
२ आदि ही से बौरा जाता है।	२ बौराता नहीं, बुद्धि ठीक रहती है।
३ ऐंठन बराबर अंत तक होती है।	३ शरीर अकड़ कर बेडौल हो जाता है।
४ मुह से झाग निकलती है, कुत्तों की भांति "हुक" २ करता है। पानी के नाम से कांपता है।	४ इसमें यह दशा नहीं पाई जाती।

परिणाम-बड़ा भयानक तथा असाध्य है।

रोग से बचने का उपाय। कुत्तों की दशा जैसी ऊपर वर्णन कर आये हैं उस प्रकार के कुत्तों को देखते ही मरवा देना अच्छा है। गीदड़ आदि से बचाना भगवान के अधीन है। क्योंकि यह एक दैवी घटना है। कौन जानता

* स्थानिक लक्षण, जहां कुत्ते ने काटा है वहां घाव में कभी २ सूजन आदि होती है और साधारण घावों की भांति घाव अच्छा हो जाता है।

की चिकित्सा उक्त विधि से की जाती है। आशा है कि उक्त कार्यालय से लोग लाभ उठावेंगे।

विनिरियल डिजीज।

छूतवाले जननेन्द्रिय के रोग।

प्रगट हो कि इस भाग में केवल दो रोग एक गनोरिया Gonorrhoa (सुजाक=प्रमेह) और दूसरा सिफलिस (आतिशक = उपदंश) Syphlis छूतदार पाए जाते हैं।

(१) सुजाक। जिसे हिन्दुस्थानी प्रमेह[1] और अंगरेज लोग "गोनोरिया" कहते हैं।

निदान। छूतदार पीप आदि लगने के कारण लिङ्गेन्द्रिय के भीतर सूजन हो जाती है। जिस को डाक्टरी में "स्पेसीफिक यूरेथ्राइटिस्" या "गोनोरिया" और साधारण अंगरेजी में "रेनिंग" या "क्लाप" कहते हैं। और जब इस प्रकार की सूजन स्त्रियों के भग के भीतर हो जावे तो "स्पेसीफिक वलवाइटिस" और "विजैनाइटिस" कहते हैं।

मूल कारण एक खास ज़हर जिसे माद्दे[2] का मर्द के लिङ्ग और औरत के भग द्वारा रुधिर में प्रवेश होना है। किन्तु पुरुष और स्त्री के सुजाक में भेद है इस लिए पृथक २ वर्णन करेंगे।

पुरुषों का सुजाक।

कारण। सुजाकी स्त्री से प्रसंग करने या वह कपड़ा, जिस में सुजाक का विष लगा हुआ है, व्यवहार करने से, यह रोग उत्पन्न होता है। कभी २ जहाँ सुजाकी ने पेशाब

---

१ २० प्रकार के प्रमेहों में से एक यह भी है।

२ पूत।

है कि कब और किस समय कौन जानवर काट खायेगा। सो भी सचेत रहना चाहिए । रोगी से दूर रहें। उसकी राल या कफ से भी अपने को बचावें ।

चिकित्सा–रोग होने पर किसी प्रकार की चिकित्सा काम नहीं देती । लाखों उपाय और औषधियां इस रोग में की गई किन्तु सब निष्फल ठहरी । त्वचा में त्वचा की पिचकारी (हैपोडरमिक सिरिञ) द्वारा "एट्रोपिया", "मारफिया" "क्यूरारा" आदि के अर्कों की पिचकारी देते हैं किन्तु मैंने इस विधि से भी लाभ होते नहीं देखा। सारांश यह कि इस रोग की कोई औषधि अब तक नहीं प्राप्त हुई ।

कुत्ते के काटे हुए घाव की स्थानिक चिकित्सा-यही चिकित्सा मुख्य है । प्रथम जहां कुत्ते ने काटा हो उस स्थान को लोहे को गर्म करके जलादें या उसे काट डालें । अथवा 'पोटासा फ्यूजा" से खूब जलादें । जिससे सूजन हो कर पीप पड़े । पीप पड़ने पर चीरा लगावें जिससे कि विष पीप द्वारा निकल जावे ।

आज कल "विषस्य विषमौषधम्" इस कहावत का खूब प्रचार है । प्लेग, शीतला आदि के लिये इसी का अनुकरण प्रचलित किया गया है । अर्थात् रोग का अंश ही रोग से बचाने के लिये रोगी के शरीर में पहुंचाते हैं। अस्तु इस रोग का अंश भी इससे बचाने के लिये शरीर में पहुंचाते हैं । इस कार्य के लिये सरकार ने एक कार्यालय[1] कसौली (पंजाब) में खोला है । यहां कुत्ते गीदड़ आदि के काटे हुए रोगियों

---

१ पास्चुर इन्स्टीट्यूट ।

की चिकित्सा उक्त विधि से की जाती है। आशा है कि उक्त कार्यालय से लोग लाभ उठावेंगे।

विनिरियल डिजीज।

छूतवाले जननेन्द्रिय के रोग।

प्रगट हो कि इस भाग में केवल दो रोग एक गनोरिया Gonorrhoa (सुजाक=प्रमेह) और दूसरा सिफलिस (आतिशक = उपदंश) Syphlis छूतदार पाए जाते हैं।

(१) सुजाक। जिसे हिन्दुस्थानी प्रमेह[1] और अंगरेज लोग "गोनोरिया" कहते हैं।

निदान। छूतदार पीप आदि लगने के कारण लिङ्गेन्द्रिय के भीतर सूजन हो जाती है। जिस को डाक्टरी में "स्पेसीफिक युरेथ्राइटिस्" या "गोनोरिया" और साधारण अंगरेज़ी में "रेनिंग" या "क्लाप" कहते हैं। और जब इस प्रकार की सूजन स्त्रियों के भग के भीतर हो जावे तो "स्पेसीफि क वलवाइटिस" और "विजेनाइटिस" कहते हैं।

मूल कारण एक खास ज़हर जिसे माद्दे[2] का मर्द के लिङ्ग और औरत के भग द्वारा रुधिर में प्रवेश होना है। किन्तु पुरुष और स्त्री के सुजाक में भेद है इस लिए पृथक २ वर्णन करेंगे।

पुरुषों का सुजाक।

कारण। सुजाकी स्त्री से प्रसंग करने या वह कपड़ा, जिस में सुजाक का विष लगा हुआ है, व्यवहार करने से, यह रोग उत्पन्न होता है। कभी २ जहाँ सुजाकी ने पेशाब

१ २० प्रकार के प्रमेहों में से एक यह भी है।
२ मूल।

किया हो, उस पर पेशाब करने से यदि लिङ्ग पर छींटे पड़ जाय तो भी हो जाता है।।

जब इस जहर का प्रभाव होता है तो लिङ्ग के मुंह और किनारों के नीचे सूजन पैदा हो जाती है। और वहां की बलगमी[1] झिल्ली लाल और उस से पीप निकलने लगता है। इस के उपरान्त यह सूजन धीरे २ ऊपर को फैलती है और लिङ्ग के कुल भागों को घेर कर मसाने (मूत्राशय) तक और कभी यूरेटर नाली (मूत्रनल) से हो कर गुर्दे तक पहुंच कर रोग गुर्दा उत्पन्न कर देती है। और जब कि रोग पुराना पड़ जाता है तो सूजन के माद्दे के द्वारा झूठा अस्तर उत्पन्न हो कर लिङ्ग की रिसने वाली झिल्ली (म्यूकस मेम्ब्रेन) मोटी हो जाती है। और लिङ्ग का रास्ता तंग हो जाता है। जिस को "स्ट्रिक्चर" Stricture अर्थात्-सङ्कीर्णता कहते हैं। कभी घाव भी हो जाते हैं।

प्रगट हो कि सुजाक नवीनता[2] तथा प्राचीनता[3] के अनुसार दो प्रकार का होता है। जिस का कारण तथा मूल एक ही भांति का है। केवल लक्षण में फर्क है, अस्तु पृथक् २ वर्णन करेंगे।

लक्षण सुजाक नवीन। यह दो प्रकार का है १ स्थानिक २ शारीरिक।

१ स्थानिक। यह तीन दर्जों में प्रगट होते हैं।

१ दर्जा। छूत लगने के समय से जो गिनती में चार

---

१ बलगमी पानी जिस झिल्ली से रिसता हो।

२ नया।

३ पुराना।

दिन से दस दिन है। इस समय लिंग में खुजली, बे आरामी, तथा मूत्र करते समय जलन जान पड़ती है।

२ दर्जा। इस समय सूजन के लक्षण उत्पन्न होते हैं, अर्थात लिङ्ग के छेद के किनारे बाहर को लौटे हुए, लिङ्ग के सिर पर सूजन तथा पीब पतली, दूध के रंग की निकलती है, और जलन, तथा बेचैनी अधिक हो जाती है। मूत्र की इच्छा बार २ और दु ख के साथ होती है। लिङ्ग का मल कठोर ज्ञात होता है।

३ दर्जा। इस दर्जे में उपरोक्त लक्षणों में कमी होती है, और पीब दुर्गंधित पीले रंग की निकलने लगती है। यदि वह कपड़े पर लग जावे तो पीला दाग पड़ जाता है। यह पीब आरम्भ से अन्त तक छूतदार होती है। और इसमें दो प्रकार के कीड़े "माइक्रोकोकाई" और "बाईब्रीईस" दूरबीन से देखे गए हैं। इस दर्जे में विषय की इच्छा बार २ होने से लिङ्ग व उसके सिर में कुछ टेढ़ा पन आजाता है। इस दशा को "कार्डी" कहते हैं। कारण इस Chordeo का यह है कि लिंग में सूजन होने से शोषक भाग (स्पंजी हिस्सा) में सोणितो माद्दा रिसता है, अस्तु रुधिर का जमाव सब स्थानों पर एकसा नहीं हो सकता और विषय की इच्छा बार २ हुआ करती है इस कारण रोगी को नींद नहीं आती। कभी कैपलरी[1] फट जाने से रुधिरस्राव हो जाता है। दूसरा व तीसरा दर्जा दो हफ्ते से तीन तक रहते हैं, उपरान्त चौथे दर्जे अर्थात् "सुज़ाक कठिन" में, बदल जाते हैं।

[1] पतली २ खून की नालियों को कहते हैं।

आन्तरिक। पहिले दर्जे में कोई दुख नहीं जान पड़ता, केवल आलस्य इत्यादि देखा गया है। दूसरे दर्जे में कठिन [1]सूजनी ज्वर होता है जो रोगी की अवस्थानुसार कम या अधिक हुआ करता है। दुर्बलता और जी बिगाड़ उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण,-सुजाक कठिन। इस को "ग्लीट" भी कहते हैं, यह Gleet भी दो प्रकार का है, "प्रत्यक्ष," व "आन्तरिक"।

प्रत्यक्ष। मूत्र करते समय एक प्रकार का क्लेश जान पड़ता है। बलगमी रतूबत रिसने के कारण लिंग का मुख बंद रहता है, जो मूत्र करते समय धार के जोर से खुल जाया करता है। पीप गाढ़ी साफ लसदार निकलती है, कभी पीप के स्थान में छिछड़े निकलते हैं। यदि उचित चिकित्सा न की जावे, अथवा कुपथ्य तथा विषय आदि होते रहें तो यह अधिक दिन तक बना रहता है पीछे लिङ्ग में-स्ट्रिक्चर (संकीर्णता) हो जाती है।

आन्तरिक। दिन पर दिन दुर्बलता बढ़ती जाती है, अन्यान्य सहायक रोगों के कारण स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) में भी विघ्न उत्पन्न होता है।

परिणाम व अन्त। यह रोग बलवान मनुष्यों में प्रथम २ अत्यन्त ही कठिन होता है। किन्तु उचित चिकित्सा से पूर्ण आरोग्य हो जाता है। और कभी सरल से कठिन में बदल कर बहुत दिन तक बना रहता है। किन्तु यह रोग कुपथ्य तथा स्त्रीप्रसङ्गादि से बदल बदल जाता

१ इनफ्लामेटोरी फीवर।

है, अर्थात नये से पुराना पुराने से नया हो जाता है। ऐसे समय में लक्षण अधिक जोर नहीं पकड़ते, यदि रोगी बलवान् तथा चिकित्सा उचित की जावे तो दूर हो जाता है। नहीं तो अधिक समय तक बना रह कर भांति २ की खराबियां अर्थात् सगी इत्यादि पैदा करता है। (जैसा कि आगे सयोग तथा परिणाम में वर्णन करेंगे)। रोगी को जीवन के लाले पड़ जाते हैं।

निदान। लिंग की सादी सूजन से धोखा हो सकता है, किन्तु सुजाक में पीप चमकदार लसदार तथा छूतदार निकलती है और लक्षण तेज होते हैं। और यह साधारण चिकित्सा से दूर नहीं होता इस के लिए मुख्य चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

चिकित्सा। दो प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए। (१) नियमानुसार (रैशनल ट्रीटमेंट[1]) चिकित्सा (२) आतसाई (एम्पेरीकेल[2]) चिकित्सा।

(१) नियमानुसार चिकित्सा। यह दो विधि से की जाती है एबारटिव, व क्यूरेटिव (पूर्ण)।

एबारटिव चिकित्सा में, छूत को कम कर के बढ़ने से रोकना पड़ता है, जैसे तेज कास्टिक (जलाने वाली) औषधी पिचकारी द्वारा लिंग में पहुंचाना। किन्तु इस विधि से कठिन सूजन उत्पन्न होने का भय है। अत यह सर्व साधारण की रुचि के प्रतिकूल है। कोनेन का घोल्यूशन (अर्क) व "नाइमर" साहब का टानिक एसिड लोशन

1 Rational treatment.
2 Empirical treatment.

पानी में मिला कर पिचकारी के द्वारा लिंग में पहुंचाना लाभकारी है।

क्यूरेटिव (पूर्ण) यह स्थानिक शारीरिक दो प्रकार से की जाती है।

स्थानिक। लिंग की स्वच्छता (सफाई) पर विशेष ध्यान रखना उचित है। पहिले व दूसरे दर्जे में लिंग में गरम पानी की पिचकारी देवें। और जब पीव निकलने लगे उस समय विषहर औषधियों का व्यवहार लाभदायक है। यथा कार्बोलिक लोशन, आयडोफार्म, लुआब गोंद में मिला कर, या परमिगनेट आफ पुटास, और क्लोराइड आफ जिंक लोशन, प्रत्येक एक २ ग्रेन दस औंस के हिसाब से तैयार करके पिचकारी लगावें, परन्तु बहाव को रोकने वाली औषधि (एस्ट्रेंजेंट मेडीसिन[1]) का व्यवहार न करना चाहिए। हां तीसरा दर्जे में जब पीव अधिक निकलती हो तो बहाव को रोकने वाली औषधिया काम में ला सकते हैं। इस काम के लिए, एलम जिंक, शुगर आफ लेड, व टानिक, एसिड लोशन, आदि पिचकारी द्वारा लिंग में पहुंचाना लाभदायक है। पीड़ा की अधिकता में पेडू पर सेंक करना और दलाडोना प्लास्टर और जोंक लगाना लाभकारी है। या ऐसी औषधि जिस से पीड़ा कम हो, अर्थात् लाइकर मारफिया, उपरोक्त औषधियों में मिला कर पिचकारी करें। कभी टिंकचर आफ आयोडिन भी लाभदायक होता है।

पिचकारी का व्यवहार। रोगी को चौकी, या चबूतरे, अथवा मोढा, कुरसी, या तख्ते के किनारे पर बैठ

---

1 Astringent Medicine.

लटका कर बैठावें। और बाएं हाथ की उंगलियों से लिंग की जड़ को पकड़ कर ठीक रखें इस लिए कि औषधि जो भीतर जाय वह मूत्राशय (मसाना) में न चली जाय। और बाएं हाथ में शीशा, या जस्ता, की पिचकारी जिस में दो ड्राम तक औषधि भरी हो लेकर पिचकारी के मुंह को लिंग, के मुंह में घुसेड़ कर धीरे २ औषधी का प्रवेश करें। और लिंग के सिर को दबा रक्खें, जिस से औषधी बाहर न निकल जावे। दो मिनिट तक रोक रखें उपरान्त निकाल दें।

सूचना—पिचकारी लगाने के पहिले रोगी को पेशाब कर लेना चाहिए। यदि मूत्र की इच्छा न हो तो प्रथम गरम पानी से पिचकारी द्वारा लिंग को धो लें, जिससे रोगिल स्थान साफ हो जावे, और औषधि का असर अच्छी तरह, हो। बड़ी पिचकारी से अधिक परिमाण में औषधि भर कर न प्रवेश करें। पिचकारी लगाने के उपरान्त अपने हाथों को अच्छी तरह से धो डालें, नहीं तो नेत्र आदि में लग जाने पर "प्रोलेन्ट अफथलमिया[1]" का भय है। यदि कोई दूसरा मनुष्य इस विधि को करै तो वह भी इस सूचना पर ध्यान रक्खे। आवश्यकतानुसार इस विधि को तीन चार बार करें। एक ही परिमाण अथवा एक ही औषधि का अधिक दिवस व्यवहार हानिकारक है। किन्तु औषधि की मात्रा बढ़ाते जावें, और आवश्यकतानुसार औषधी भी बदलते जावें।

शारीरिक चिकित्सा। रोगी को परिश्रम न करने दें। पथ्य सादी बिना मसाले की देना उचित है। गर्म औषधियों से परहेज करें, और दवाई भी लुआबदार जैसे बिही

१ Prolent ophthalmia.

दाना, आश जौ, व अलसी[२] का खेसादा आदि दें। खारी औषधियां अधिक लाभदायक हैं, सोडावाटर, कार्बोनेट आफ पुटैस आदि देना उचित है। यदि ज्वर हो तो सूजनी ज्वर की चिकित्सा करनी चाहिए। पीड़ा आदि में अफीम या उस का सत (मारफिया) लाभदायक है। जो रोग इसके सम्बन्ध से उत्पन्न हो उनकी यथोचित चिकित्सा करें। तीसरे दर्जे में खारी औषधियां दें और स्वास्थ्यरक्षण के नियमों का ध्यान रक्खें।

अातताई चिकित्सा। कोपेवा, तेलकुपेवा, और तेल कबाब चीनी, तेल चंदन के साथ पुटास का सोल्यूशन, और नाइट्रिक ईथर और टिंक्चर हाइसाइमस मिला कर पिलावें।

शोरा और कबाबचीनी मिलाकर भी खिला सकते हैं, किन्तु ये दवाएं चौथे दर्जे में यानी "कठिन" में खिलाना लाभदायक है। प्राचीन इलाज बिना किसी योग्य वैद्य के करना मेरी समझ में अच्छा नहीं होता, तौभी प्रत्येक बात पर ध्यान रखने से सर्व साधारण को बिना वैद्य भी कुछ लाभ पहुंच सकता है। एक अंगरेजी नुसखा जो आजमाया हुआ है यहां लिखते हैं।

कार्बोनेट आफ पुटैस	१० ग्रेन
आइल कोपेवा	५ बूंद
नाइट्रिक ईथर	१५ बूंद
लाइकर पुटासी	१० बूंद

---

२ तीसी को उबाल के काम में।

आइल सेंटल (चंदन)	१० बूंद
टिंकचर हाइसाइमस	१० बूंद
पानी	१ औंस

यह एक खुराक तरुण पुरुष के लिए है, ऐसी दिन में ४ खुराक देने से कुछ दिन में लाभ होसकता है । तौभी वैद्य की अनुमति लेनाही श्रेष्ठ होगा ।

प्राचीन सुजाक की शारीरिक चिकित्सा । यही चिकित्सा मुख्य है, क्योंकि इस में रोगी दुर्बल हो जाता है । और मटकलपक्ष चिकित्सा जिसका ऊपर वर्णन कर आए हैं अत्यन्त लाभदायक होती है । यदि रोगी कुछ बलवान है तो बाइक्लोराइड आफ मरकरी (दार चिकना) डिकाक्शन (क्वाथ) सिकोना के साथ दें और निर्बलता में, बलदायक (टानिक[1]) रक्तशोधक (आल्ट्रेटिव[2]) अर्थात् लोहे मिश्रित औषधिया वा आइडीन, कोनेन, मछली का तेल, वा शोरा, नमक, गंधक, आदि का तेजाब आदि देना उचित है । जब बहुत पुराना पड़ गया हो तो फिटकरी (एलम) टिंक्चर काइनो, टिंक्चर कैंथेरेडिज्, आदि देना लाभदायक है । जब आरोग्य होने को होता है तो पीव कम होती जाती है, और कुछ दिन में आराम होजाता है । किन्तु पथ्य का प्रबंध मुख्य है, पथ्य सादी बिना मसाले की दें । लाल मिर्च और मदिरादि से दूर रहैं ।मूत्र लाने वाले पथ्य जैसे चांवल, बर्फ आदि दें । विषय से बचते रहैं ।

प्राचीन सुजाक की स्थानिक चिकित्सा । लिंग को

---

1 Tonic

2 Alterative

साफ रक्खें। बहाव को रोकनेवाली औषधियां जैसे टानिक एसिड, टिंक्चर स्टील, परिमिगनेट आफ पुटैस, आदि लाभदायक हैं। जब किसी विधि से सुजाक के घाव को लाभ न हो तो बूजी[1] के द्वारा कास्टिक (जलाने वाली) औषधी घाव पर लगाने से और तगी (स्ट्रिक्चर[2]) की चिकित्सा करने से शीघ्र लाभ होता है।

बचने का उपाय—इस रोग से बचने का सरल उपाय यही है कि ऐसे रोगों के स्पर्शास्पर्श से जहां तक हो सके बचें, रोगी के कपड़े लत्ते अथवा उसके हाथ की छुई हुई वस्तुओं से दूर रहने ही में मगल है। ऐसे रोगी के पेशाब पर पेशाब भी न करें। और न ऐसों की दी औषधि का उपयोग करें, क्योंकि इस रोग के फल से बड़े २ भयकर अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं जिनको आगे लिखेंगे, अत एव इसकी चिकित्सा भी बड़ी सावधानी से करनी चाहिए।

Complication of Gonorrhoa

सुजाक के फल से उत्पन्न रोग। इसके फल से कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते देखे गए हैं।

(१) सूजन। जिसमें एपीडिडमाईटिस[3] (Apidedmitis) आरकाइटिस[4] (Architis) प्रासटाइटिस[5] (Pristoitis) सिसटाइटिस[6] (Cistitis) बेलानाइटिस[7] (Beilanitis पासथाइटिस[8] (Pasthaitis) कभी निफ्राइटिस[9] (Nifritis) पाए जाते हैं।

१ धातु सलाई ४ अंडकोष की सूजन ८ लिंग की सूजन
२ Stricture ५ गांठों की सूजन ९ गुर्दे की सूजन
६ मूत्राशय की सूजन १० रक्त बहना
३ पेडू की सूजन ७ लिंगके चीस की सूजन

(२) पीप पड़ने वाले रोग। इसमें लिङ्ग के किसी भाग पर फोड़ा होजाता है।

(३) रक्तस्रावी रोग। (हैमरेजिक)-यूरेथ्रल हेमरिज (लिंग का रक्तस्राव)।

(४) फंकशनेल। इर्रीटेबिलिटी आफ ब्लेडर,[१] (मूत्राशय का खराब) कार्डी,[२] (बिना इच्छा ही के लिंग की कठोरता) रिटेंशन आफ यूरीन[३] (मूत्र का बूंद २ टपकना) फाइमोसिस,[४] (लिंग के सिर पर के चमड़े का छुट जाना वा तंग हो जाना) पैराफाइमोसिस[५] (लिंग के चमड़े का ऊपर चढ़ जाना।

(५) कन्टेजियस (छूतदार) अर्थात छूत लगने से आंख में दाने दार फुंसियां पड़ जाती हैं जिस को कन्टेजियस प्रोलेंट अफथलमिया[६] कहते हैं।

(६) सिम्पेथेटिक। रानों की गिलटियों का सूजना जिस को सिम्पेथेटिक ब्यूबो[७] (बद) कहते हैं।

फल।

स्ट्रिकचर, (तंगी) स्ट्रेलिटी, (बध्या) इम्पोटेंसी, (नपुंसकता) लिंग पर, मस्से हो जाते हैं। मासे वैद्य गठिया आख के रोग, और चर्म्म रोग भी होना बतलाते हैं। सुजाक के फल से उत्पन्न नाना प्रकार के रोगों का वर्णन न करके यहां केवल मुख्य २ रोगो का वर्णन सक्षेप में करेंगे।

---

१ Irritability of bladder
२ Chordee.
३ Retention of urine.
४ Phymosis.
५ Peraphymosis.
६ Prolent ophthalmia.
७ Sympathetic Bubo

होने लगती है जिस के कारण आंख बद रहती है। आंख की सफेदी पर घाव हो जाता है। यदि सावधानी न की जाय तो दूसरी भी ग्रसित हो जाती है। कभी यह सूजन बढ़ कर आंख ही को ले डालती है।

चिकित्सा। सफाई का खूब ध्यान रक्खें। आंख को गर्म जल से ३ या ४ बार धो दिया करें। लेकिन ध्यान रक्खें कि पानी बह कर दूसरी आंख की ओर न जावे। जब कीचड़ अधिक निकलती हो तो तेज कास्टिक लोशन (एक ग्राम एक औंस वा दो ग्राम एक औस) इस विधि से लगावें कि केवल पपोटे तथा किनारे की लाल झिल्ली (कजकूइवा[1]) पर लगे, डेले की सफेदी पर न लगने पावे। लगाने के उपरान्त पानी से धो डालें। यह विधि दिन में एक वा दो बार करनी चाहिए। फिर हलका कास्टिक लोशन (पाच ग्रेन एक औस वाला) टपका दिया करें। किन्तु ध्यान रहे कि डेले की सफेदी जिस को कार्निया कहते हैं न बिगड़ी हो। पोस्ते की डोडी से सेंक करना वा बलाडोना का लेप लगाना भी उचित है।

यदि डेले का श्वेत भाग भी रोगग्रसित हो तो एट्रोपिन atropin लोशन का व्यवहार करें। यदि इन विधियों से कुछ आराम जान पड़े तो कास्टिक वा एलम जिक लोशन (दो ग्रेन एक औस वाला) डाला करें। कनपटी पर जोंकें लगाना भी अच्छा है।

सूचना। इस रोग में चकाचौंधी अधिक होती है। अस्तु आख देखने के लिए ज़ोर से न खोलें क्योंकि, श्वेत भाग के फट जाने का बड़ा भय है। इस रोग का कीटाणु

---

१ आंख की सफेदी के चतुर्दिक् जो लाल झिल्ली है।

भयङ्कर छूतदार है, अस्तु रोगी को दूसरी निरोगी तथा अपनी आख को बचाना आवश्यक है।

सुजाक जनाना (स्त्रियो का)

कारण तथा लक्षणादि सब पुरुषो के समान ही हैं, केवल अन्तर है तो इतना ही है कि स्त्रियों में भग वा उस के किनारे रोगग्रसित होते हैं। कभी २ गर्भाशय तक रोग ग्रसित हो जाता है। पीप भग से निकलती है। इस रोग के फल से पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मेटराइटिस (metritis) भग की सूजन या ओवेरी (overetis) वा फिलोपियन ट्यूब की सूजन, कभी पिटोनाइटिस और सब-पिलविक सेल्युलाइटिस (Subpelvic Cellutites) हो जाता है।

फल—सूजन के बाद[1] के उत्पन्न होने से भग तथा गर्भाशय[2] को छेद तग हो जाता है। और प्राय भग के दोनो किनारे आपस में जुट जाते हैं। जब तक भग अथवा गर्भाशय से पीप निकलती रहती है, सन्तान नहीं पैदा होती। यह एक मुख्य कारण बच्चा होने का है।

निदान। अन्यान्य भग रोगों में भी भग से पीप निकलती है अस्तु सुजाक से धोका हो सकता है।

यदि विषय के उपरान्त सूजन जलन आदि उत्पन्न हों, और पीब अधिक मात्रा में पीले रग की निकलती हो अथवा पीब में छूतका असर पाया जावे और साधारण चिकित्सा से लाभ न हो, तो निश्चय सुजाक है।

इलाज। वैसा ही है जैसा पुरुषों के सुजाक में वर्णन कर आए हैं।

---

१ विष

२ बच्चेदानी

स्थानिक चिकित्सा । इसमें बड़ी लाभदायक है । अर्थात् दवाओं की पिचकारी भग में लगाना चाहिए । घाव हो तो कास्टिक, या टेनीक एसिड ग्लीसरीन मिलाकर लगावें । शारीरिक चिकित्सा पुरुषों की भांति करें ।

साफ्ट शैंकर SOFT CHANCRE.

इस को फारसी शंकर या नर्म घाव उपदंश भी कहते हैं।

परिभाषा । यह एक प्रकार का नर्म घाव है जो लिंगेन्द्रिय पर स्त्रीप्रसंग के समय एक छूत के प्रवेश होने से उत्पन्न होता है । यद्यपि घाव के साथ किसी प्रकार की शारीरिक शिकायत इस में नहीं उत्पन्न होती इस लिए इस को "नन इन्फेक्टिङ् सोर" Non infecting sore कहते हैं । इस के घाव के किनारे नरम होते हैं इसी लिए इसे "साफ्ट शैंकर" कहते हैं ।

मूल कारण । एक मुख्य छूत के प्रवेश होने के कारण तीन दिन से दस दिन के भीतर स्थानिक प्रभाव प्रगट होता है । किन्तु किसी प्रकार की शारीरिक शिकायत नहीं होती ।

लक्षण—घाव तीन प्रकार से होता है । या तो प्रसंग के समय घूंघट छिल जाता है या फट जाता है । या छूत का विष लग कर फुंसी निकल आती है । जिस को "विनिरियल पास्चल" अर्थात् आतशकी चेचक कहते हैं । और यह फुंसी पनपने से कुछ कच्ची और स्वच्छ जल से पूर्ण होती है । उपरान्त जल पीव हो जाता है । और फुंसी के चतुर्दिक् एक लाल वृत्त उत्पन्न हो जाता है । पश्चात् फुंसी फट कर पीव निकलने लगती है । यह पीव शरीर के जिस

भाग पर लग जाती है वहां भी उसी प्रकार फुन्सी या घाव उत्पन्न हो जाते हैं। यह दशा उपदंश (आतशक) के कठोर घाव में नहीं पाई जाती। यही कारण है कि नर्म प्रकार का घाव कई स्थानों पर पाया जाता है। अधिक कर के लिंग के घूंघट के भीतर या ऊपर, कभी कभी अंड-कोश पर या लगाम के ऊपर, और औरतों के भग में या गर्भाशय के भीतर, पाया जाता है। कभी २ वैद्यों या डाक्टरों की उंगली पर पीप लग जाने से भी हो जाता है। रूप इस घाव का प्राय गोल या अंडाकृति होता है। लेकिन प्राय कई घाव आपस में मिल जाते हैं। अस्तु वे बराबर किनारे कटे हुए और मुलायम और टेढ़े, प्राय पीव, कभी छिछड़े दार पीप, से ढके होते हैं। यदि शरीर निर्बल है और किसी प्रकार की खराश पहुंचाई जावे तो घाव सड़ कर शीघ्र बढ़ने लगता है जिस से सम्पूर्ण लिंग गल सड़कर निकल जाता है। और इस के प्रभाव से जांघों की गिलटियां सूज जाती हैं और इन में पीप भी पड़ जाती है, सिवाय बुखार के और किसी प्रकार की शारीरिक पीड़ा नहीं होती।

निदान—कठोर और मुलायम घावों का निदान आगे करेंगे। जब सिफलिस का जख्म लिंग के भीतर होगा तो सुजाक से धोखा हो सकता है। जिस का निदान यों है कि सुजाक में कुल मूत्रमार्ग में बाहर टटोलने से तांत की भांति कठोरता पाई जावेगी। और आतशक में केवल एक ही स्थान पर कठोरता पाई जावेगी। और सुजाक की पीप कुछ पीली और अधिक परिमाण में होगी, इस के विपरीत सिफलिस की पीप गाढ़ी, लोहू मिश्रित

कम परिमाण में पाई जावेगी ।

चिकित्सा । स्थानिक और शारीरिक दो प्रकार की है ।

१ स्थानिक । मुख्य सफाई है । घाव को साफ रखना चाहिए । आरम्भ में घाव को कास्टिक[1] से जलादें और एन्टीसेप्टिक लोशन[2], वाटर ड्रेसिंग[3] या पुलटिस लगावें जिस से छिछड़े दूर हो जावें । जब घाव साफ जान पड़े तो पारे का मरहम या और साधारण मरहम जैसे ज़िंक आइन्टमेन्ट आदि लगावें । यदि सड़ने वाला घाव है तो अफीम, गोलार्ड लोशन, वा आयोडोफार्म आदि लगावें । जब अच्छा न हो और घाव सड़ता ही जावे तो तेज़ शोरे के तेज़ाब[4] से जला कर कोयले की पुलटिस बांधें उपरान्त जैसी दशा हो वैसी चिकित्सा करें । इस घाव का दाग नीरोग चर्म की अपेक्षा कुछ नीचा होता है क्योंकि घाव टेढ़ा होता है ।

२ शारीरिक चिकित्सा । नर्म घाव के उपदंश में शारीरिक चिकित्सा की प्राय आवश्यकता नहीं होती, तो भी यदि बुखार हो तो उस की यथोचित चिकित्सा करनी पड़ती है । निर्बलता में बलदायक औषधियों का सेवन उत्तम है । स्वास्थ्य रक्षण के नियमों का ध्यान रखें ।

इस के फल से चार रोग उत्पन्न होते हैं ।

१ फाइमोसिस, (घूंघट का बंद हो जाना) Phymosis.

---

१ इस की बत्ती बाजारों में बिकती है ।

२ छूतनाशक जल ।

३ पानी बांधना ।

४ नाइट्रिक एसिड ।

२ ब्यूबो, (जांघ की गिलटियों का सूज जाना) Bubo.

३ सिकेट्रिक्स, (सुकड़ा हुआ दाग) Scoatrix

४ वारटस् वा कान्डीलोमा, (मस्से) आदि Warts and Condiloma

(१) की चिकित्सा काट देना ही उचित है जिस से, भीतर का घाव खुल जावे और उन पर औषधी लगाई जा सके ।

(२) की चिकित्सा सुजाक में वर्णन कर आए हैं ।

(३) कोई चिकित्सा उत्तम नहीं है ।

(४) की चिकित्सा यह है कि मस्सों को तेज कास्टिक से जला दें वा काट कर निकाल दें ।

कान्स्टीट्यूशनेल विनिरिएल डिजिजेज़ ।

शारीरिक उपदंश (आतशक जिस्मी)

CONSTITUTIONAL VENEREAL DISEASES

परिभाषा व मूल कारण । एक प्रकार का विष स्त्री-प्रसंग द्वारा या अन्यान्य मार्गों से रक्त में प्रवेश कर अपना प्रभाव प्रगट करता है और प्राय लिङ्गेन्द्रिय वा दूसरे स्थानों में घाव उत्पन्न करता है । इस विष से जो रोग उत्पन्न होता है, उसे सिफलिस Syphlis आतिशक वा उप-दंश-कहते हैं। किन्तु इस को नाना नामों से वैद्यों ने सम्बोधन किया है । अस्तु जब घाव लिङ्ग पर हो, और कोई शारीरिक क्लेश प्रत्यक्ष में न हो, चाहे गुप्त में अपना असर प्रकाश कर रहा हो तो प्राइमरी Primary Syphilis सिफलिस (प्रारम्भिक उपदंश = आतशक इब्तदाई) और जब इस दर्जे से निकल कर शारीरिक परिणाम प्रगट करे तो उस को कान्सीट्यूशनेल सिफलिस (शारीरिक उप-

दश = आतिशक जिरमी) कहते हैं । वास्तव में यह दोनों एक ही विष से उत्पन्न होते हैं, तो भी दोनो को पृथक् र वर्णन करेंगे ।

१ प्राइमरी सिफलिस (प्रारम्भिक उपदंश) Primary Syphilis । परिभाषा तथा मूल कारण ऊपर वर्णन कर चुके हैं ।

कारण । इस रोग से ग्रसित स्त्री से प्रसंग करना या अन्यान्य भांति से सिफलिस का विष खून में पहुंचना ही मुख्य कारण है ।

लक्षण । जब विष रक्त में प्रवेश करता है, तो प्राय लिंग पर अथवा दूसरे स्थान पर (जिस स्थान से विष प्रवेश हुआ हो) दस बीस या ४० दिन के भीतर फुंसी या खरोंच के मुकाम पर सूजन हो जाती है उपरान्त घाव गोल रूप का उत्पन्न हो जाता है, जिस के किनारे कठोर और आरम्भ में चमड़े से मिले, पश्चात कुछ ऊंचे हो जाते हैं, जिस से पतली पीव निकलने लगती है, जो उसी रोगी के दूसरे स्थानो में लगने से नरम घाव नहीं उत्पन्न करती, कारण यह कि रोगी छूत से नख सिख पूर्ण होता है इस से रक्त उस को नहीं चाहता। यही कारण है कि आतशक वाले रोगी में प्राय एक ही घाव होता है, कभी दो भी हो जाते हैं । इस रोग का निदान डाक्टर हन्टर ने पूर्ण रूप से किया है इसी कारण ऐसे घाव को "हन्टेरियन् शैंकर" कहते हैं । इस में किनारे घाव के कठोर होते हैं, तथा मध्य में भी कुछ कठोरता पाई जाती है, इस कारण इन्डयूरेटिड या हार्ड शैंकर अर्थात्-कठोर घाव उपदंश-कहते हैं, और छूतदार होने से इनफेक्टिङ्

और, आरम्भिक होने से प्राइमरी सिफलिस, कहा करते हैं ।

यह घाव प्राय पुरुषों के लिंग और अंडकोष पर और स्त्रियों के भग तथा गर्भाशय में होता है, और निरोगी पुरुष के उंगली मुख आदि में भी छूत के लग जाने से इसी प्रकार का घाव उत्पन्न हो जाता है। जब कि घाव लिंग पर है तो जांघ की गाठें और यदि हाथ में है तो कांख की गांठे सूज जाती हैं और घाव विषयादि करने या चिकित्सा उचित न होने के कारण बिगड़ कर इम्फ्लेम्ड, फेगीडेनिक, या सलफिंग अलसर में बदल जाता है । यह घाव तीन हफ्ते से छै महिने तक रह सकता है किन्तु इतने समय में रोग शारीरिक होने का पूर्ण भय है, अर्थात् प्रारम्भिक तथा शारीरिक दोनो एक ही रोगी पर सवार हो जायँगे । कभी दो ही सप्ताह में रोगी के घाव आदि अच्छे हो जाते हैं, देखने में भला चगा दिखाई देने लगता है लेकिन शारी-रिक उपदंश (आतशक जिस्मी) के पंजे में फस जाता है ।

कम्पलीकेशन । रोग का फल केवल बद (गांठ) है जिस को "सिफलेटिक[1] ब्यूबो " कहते हैं । यह अच्छे होने पर भी बनी रहती है। इसी से सिफलिस का निदान हो जाता है ।

गाठो (गिल्टियो) का निदान । शंकरकी ब्यूबो में लक्षण प्रारम्भिक होते हैं, कभी गाठ बिलकुल आराम हो जाती है, और कभी उस में पीब पड़ जाती है । पीब भी इस की छूतदार होती है ।

सिफलेटिक ब्यूबो (उपदंशी गाठ) में, जो नरम प्रकार के घाव के कारण छूत के प्रवेश से होती है, लक्षण नवीन

1 Syphlatic Bubo.

होते हैं, प्राय उस में पीब पड़ जाती है। इस की पीब भी छूतदार होती है। कठोर प्रकार के उपदंशी घाव के कारण जो गाठ निकलती है वह भी छूत के प्रवेश ही से होती है। इस में प्राय नवीन लक्षण (जैसा नरम घाव में वर्णन कर आए हैं) नहीं होते। इस में पीप प्राय नहीं पड़ती और यह आरोग्य होने के उपरान्त भी बनी रहती है।

निदान दोनों प्रकार के घावों का।

सोफ्टशैंकर (नरम घाव)	हार्ड शैंकर (कठोर घाव)
१ रोगी के कथनानुसार स्त्री प्रसग के उपरान्त ३ दिन से १० दिन के भीतर या और शीघ्र घाव आदि का होना सिद्ध होगा।	१ छूत के प्रवेश करने उपरान्त १० से ४० दिन वा और अधिक समय के उपरान्त घाव उत्पन्न होता है।
२ घाव प्राय छिल जाने या फुसी हो कर फूट जाने से होता है।	२ प्राय फुसी प्रगट होती है, कभी खरोच (खुरचट) आदि से भी हो जाता है।
३ घाव प्राय घूंघट वा लगाम पर पाया जाता है।	३ प्रायः लिंग के सिर वा जड़ या उस के मुख के भीतर और स्त्रियों में भग वा गर्भाशय में पाया जायगा।
४ घाव एक से अधिक हुआ करते हैं।	४ प्रायः एक घाव कभी दो।
५ घाव साफ, उस के किनारे टेढ़े कटे हुए नरम, होते हैं।	५ घाव की सतह कठोर उभरी हुई, किनारे कुर्री की भांति होते हैं।

६ बहाव जैसे पीव और दूसरों के लिए छूतदार होती है।	६ पीव पतली और विकाय रोगी के सब के लिए छूतदार होती है ।
७ गांठ में पीव पड़ जाती है और लक्षण नवीन होने से ज्वर भी होता है ।	७ इस में यह सब कुछ नहीं होता, गांठ कठोर हो कर बनी रहती है ।
८ साधारण चिकित्सा से आरोग्य हो जाता है पारा देने की आवश्यकता नहीं होती ।	८ साधारण चिकित्सा से लाभ नहीं होता। इस में पारा मुख्य औषधि है ।
९ घाव आराम हो जाने पर किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट नहीं होता ।	९ आराम होने पर कुछ समय उपरान्त शारीरिक क्लेश प्रारम्भ होते हैं ।

चिकित्सा । इस की छूत को दूर करना सहज नहीं है । हां यदि छूत के असर के उपरान्त कोई नवीन घाव न हुआ हो और गांठे (बद) न सूजी हों तो उचित चिकित्सा से लाभ हो सकता है और इस का विष भी दूर हो सकता है । किन्तु जब घाव विद्यमान (मौजूद) हों और गांठों तक असर पहुंच गया हो तो इस का दूर करना असम्भव है । यद्यपि चिकित्सा से घाव को लाभ हो सकता है और शारीरिक लक्षणादि भी अच्छे हो सकते हैं, तथापि यह विष समय पा कर अपना प्रभाव अवश्य दिखावेगा ।

चिकित्सा दो प्रकार की है, स्थानिक और शारीरिक ।

स्थानिक । आरम्भ में घाव को नाइट्रिक एसिड (शोरे का तेजाब) कार्बोलिक एसिड, वा कास्टिक की

पेंसिल से दाग देना चाहिए जिस से कि जहर जल जावे। बाजे हकीम कैंची से काट देना लाभकारी बताते हैं। लेकिन यह घोर क्लेशदायक युक्ति है। इस लिए प्राय. कास्टिक का लगाना ही अच्छा समझते हैं । यदि घाव बिगड़ा हो अर्थात् (स्लफ = बदगोश्त) हो तो वाटर ड्रेसिंग (पानी से ड्रेस) वा पुलटिस आदि छिलके दूर करने को बाधे । यदि सड़ने की दशा में हो तो उस की वैसी ही उचित चिकित्सा भी करें । जब घाव अच्छा हो तो "ब्लैक" या "यलो" वाश (काला व पीला धोने का जल) से या ब्लू आइन्टमेन्ट, डाइल्युट सिटरन आइन्टमेंट, आदि लगावें। परीक्षा से जाना गया है कि ऐसे समय में पारे से अधिक लाभ होता है। और गाठो पर टिकचर आफ आयोडीन या ब्लू आइन्टमेंट की मालिश करें। पुल्टिस आदि भी शोषण हेतु लगाते हैं ।

नोट—मैं ने अपने रोगियों को केवल घाव को एक बार कार्बोलिक एसिड से दाग कर कार्बोलिक आइल (कार्बोलिक आइल ४० बूंद तिल्ली का तेल आधी छटाक) लगाया और गाठो पर रसौत (दारहरी) अफीम का लेप कर धतूरे के पत्ते से सेक कर बाधा, इस से सैकड़ों को लाभ हुआ है।

शारीरिक चिकित्सा । यह दो प्रकार से की जाती है, एक तो पारे से दूसरी बिना पारे के, जिस का वर्णन शारीरिक उपदंश (कान्स्टीट्यूशनेल सिफलिस) में करेंगे ।

२ कांस्टीट्यूशनेल सिफलिस ।

Constitutional Syphilis.

शारीरिक उपदंश-आतिशक जिस्मी

परिभाषा । ऊपर वर्णन कर आए हैं ।

मूलदशा । जब किसी प्रकार से उपदंश का विष रक्त में प्रवेश करे तो धीरे २ कुछ समय उपरान्त शारीरिक उपदंश का प्रकाश होता है ।

कारण । रोगित स्त्री के साथ प्रसंगोपरान्त आतिशक का विष रक्त में प्रवेश करना या अन्य रोगी की पीप, थूक, दूध, आदि का प्रवेश करना इस रोग का मुख्य कारण है । यदि आतशकी स्त्री का दूध किसी तन्दुरुस्त बच्चे को पिलाया जावे तो उसे भी शारीरिक उपदंश हो जावेगा । इसी प्रकार वह मनुष्य जिस में शारीरिक उपदंश विद्यमान हो, चाहे उस के लिङ्गेन्द्रिय पर घाव न हो, और वह किसी स्त्री से विषय करे और बालक उत्पन्न हो तो उस पर भी शारीरिक उपदंश का प्रभाव भली भांति पाया जावेगा । इसी प्रकार आतिशक वाले से विष लेकर किसी निरोगी के शरीर पर लगावें तो उसे भी आतिशक जिस्मी (शारीरिक उपदंश) अवश्य हो जावेगी ।

ऊपर के वर्णन से ज्ञात हुआ कि शारीरिक उपदंश दो प्रकार का है एक स्वउपार्जित अर्थात् जिसे रोगी ने स्वयं प्राप्त किया हो, दूसरा पैतृक है । इसी से पहिले को "एक्वायर्ड कान्स्टिट्यूशनल सिफलिस" Acqured Constatutional Syphilis और दूसरे को हेरीडेटरी कांस्टिट्यूशनेल सिफलिस Horeditary Constitutional Syphilis कहते हैं ।

Acqured Constitutional Syphilis.

(१ प्रकार) एक्वायर्ड कान्स्टीट्यूशनल सिफलिस ।

स्वउपार्जित शारीरिक उपदंश ।

परिभाषा—तरुणता के समय उपदंश का विष रक्त में प्रवेश कर नाना प्रकार के बुरे फल प्रगट करता है ।

कारण—जवानी में प्रारम्भिक उपदंश (प्राइमरी सिफलिस) का होना, स्त्रियों में आतशकी रोगी के प्रसंग से गर्भ रहना या आतिशकी रोगिणी का निरोगी बालक को दूध पिलाना; प्रसवकाल में स्त्री के भग के ऊपर घाव विद्यमान होना, जिसकी पीप लग जाने से या रोगिण दाई का दूध पिलाने अथवा आतिशकी बच्चे के लिम्फ का टीका लगाने से भी यह रोग होजाता है। इसी को इन्फेन्टायल सिफलिस (Infantile Syphlis) कहते हैं।

लक्षण—लक्षण को पृथक्तानुसार तीन दर्जों में वर्णन करेंगे । (१दर्जा) यह है जिसको छूत का काल कहते हैं, अर्थात् छ सप्ताह से छ मास तक, कभी बर्षों की नौबत पहुंच जाती है। इतने समय में प्राइमरी सिफलिस का हो कर अच्छा हो जाना सम्भव है, किन्तु जांघों की गांठें, जिनमें विष विद्यमान रहता है, सूजी रहती हैं । और जब दूसरा दर्जा समीप आता है तो रोगी की दशा फिर बिगड़ जाती है, अर्थात् खांसी, जुकाम, और भांति २ की शिकायतें शुरू होजाती है । किन्तु पहिला दर्जा कईएक रोगियों में कम वा अधिक भी देखा गया है । यदि रोगी बलवान तथा तन्दुरुस्त है और प्रारम्भिक चिकित्सा उचित की गई है तो विष गुप्त हो जाता है, और रोगी को जान पड़ता है कि रोग अच्छा होगया, किन्तु रोग समय पाकर फिर उपस्थित हो जाता है । तब इतना अवश्य है कि यह विष दिन पर दिन

निर्बल अवश्य हो जाता है। अर्थात् प्रारम्भ में जैसा ज़ोर इसका रहता है वैसा अन्त में नहीं। क्योंकि प्राय देखा गया है कि स्त्रियों में आतिशक का विष विद्यमान था और गर्भ भी रह गया और दो एक महीने के उपरान्त विष के प्रभाव से गर्भ गिर गया है किन्तु कुछ काल पा कर फिर ऐसा नहीं हुआ। अर्थात दिन २ विष निर्बल होते २ कभी अठ-वांसा कभी सतवांसा गर्भ गिरने लगा। कभी पूरे दिनों का होकर बच्चा मुर्दा कभी जिंदा पैदा हुआ। अन्त में निरोगी बच्चा भी उत्पन्न हुआ। इस से साबित है कि यह विष दिन २ निर्बल भी अवश्य होता जाता है। हां इस के विष का प्रभाव पीढ़ी दर पीढ़ी तो अवश्य पहुंचता है। यदि उचित उपाय किया जावे तो यह दोष भी दूर हो सकता है।

(२ दर्जा) इस दर्जे में साधारण निर्बलता जिसको सिफलेटिक केकेक्सिया Syphlatic Cacacsia कहते हैं और ज्वर जिसे Syphlatic Fever सिफलेटिक फीवर (उपदंशी ज्वर) और गठिया, जिस को सिफलेटिक रूमाटिज़्म Syphlatic Rheumatism कहते हैं, उत्पन्न होते हैं।

(अ) केकेक्ज़िक एफेक्शन (निर्बलता)–रोगी बिना कारण दिन २ निर्बल होता जाता है, रंगत मैली तथा काली हो जाती है, पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, पेट में फूलन व दर्द, कब्ज की शिकायत रहती है। स्वाद बिगड़ जाता है, कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। नींद अच्छी तरह नहीं आती, गिलटियां सूज जाती हैं, प्राय शरीर पर इधर उधर धब्बे मसो के

आकार के प्रगट होते हैं, जो कुछ दिन बाद अच्छे भी हो जाते हैं। बाल सिर के पतले निर्बल, तथा हलके होकर गिर जाते हैं, और कैफियत "गज" की हो जाती है ।

(ख) फिवरायत एफेक्शन (ज्वर प्रकोप)–रोगी भीतर गर्मी बतलाता है, घाम नहीं सह सकता, आरोग्य अवस्था की अपेक्षा शारीरिक उष्णता (हरारत) आधे या एक दर्जा बढ़ी रहती है । सुबह से शाम तक के भीतर चढ़ती उतरती रहती है । कभी ज्ञात ही नहीं होता कि ज्वर कब चढ़ा और कब उतर गया । मस्तक में पीड़ा, चक्कर और मुख और गलफड़ों में घाव हो जाता है ।

(ग) रुमाटिक एफेक्शन (उपदंश गठिया)–विशेष कर घुटना और कुहनी के जोड़ों में, और कभी सब छोटे बड़े जोड़ों में दर्द पैदा हो जाता है और साइनोवियल[1] झिल्ली तथा आतों में सूजन हो जाती है । पैर के पंजों बेडौली हो जाती है । रात में पीड़ा अधिक होती है सूजन कम किन्तु रात को दर्द अधिक, सिफलेटिक गठिया का उत्तम निदान है । कभी दर्द कूल्हे में, जिस को साइटीका कहते हैं, या छाती के नर्व में जिस को प्लूरोडीना कहते हैं, होता है । छाती की हड्डी, टाग की हड्डी तथा हसुली की हड्डी को दबाने से दर्द होता और रोगी चौंक पड़ता है । ध्यान रहे कि ऊपर कहे हुए लक्षणों में से कभी एक, दो, और कभी कुल, पाए जाते हैं। एक बार अच्छे हो कर कुछ समय के उपरान्त पुन सताते हैं । इसी प्रकार दो तीन बार लौटने पर तीसरे दर्जे की बारी आ जाती है ।

---

१ गाठों और जोड़ों पर अस्तर लगाने वाली झिल्ली

(३ दर्जा) इसमें रोगी के सम्पूर्ण शरीर की बनावटों में रोग भर जाता है। अस्तु वह समय जब कि आतशक के जहर का असर केवल चर्म्म तथा लुआबी झिल्ली तक रहता है, सेकेन्डरी (Secondary) सिफलिस, और जब हड्डी और शरीर के भीतरी विभाग भी रोगग्रसित होते हैं तो टरशरी सिफलिस (Tertiary Siphlis) कहा जाता है। इस दर्जे में लासेदार झिल्ली व पट्ठों में स्थान स्थान पर गुमड़ियां–बताड़ी-पैदा हो जाती हैं, जिनको गुमेटस ट्यूमर Gumatus tumour कहते हैं। अंत को रोगी के भीतरी विभाग व हड्डी में रोग का प्रभाव प्रवेश करते ही मृत्यु की बन जाती है।

निदान—शारीरिक आतशक और अन्यान्य रोगों के लक्षणों में बहुत समता है। इस कारण उनसे निदान करना आवश्यक है।

शारीरिक उपदंश	अन्यान्य शारीरिक रोग
(१) पूर्व ही से प्राइमरी सिफलिस का प्रमाण मिलेगा। और जांघों की शोथक गिलटियां सूजी और कठोर मिलेंगी, लिङ्गेन्द्रिय देखने से उसपर तांबे की रंगत के घाव के चिन्ह पाए जाएंगे।	(१) इन में यह लक्षण न होंगे।
(२) रंग चमड़े का बदला हुआ और शरीर बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के दिन दिन	(२) निर्बलता का कारण प्रत्यक्ष ज्ञात होगा, अर्थात् ज्वर, अपच, गठिया, आदि।

निर्बल होता जाता है।	चमड़े के रंग में कोई परिवर्तन नहीं होता।
(३) लक्षण सिलसिले से और नियमित नहीं होते, अंत भी अनियमित होता है।	(३) लक्षण सिलसिलेवार नियमित और अंत भी नियमानुसार ही होता है।
(४) छाती के सामने की हड्डी आदि पर दबाने से दर्द होगा और मुंह की बाछों पर घाव मिलेंगे।	(४) यह बातें इनमें नहीं पाई जातीं।
(५) परिणाम मुख्य प्रकार का विशेषकर हड्डी व भीतरी विभाग में पाया जाता है।	(५) प्रत्येक का पृथक् : जैसे ज्वर में तिल्ली का बढ़ जाना, गठिया में हृदय रोग आदि परिणाम में पाया जाता है।
(६) पारे से चिकित्सा करनी लाभदायक है।	(६) पारे से नुकसान होता है किन्तु मुख्य २ रोगों में मुख्य औषधि दी जाती हैं।

चिकित्सा—बाजे वैद्य पारे से, बाजे विना पारे के, चिकित्सा करते हैं। लेकिन परीक्षा से पारा इस रोग में मुख्य औषधि पाई गयी है। किन्तु वह कुछ दशाओं में वर्जित भी है, जैसा आगे वर्णन करेंगे।

(१) पारे की चिकित्सा। पारे की चिकित्सा उस समय हानिकारक है जब रोगी निर्बल हो और भीतरी विभागों (जैसे तिल्ली) जिगर, गुर्दों, में पुरानी सूजन हो, वा आतिशक के विष का असर हड्डी व भीतरी विभाग तक पहुंच गया हो।

इसके विपरीत इसका देना लाभदायक है। पारे का व्यवहार चार प्रकार से करते हैं। खिलाना, लगाना, भाप द्वारा पहुंचाना, चमड़े के भीतर प्रवेश करना।

खाने के लिये प्रायः कैलोमिल, ग्रेपीडर, ग्रीन आयोडाइड आफ मरकरी, बाइक्लोराइड आफ मरकरी (रस चिकना) वा ह्लामर्स पिल (ह्लामर साहब की गोली) आदि देते हैं। ध्यान रहे कि पूर्व काल में इस औषधि को ऐसी असावधानी से व्यवहार करते थे कि, मुंह आजाने के कारण प्राण जाने का भय हो जाता था। किन्तु अब समय देख कर व्यवहार करते, तथा बल देख कर परिमाण स्थिर करके सावधानी से देते हैं।

जब रोगी आतशक के कारण दुर्बल हो और पारा खिलाना उचित समझें तो बाइक्लोराइड आफ मरकरी को अत्यन्त कम परिमाण में अनन्त मूल के वा सिनकोना के काढ़े के साथ दें। और जब देखते हैं कि रोगी बलवान है तो ब्लू पिल, कुछ अफीम मिला कर, पारे का न्यून प्रभाव लेने की इच्छा से देते हैं। किन्तु जब खिलाना किसी भांति से उचित न हो, अर्थात् इस के देने से वमन वा दस्त आदि हो जावें, तो खिलाने की अपेक्षा पारे के मरहम को कांख वा जांघ में मालिश कराने से भी वही मतलब मिलता है। कभी भाप वा अन्यान्य विधि से भी इसे शरीर में पहुंचाते हैं। किन्तु उस समय जब शरीर पर फुन्सियां हो इस विधि को यों करते हैं कि रोगी को मोढ़े वा कुरसी पर नंगा बैठा कर नीचे आग में लाल की हुई एक ईंट रख दें। और रोगी को चारों ओर कम्बल वा लबादों से ढक दें; केवल मुख

खुला रहे, उपरान्त लाल की हुई ईंट पर कैलोमिल आधा ड्राम या सिगरफ का चूर्ण एक ड्राम छिड़क दें। दस या पन्द्रह मिनिट तक भाप पहुंचाए। यदि रोगी को पसीने आदि से मूर्छा आ जाय तो तुरत ढका ढकाया कुरसी से पलंग पर कर दें और मूर्छा की उचित चिकित्सा करें। इस विधि के करने उपरान्त रोगी को वायु से बचाना चाहिए, जिस से कण अच्छी तरह शरीर में प्रवेश हो जावें। इस के लिये उत्तम समय शाम का है। यह विधि हर दूसरे या तीसरे दिन करते रहें जब तक कि पारे का असर न हो।

बाजे वैद्य ३ हिस्सा बाइक्लोराइड आफ मरकरी का दस बूंद जल में घोल कर चमड़े के नीचे छोटी पिचकारी द्वारा प्रवेश करते हैं, बाजे पारा देने के उपरान्त आयोडीन (जैसा बिना पारे की चिकित्सा में वर्णन है) दिया करते हैं। ध्यान रहे कि गर्म काल में रोगी को शीत आदि से बचावें; अस्तु फलानेल का कुरता पहिना दें। पथ्य पाचक जैसे दूध शोरबा अण्डा आदि दें। मदिरा का देना अत्यन्त हानिकारक है।

(२) बिना पारे की चिकित्सा। इस में पारे का व्यवहार बिलकुल नहीं है, किन्तु रक्तशोधक औषधियां व्यवहार में लाई जाती हैं। आयोडाइड आफ पुटासियम मुख्य औषधि है। इसे उसबा (सारसा परेला) या अनन्त मूल के काढ़े के साथ देते हैं; इस से न केवल रक्त शुद्ध होता है किन्तु यह दर्द आदि विकारों को भी दूर करता है। आइरन के सिरप, ब्रोमाइड आफ पुटास, आयोडाइड आफ आइरन का शरबत, मिलता में मछली का तेल, कुचले के

प्रिपरेशन आदि, दें। यदि दस्तों की आवश्यकता हो तो कभी २ समयानुसार दें। आइडीन के प्रिपरेशनों के व्यवहार से जुकाम हो जाता है इस से कार्बोनेट आफ एमोनिया तथा लाल मिर्च का टिंकचर (Tr capsooi) आदि मिलाकर दें, स्वास्थ्यरक्षण के नियमों का ध्यान रक्खें।

एक उत्तम नुसखा इस रोग का सर्वसाधारणार्थ यहां लिखते हैं।

पुटासी आयोडाइड ५ ग्रेन
लाइकर हैड्राज परक्लोराइड ½ ड्राम
टिंकचर कैपसिकम
डिकाक्सन सारसीपरेला १ औंस

ऐसी चार खुराक दिन में ३ या ४ बार लेवें।
किन्तु ध्यान रहे कि इस रोग में नाना प्रकार की आधि व्याधि मनुष्य को घेरे रहती हैं, इस से बिना योग्य डाक्टर के परामर्श के चिकित्सा करना व्यर्थ है।

नोट—यदि कोई स्त्री किसी ऐसे पुरुष से जिसे उपदंश हो गर्भिणी हो जावे तो गर्भ के समय भी चिकित्सा पारे या बिना पारे की करनी चाहिए जिससे मा बच्चे दोनों को लाभ हो। ऐसे समय में चिकित्सा न करना चाहिए यह बात साधारण लोगों के जी में लगी है किन्तु यह उनकी भूल है।

आतिशक के परिणाम से उत्पन्न स्थानिक तथा आन्तरिक नाना रोग हैं, यदि सब को यहां वर्णन करें तो एक बड़ा पोथा तैय्यार हो इससे उन्हें त्यागना ही उचित जान पड़ता है, तो भी शिशु उपदंश–इन्फेन्टायल सिफलिस जो पैतृक उपदंश के नाम से मशहूर है–का उल्लेख आवश्यक है।

CONTAGIOUS AND INFECTIOUS DISEASES WHICH SPREAD THROUGH FLIES.

मक्खियों द्वारा फैलने वाले छूतवाले रोग



कई एक छूत वाले रोगों की फैलाने वाली मक्खियां हैं। मक्खियां कई प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की जहरीली मक्खी दक्षिण अफ्रीका के उगण्डा आदि देशों में पाई जाती हैं जो निद्रा रोग (Sleeping Disease) को फैलाती है। निद्रा रोग के विष को इस प्रकार की मक्खियां अपने डंक द्वारा मनुष्यों के शरीर में पहुंचाती हैं। शरीर के जिस स्थान पर इस प्रकार की मक्खी काटती है, उस स्थान पर मच्छड़ के काटने के समान ददोड़ा पड़ जाता है। काटने के स्थान पर कुछ सूजन और जलन जान पड़ती है। आठ दस दिन के पीछे विष का असर कंठ की गिलटियों Lymphatic Glands पर होता है, जिस से कंठ की गिलटियां सूज जाती हैं। गिलटियों के सूजते ही मस्तक में एक प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाता है। जिससे रोगी अचेत होकर सो जाता है। और सोते ही कुछ घन्टों वा दिवसों के पीछे मर जाता है। यह रोग बन्दरों में मनुष्यों के समान ही होता है। जंगली चौपाए ही प्रथम प्रथम इस रोग में ग्रसित होते हैं। भगवान् ऐसी ज़हरीली मक्खियों और उनसे फैलनेवाले अद्भुत निद्रा रोग को दक्षिण अफ्रीका ही में रक्खे।

भारतवर्ष में भी कई प्रकार की मक्खियां होती हैं। एक प्रकार की मक्खी जो रूपमें साधारण मक्खियों के सदृश किन्तु आकार में इनसे चौगुनी होती हैं, "कीटोत्पादक" होती

हैं । जिन घावों पर ऐसी मक्खियां बैठ जाती हैं, उन में तुरन्त कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं । यदि इन मक्खियों के उदर भाग पर दृष्टि डालें तो उनके पेट में सूत की भांति असंख्य कीड़ों के अंडे दिखलाई देंगे । ये मक्खियां प्राय पशुओं के घावों पर बहुत शीघ्र बैठती हैं । कभी २ मनुष्यों के घावों पर भी बैठ जाती हैं । इन के बैठते ही तुरन्त अंडे, जो देखने में श्वेत सूत की भांति और नाप में $\frac{१}{१६}$ से $\frac{१}{८}$ इंच के लम्बे होते हैं घावों में दिखलाई पड़ने लगते हैं । ये अंडे कुछ घन्टों में फूटकर जीव धारी कीड़े बन जाते हैं । एक ही दो दिन में ये कीड़े $\frac{१}{२}$ से $\frac{३}{४}$ इंच के लग भग लम्बे और मोटाई में मल, वा पनारी के कीड़ों के समान हो जाते हैं ।

साधारण (घरेलू) मक्खियां जो रात दिन हम लोगों को प्रत्येक स्थानों में सताती हैं, कम भयङ्कर नहीं होतीं । सच पूछो तो हैजा, शीतला, प्लेग आदि कठिन रोगों को ये मक्खियां सहज ही एक से दूसरे में फैला देती हैं । इन मक्खियों को यदि "रोगरथ" कहें तो अनुचित न होगा । किस प्रकार इन से छूत वाले रोग फैलते हैं सुनिए ।

छूत वाले रोग प्रायः तीन प्रकार से फैलते हैं । (१) वायु द्वारा (२) स्पर्श द्वारा,—(३) जल वा खाने वाली वस्तुओं द्वारा । प्रथम को छोड़ कर बाकी दोनों प्रकार के छूत वाले रोग इन घरेलू मक्खियों द्वारा सहज ही में फैल सकते हैं । हैजा, जो केवल जल वा भोजन के विकार से ही उत्पन्न होता है, इन मक्खियों द्वारा शीघ्र फैल जाता है । हैजा प्राय गर्मी के आदि वा अन्त में होता है, और गर्मी के आदि और अन्त में मक्खियां भी अधिक उत्पन्न होती

हैं। हैजे के रोगी के मल वा वमन पर ये मक्खियां बैठ २ कर, हलवाइयों, अहीरों, नानबाइयों, तम्बोलियों, और मेवाफरोशों आदि की दूकानों में पहुंचती हैं, और उन२ खाद्य पदार्थों को विषयुक्त कर देती हैं, जिन्हें कि मनुष्य प्रति दिन बाजारों से खरीद कर खाते पीते हैं। बस! जिन मनुष्यों ने उन खाद्य पदार्थों को, जिन पर कि हैजे के वमन तथा दस्तों पर बैठी हुई मक्खियों ने बैठ कर भ्रष्ट किया था, खाया, वे तुरन्त ही हैजे में ग्रसित हुए। मान लिया कि विष का प्रभाव (असर) प्रत्येक पुरुषों में एकसा नहीं पाया जाता, तो भी सैकड़े पीछे साठ तो अवश्य रोगी हो सकते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हैजे का विष रोगी के मल तथा वमन में ही रहता है। और ऐसी घृणित वस्तुओं पर मक्खियां प्रायः भिनभिनाया ही करती हैं। इस से सिद्ध हुआ कि हैजे का विष जितना शीघ्र मक्खियों द्वारा फैल सकता है उतना और किसी प्रकार से नहीं।

इसी प्रकार शीतला रोग की भी व्यवस्था जानिए। यह रोग तीनों प्रकार से उत्पन्न होता है। जहां रोगी के शरीर पर बैठकर मक्खियां दूसरे निरोगी मनुष्य के शरीर पर बैठीं कि वह तुरत रोगग्रसित हुआ। जल भोजन तथा दूध आदि में विषयुक्त मक्खियों के गिरने और उन पदार्थों के निरोगी मनुष्यों के व्यवहार में आने से भी शीतला रोग फैल जाता है। शीतला के दानों वा फुंसियों का विष मक्खियों द्वारा दूसरे मनुष्यों के शरीरों पर लगाने से शीतला निकल आती है। प्रायः बच्चों को मक्खियां अधिक घेरे रहती हैं, शायद इसी से बच्चों को शीतला अधिक निकलती है।

कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य को उपदंश (गर्मी—आतिशक) का घाव है और दूसरे को साधारण घाव है। यदि कोई मक्खी, जो कि उपदंश के घाव पर प्रथम बैठ चुकी है साधारण घाव पर भी आ बैठे, तो क्या गर्मी का विष उस साधारण घाव द्वारा शरीर में प्रवेश करने से बच जाएगा ? कदापि नहीं। इसी प्रकार प्रसूत ज्वर की रोगिणी के उन भीगे वस्त्रों पर, जो कि गर्भाशय के मल वा लोहू आदि में सने हों, मक्खियां बैठ कर किसी निरोगी प्रसूता (जच्चा) के शरीर पर आ बैठें, तो क्या वह निरोगी प्रसूता प्रसूत ज्वर के विष से बच सकती है? मेरी समझ में तो नहीं बच सकती। इसी प्रकार सन्निपातिक ज्वर, (टाइफाइड् फीवर) अकाल ज्वर, (फेमीन फीवर) लाल ज्वर, (स्कारलेट् फीवर) काला ज्वर, (टाइफस फीवर) पीत ज्वर, (यलो फीवर) आदि की छूत भी इन मक्खियों के फैलाने से फैल सकती है। सुर्ख बादा (एरीसिपलेस्) की छूत तो बहुत शीघ्र इन मक्खियों द्वारा फैल सकती है। क्षयी (तपेदिक) के कफ का विष भी मनुष्यों के खाने पीने वाली वस्तुओं में यदि मक्खियां मिला देती हों तो क्या आश्चर्य है? प्लेग की छूत को फैलाने में चूहे तो बदनाम हैं ही, किन्तु मक्खियां भी इस इल्जाम से नहीं बच सकती। इसी प्रकार कुष्ठ आदि छूत वाले रोगों के विषय में भी समझ लीजिए।

सारांश यह कि वे रोग जो छूत के कारण उत्पन्न होते हैं, उन के विष को मनुष्यों में फैलाने वाली यही घरेलू मक्खियां जान पड़ती हैं। रोग की छूत मक्खियों के मुख, पक्ष, तथा हाथ पांव में लग जाती है। जिसे वह बैठ काट वा गिर

हैं । हैजे के रोगी के मल वा वमन पर ये मक्खियां बैठ कर, हलवाइयों, अहीरों, नानबाइयों, तम्बोलियों, और मेवाफरोशों आदि की दुकानों में पहुंचती हैं, और उन खाद्य पदार्थों को विषयुक्त कर देती हैं, जिन्हें कि मनुष्य प्रति दिन बाजारों से खरीद कर खाते पीते हैं। अब जिन मनुष्यों ने उन खाद्य पदार्थों को, जिन पर कि हैजे के वमन तथा दस्तों पर बैठी हुई मक्खियों ने बैठ कर गृह किया था, खाया, वे तुरन्त ही हैजे में ग्रसित हुए। मान लिया कि विष का प्रभाव (असर) प्रत्येक पुरुषों में एकसा नहीं पाया जाता, तो भी सैकड़े पीछे साठ तो अवश्य रोगी हो सकते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हैजे का विष रोगी के मल तथा वमन में ही रहता है। और ऐसी घृणित वस्तुओं पर मक्खियां प्रायः भिनभिनाया ही करती हैं। इस से सिद्ध हुआ कि हैजे का विष जितना शीघ्र मक्खियों द्वारा फैल सकता है उतना और किसी प्रकार से नहीं।

इसी प्रकार शीतला रोग की भी व्यवस्था जानिए। यह रोग तीनों प्रकार से उत्पन्न होता है। जहां रोगी के शरीर पर बैठकर मक्खियां दूसरे निरोगी मनुष्य के शरीर पर बैठीं कि वह तुरत रोगग्रसित हुआ। जल भोजन तथा दूध आदि में विषयुक्त मक्खियों के गिरने और उन पदार्थों के निरोगी मनुष्यों के व्यवहार में आने से भी शीतला रोग फैल जाता है। शीतला के दानों वा फुंसियों का विष मक्खियों द्वारा दूसरे मनुष्यों के शरीरों पर लगाने से शीतला निकल आती है। प्रायः बच्चों को मक्खियां अधिक घेरे रहती हैं शायद इसी से बच्चों को शीतला अधिक निकलती है।

कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य को उपदंश (गर्मी—आतिशक) का घाव है और दूसरे को साधारण घाव है। यदि कोई मक्खी, जो कि उपदंश के घाव पर प्रथम बैठ चुकी है साधारण घाव पर भी आ बैठे, तो क्या गर्मी का विष उस साधारण घाव द्वारा शरीर में प्रवेश करने से बाज़ आएगा? कदापि नहीं। इसी प्रकार प्रसूत ज्वर की रोगिणी के उन भीगे वस्त्रों पर, जो कि गर्भाशय के जल या लोहू आदि में सने हों, मक्खियाँ बैठ कर किसी निरोगी प्रसूता (ज़चा) के शरीर पर आ बैठें, तो क्या वह निरोगी प्रसूता प्रसूत ज्वर के विष से बच सकती है? मेरी समझ में तो नहीं बच सकती। इसी प्रकार सन्निपातिक ज्वर, (टाइफाइड् फीवर) अकाल ज्वर, (फेमीन फीवर) लाल ज्वर, (स्कारलेट् फीवर) काला ज्वर, (टाइफस फीवर) पीत ज्वर, (यलो फीवर) आदि की छूत भी इन मक्खियों के फैलाने से फैल सकती है। सुर्ख बादा (एरीसिपलेस्) की छूत तो बहुत शीघ्र इन मक्खियों द्वारा फैल सकती है। क्षयी (तपेदिक) के कफ का विष भी मनुष्यों के खाने पीने वाली वस्तुओं में यदि मक्खियाँ मिला देती हों तो क्या आश्चर्य है? प्लेग की छूत को फैलाने में मूसे तो बदनाम हैं ही, किन्तु मक्खियाँ भी इस इल्जाम से नहीं बच सकती। इसी प्रकार कुष्ठ आदि छूत वाले रोगों के विषय में भी समझ लीजिए।

सारांश यह कि वे रोग जो छूत के कारण उत्पन्न होते हैं, उन के विष को मनुष्यों में फैलाने वाली यही घरेलू मक्खियाँ जान पड़ती हैं। रोग की छूत मक्खियों के मुख, पंख, तथा हाथ पाव में लग जाती है। जिसे वह बैठ काट या गिर

मर कर फैला देती हैं ।

कहिए पाठक ! इन घरेलू मक्खियों का व्यापार कैसा भयङ्कर है ? कैसे २ विषम तथा सांघातिक रोग इन के द्वारा सहज ही में फैल सकते हैं ।

आप कहेंगे कि, वर्तमान समय में पश्चिमीय वैद्यों का यह एक आधुनिक सिद्धान्त हो गया है कि समस्त रोग जीवों द्वारा उत्पन्न होते हैं । जैसे, मूसे प्लेग फैलाते हैं, मच्छड़ जाड़ा बुखार, (मेलेरिया) काटने वाली मक्खियां निद्रा रोग (स्लीपिङ्ग डिज़ीज़) और नाना प्रकार के कीट (बेसीली) जो जल और वायु में सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं, नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं, तो अब जीवहिंसा ही रोगों से बचने का एकमात्र उपाय ठहरा, न कि औषधि ! ऐसी शंका प्रत्येक पुरुष के हृदय में सहज ही उठ सकती है । किन्तु इस बात पर ध्यान देने से, कि यद्यपि विविध जीवों द्वारा नाना प्रकार के रोग मनुष्यों में फैलते हैं, तथापि उनसे बचने के उपाय जीवों की हिंसा नहीं किन्तु और बहुत से सहज, तथा अहिंसक उपाय और औषधियां हैं, शंका दूर हो सकती है । क्योंकि ईश्वर की सृष्टि में उत्पन्न किसी प्रकार के जीव को, चाहे वह अल्प हो वा अधिक, समूल नष्ट करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है । सृष्टि की आदि से अब लों व्याघ्रादि हिंसक पशुओं को सभी मारते आये हैं, किन्तु क्या व्याघ्रवंश का उच्छेदन हो गया ? इसे भी जाने दीजिये, कुत्तों के मरवाने की प्रथा कितने दिनों से निकाली गई है, किन्तु उन का वंशलोप नहीं हुआ । कुछ काल से मूसों पर भी इसी प्रकार की आफत आई है,

किन्तु वे भी समूल नष्ट न हुए और न होंगे । आज कल मच्छरों के भी मारने की सलाह हो रही है, किन्तु मेरी समझ में इस में भी शायद ही सफलता हो ।

मैं ऊपर कहे जीवों की हिंसा द्वारा उन से उत्पन्न रोगों से बचने के उपाय को भ्रम मानता हूं, परन्तु मेरा यह सिद्धान्त तो है—और यह सिद्धान्त किसी२ अंश में "डाक्टरी महासभा, बम्बई" ने भी माना है—कि मक्खियों द्वारा छूत वाले रोग अवश्य फैलते हैं किन्तु यह नहीं है कि उन का मारना ही छूत से बचने का उत्तम उपाय है ।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि क्या इससे पहिले इस प्रकार मक्खी और मच्छड़ भारतवर्ष में नहीं थे? यदि थे तो उस समय इस प्रकार के रोग इन मक्खियों द्वारा क्यों नहीं फैलते थे? इस का उत्तर यही है कि पहिले भी मक्खी मच्छड़ ऐसे ही थे जैसे कि अब हैं, परन्तु उस समय के से सफाई, आचार, विचार, आहार, विहार, तथा स्वास्थ्यबल सम्पन्न पुरुष अब नहीं रहे और न उस समय का सा धन धान्य ही रहा । यही कारण है कि उस समय में पृथ्वी आकाश का सा अंतर आ गया है ।

सच पूछो तो हमने बड़ी भारी भूल की जो अपने स्वास्थ्यप्रद "आचार" को तिलाञ्जलि देकर पश्चिमीय रीति का अनुकरण कर लिया, यह उसी भूल का फल हम अब भोग रहे हैं । सच तो यह है कि भारतवर्ष का सदाचार एक ऐसा उत्तम तथा सरल उपाय छूतवाले भयङ्कर रोगों से बचने का था, जैसा दूसरा नहीं । [illegible] के बल पर [illegible] पुरुष दीर्घजीवी, बली, तथा भयङ्कर [illegible]

भर कर फैला देती हैं।

कहिए पाठक ! इन घरेलू मक्खियों का व्यापार कैसा भयङ्कर है ? कैसे २ विषम तथा सांघातिक रोग इन के द्वारा सहज ही में फैल सकते हैं।

आप कहेंगे कि, वर्त्तमान समय में पश्चिमीय वैद्यों का यह एक आधुनिक सिद्धान्त हो गया है कि समस्त रोग जीवों द्वारा उत्पन्न होते हैं। जैसे, मूसे प्लेग फैलाते हैं, मच्छड़ जाड़ा बुखार, (मेलेरिया) काटने वाली मक्खियाँ निद्रा रोग (स्लीपिङ्ग डिज़ीज़) और नाना प्रकार के कीट (बेसी-ली) जो जल और वायु में सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं, नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं, तो अब जीवहिंसा ही रोगों से बचने का एकमात्र उपाय ठहरा, न कि औषधि। ऐसी शंका प्रत्येक पुरुष के हृदय में सहज ही उठ सकती है। किन्तु इस बात पर ध्यान देने से, कि यद्यपि विविध जीवों द्वारा नाना प्रकार के रोग मनुष्यों में फैलते हैं, तथापि उनसे बचने के उपाय जीवों की हिंसा नहीं किन्तु और बहुत से सहज, तथा अहिंसक उपाय और औषधियाँ हैं, शंका दूर हो सकती है। क्योंकि ईश्वर की सृष्टि में उत्पन्न किसी प्रकार के जीव को, चाहे वह अल्प हो वा अधिक, समूल नष्ट करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। सृष्टि की आदि से अब लों व्याघ्रादि हिंसक पशुओं को सभी मारते आये हैं, किन्तु क्या व्याघ्रवंश का उच्छेदन हो गया ? इसे भी जाने दीजिये, कुत्तों के मरवाने की प्रथा कितने दिनों से निकाली गई है, किन्तु उन का वंशलोप नहीं हुआ। कुछ काल से मूसों पर भी इसी प्रकार की आफत आई है,

किन्तु ये भी समूल नष्ट न हुए और न होंगे । आज कल मच्छड़ों के भी मारने की सलाह हो रही है, किन्तु मेरी समझ में इस में भी शायद ही सफलता हो ।

मैं ऊपर कहे जीवों की हिंसा द्वारा उन से उत्पन्न रोगों से बचने के उपाय को भ्रम मानता हू, परन्तु मेरा यह सिद्धान्त तो है—और यह सिद्धान्त किसी२ अंश में "डाक्टरी महासभा, बम्बई" ने भी माना है—कि मक्खियों द्वारा छूत वाले रोग अवश्य फैलते हैं किन्तु यह नहीं है कि उन का मारना ही छूत से बचने का उत्तम उपाय है ।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि क्या इससे पहिले इस प्रकार मक्खी और मच्छड़ भारतवर्ष में नहीं थे ? यदि थे तो उस समय इस प्रकार के रोग इन मक्खियों द्वारा क्यों नहीं फैलते थे ? इस का उत्तर यही है कि पहिले भी मक्खी मच्छड़ ऐसे ही थे जैसे कि अब हैं, परन्तु उस समय के से सफाई, आचार, विचार, आहार, विहार, तथा स्वास्थ्यबल सम्पन्न पुरुष अब नहीं रहे और न उस समय का सा धन धान्य ही रहा । यही कारण है कि उस समय में पृथ्वी आकाश का सा अंतर आ गया है ।

सच पूछो तो हमने बड़ी भारी भूल की जो अपने स्वास्थ्यप्रद "आचार" को तिलाञ्जलि देकर पश्चिमीय रीति का अनुकरण कर लिया, यह उसी भूल का फल हम अब भोग रहे हैं । सच तो यह है कि भारतवर्ष का सदाचार एक ऐसा उत्तम तथा सरल उपाय छूतवाले भयङ्कर रोगों से बचने का था, जैसा दूसरा नहीं । इसी आचार के बल पूर्व पुरुष दीर्घजीवी, बली, तथा भयङ्कर छूतवाले रोगों से रक्षित

रहा करते थे। हाय! ऐसी अनुपम तथा अमूल्य आचार रूपी औषधि खोकर आज दिन हम लोग कैसे निर्बल तथा रोगी हो बैठे हैं!

सदाचार से न केवल शरीर की शुद्धि ही होती है किन्तु उससे बल भी बढ़ता है। बल मनुष्य के जीवन का एक अलौकिक रत्न है, अथवा यों कह लीजिये कि एक बल ही है जो हज़ार शारीरिक उत्पातों को सहज ही नष्ट करता है। शारीरिक बल से छूत का विष शरीर में प्रवेश करके भी हानि नहीं पहुंचा सकता इस का यथेष्ट प्रमाण मिल चुका है। तब भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति तथा मनुष्यों का आहार विहार देख कर साधारण से साधारण मनुष्य भी अनुमान कर सकता है कि छूत या विषवाले रोग इन भारतवासियों को न ग्रसें तो ग्रसें किन्हें? क्योंकि जिन भारतवासियों को कठोर परिश्रम करने पर भी एक वक्त भरपेट अन्न नहीं मिलता, जिनका खाद्य पदार्थ, जौ, चूनी, बजड़ी, बाजरा आदि पशुओं के खाने के अन्न हैं, जो एक मुट्ठी चना तथा चुटकी भर सत्तू पर दिवस व्यतीत करते हैं, जिन्हें समय पड़ने पर कौड़ी २ को तरसना पड़ता है, और जिन्हें रोगी होने पर औषधि तथा पथ्य का निर्वाह करना कठिन होता है, ऐसे सब प्रकार से असहाय भारतवासी यदि सदैव रोगी बने रहें तो क्या आश्चर्य है? एक दिन वह था कि प्रत्येक भारतवासी के घर भण्डार में इतनी उत्तमोत्तम अन्नराशि सञ्चित रहती थी, कि प्रति दिन अतिथि सत्कारादि में प्रचुर व्यय करने पर भी नहीं घटती थी। दूध और घी का ये इतना उपयोग

करते थे कि जितना आज इन्हें स्वप्न में भी नहीं प्राप्त है। उस समय इन्हें आचार विचार का यथेष्ट मनन था, बल सञ्चित करने की सम्पूर्ण सामग्री थी। रोगों से बचने की इन में विमल बुद्धि थी, और रोग भी ऐसे पुरुषों से कांपा करते थे।

स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का वर्णन ।

स्वास्थ्यरक्षण के उन नियमों का यहां वर्णन करना हम उचित समझते हैं, जिन के कि पालन करने से मनुष्य भयङ्कर छूतवाले रोगों से बच सकते हैं।

जल—मनुष्य के जीवन में जल एक मुख्य तथा उपयोगी तत्व है। जल का भारतवासियों ने इतना आदर किया कि साक्षात् नारायणरूप मान कर उस की पूजा करने से भी नहीं चूके। दिन में कई बार स्नान, तथा शरीर के प्रधान २ अवयवों के शुद्ध रखने का एक इसी जाति में प्रशंसनीय नियम है। पृथ्वी की अन्य किन्हीं जातियों में इतना जल का खर्च नहीं है जितना कि भारतवासियों के घरों में अब भी विद्यमान है। इनके प्रत्येक धार्मिक कायिक, तथा गार्हस्थ्य, विषयों में जल ही जल दिखलाई पड़ता है। इसी से इन के प्रत्येक प्राचीन नगर प्राय नदियों के किनारे बसे हैं।

पीने वाले जल को भारतवासी बड़ी सफाई से रखते थे। शुद्ध मजे हुए चमचमाते पात्रों में ताज़ा जल ढक कर शुद्ध स्थान में रखते थे। अपने पीने खाने के पात्र, दूसरों की कौन कहे, अपने आत्मजों को भी देना अनुचित समझते थे। अशुद्ध तथा उच्छिष्ट वस्तु दूसरे को देना वा दूसरों से लेकर पीना खाना महा पाप समझते थे। जिन पात्रों में

जितनी बार जल पीते थे, उतनी ही बार उन्हें भली भांति शुद्ध कर लेते थे। जलपात्र बिना हाथ धोये छूते नहीं थे, और न किसी दूसरे को छूने ही देते थे। कोई २ तो अब भी अपने ही हाथों जल भर अपने ही हाथों उसे व्यवहार करते हैं दूसरों को छूने नहीं देते। क्या मजाल तो पन-घट के समीप जूठ, थूक, वा मल मूत्र कोई करने पावे। नीच जातियों को अपने पीने वाले कूवों से जल नहीं भरने देते थे, उन के लिये गावों वा नगरों में पृथक् ही कूप खुदवा देते थे। पनघट पर एक पीतल तांबे वा लोहे का पात्र जल भरने को सदैव रक्खा रहता था। बौद्धों और जैनों का तो सिद्धान्त था कि बिना छाने जल पीना ही नहीं चाहिये। अंगरेजों का भी जल के विषय में उत्तम मत है।

जल को शुद्ध रखने तथा शुद्ध व्यवहार करने में पूर्व भारतवासी बड़े चतुर थे। इसी से वे निरोगी, बली, तथा भयङ्कर छूतवाले रोगों से बचे रहते थे। जल विकार से उत्पन्न होने वाले रोग यथा—हैजा, अतिसार, संग्रहणी, और सान्निपातिक ज्वर (टाइफायड फीवर) आदि उन्हें बहुत ही कम सताते थे। किन्तु वर्तमान भारतवासियों ने अपने पूर्वजों की रीति नीति अनुचित समझ कर उसे त्याग दिया, और पश्चिमी रीति का पूर्ण रूप से अनुकरण करने लग गये। जल का उपयोग स्नानादि में कौन कहे शौचादि में भी करना झंझट जान पड़ने लगा। यहां तो कि दूसरों की जूठी, छूई हुई तथा अखाद्य वस्तु खाने पीने ही में एकता का स्वप्न देखने लग गये। स्पर्शास्पर्श का विचार उन्हें मूर्खता जान पड़ने लगा। सोडा वाटर, लेमनेड आदि

गंगाजल से भी अधिक उपयोगी ठहरे । कूवो वा नदियों के जल का व्यवहार त्याग कर टोंटी का जल—जो कई बातों में उत्तम तथा कई बातो में हानिकर है— बर्तने लग गये । गर्मी, सूज़ाक, आदि रोगो से ग्रसित कहारों, अहीरों वा धीमरो से जल भरवाने तथा उन के हाथो से पीने खाने लग गये । आलस्य के फंदे में पड़ कर स्नान आदि उपयोगी नियम, जिन से कि शरीर की शुद्धि होती थी, त्याग कर "टर्किश बाथ[1]" आदि की ओर झुके । जल के विषय में स्वच्छास्वच्छ के विचार का उन्हें समय नहीं रहा । स्त्रियां मर्दों की देखादेखी उन से भी अधिक आलसी हो गईं । स्वच्छता किसे कहते हैं और उस से क्या २ लाभ हैं, ये अविद्याग्रस्त अबला भला क्या जानें । क्योंकि जब पुरुषों ही में इस बात का कुछ विचार नहीं तब स्त्रियों में न रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

दिन में दो बार स्नान करने की हिन्दुओं में पुरानी रीति है । शुद्ध निर्मल जल के स्नान से शरीर की शुद्धि के अतिरिक्त बड़ा लाभ यह है कि मक्खियों वा अन्य प्रकार के स्पर्शो द्वारा लगी हुई शरीर की कूस स्नान से दूर हो जाती है । लोहू से प्राण लेने वाली वायु (कार्बोनिक एसिड गैस) दूर हो कर जीवन देने वाली वायु (आक्सी-जन गैस) बढ़ जाती है । स्नान के लिये नदी का जल बहुत ही उत्तम तथा बल बढ़ाने वाला है । किन्तु बरसात में नदियो का जल भी स्नान के योग्य नहीं रहता । कूवो का जल स्नान के लिये सर्व ऋतु में लाभदायक है । गड़ही वा

१ केवल साबुन लगा कर मुख हाथ और पांव धो लेना ।

टूटे, बिगड़े, तथा गंदे तालाबों में भूल कर भी स्नान नहीं करना चाहिये। स्नान, ऋतु के अनुकूल तथा अपने शरीर के बल को देख कर करना चाहिये, अर्थात् गर्मी में ठंडे तथा जाड़ों में गर्म जल का उपयोग करना चाहिये। यदि बली तथा नीरोगी पुरुष जाड़ों में भी ठंडे जल से स्नान करें तो कोई हानि नहीं।

पीने के लिये, शुद्ध तथा विकाररहित जल शुद्ध किये हुए पात्रों में शुद्ध हाथों द्वारा पीने से शरीर में किसी प्रकार की बाधा या छूत प्रवेश नहीं करने पाती। पीने वाले जल के रखने के स्थान को खूब साफ रखना चाहिये, पात्र जस्ते या तांबे का हो तो बहुत ही उत्तम है। पीतल के पात्र भी जल रखने को बर्ते जाते हैं। मिट्टी के घड़े प्रतिदिन धोये जावें तथा ढक कर रक्खे जावें तो अच्छा है। पुराने मैले घड़ों का जल या बहुत दिनों का भरा जल विकारयुक्त हो जाता है। जलपात्र पृथ्वी से ऊपर किसी ऐसे शुद्ध स्थान में रक्खे जावें जहां कूड़ा, धूल, या मच्छड़, मक्खी आदि के गिरने का भय न हो। जल के स्थान पर जीठा, जूठा या अन्य कोई घृणित वस्तु न रखनी चाहिये, क्योंकि घृणित स्थानों ही में मक्खियां अधिक इकट्ठी होती हैं। जल जहां तक हो सके ताजा पीना चाहिये। पीने के लिए नदी का विशेष कर धारा का जल पीने के लिये सब से उत्तम है। किन्तु मुर्दा आदि बहाने, या घृणित मल मूत्र आदि के घुलने से नदी का जल भी पीने योग्य नहीं समझा जाता है। बरसात में नदियों का जल न पीना चाहिए। नदी से उतर कर पीने के लिये कूओं का जल है। कूओं को चारों ओर से शुद्ध

रखना चाहिये मल मूत्र आदि उस के समीप न बहने पावे इस का पूरा प्रबन्ध रखना चाहिये। कूवें की जगत ऊंची तथा उस में जल बहने के लिये ढाल और नाली होनी चाहिये। कूवों के समीप वृक्ष लगाना उस समय महा हानिकारक है जिस समय कि उन के ऊपर किसी प्रकार की छाया न हो।

तलाव का पानी पीने के लिये महानिकृष्ट है। यदि कहीं तालाव ही से पीने का जल लिया जाता हो तो इस बात का ध्यान रक्खें कि बर्तन आदि जूठे पात्र उस में न मांजे धोये जावें और न वस्त्र साफ किये जावें। पीने वाले तालावों में घुस कर स्नान करना भी हानिकारक है। गौ, बैल आदि चौपायों को हिलाना, वा मूंज, सन आदि का भिगोना भी अनुचित है। बरसाती पानी दूषित स्थानों से बह कर तालाव में न गिरे, इस का पूरा २ प्रबन्ध रखना चाहिये। जल शुद्ध रखने को तालावों में मछलियां छोड़े और हरे २ पौदे लगावें। झीलों के पानी का भी ऐसा ही प्रबंध करना चाहिये। झरने का पानी स्थिर करके छान लें। यदि हो सके तो औटा कर व्यवहार में लावें।

उत्तम जल की पहिचान।

उत्तम निर्विकार जल वही है जिस में कि किसी प्रकार की दुर्गन्धि न हो, जो निर्मल, हलका और पीने में मधुर तथा ठंढा हो। यदि छोटे अक्षर किसी कागज पर लिख कर जल में छोड़दें और वह तीन फीट की दूरी वा गहराई में साफ पढ़े जावें तो जल के निर्मल होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं होगा।

बिगड़े जल को शुद्ध करने की रीति ।

जल के शुद्ध करने की विविध रीतियां हैं। सब से सहल रीति यह है कि सन्देहयुक्त जल को इतना औटावें कि वह खौल उठे, पीछे उसे ठंढा करके काम में लाने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। इस रीति से सम्पूर्ण जलविकार दूर हो जाते हैं। इसी से हमारे वैद्यक शास्त्रों में रोगियों को औटाया हुआ, वा छौंका हुआ जल देने का नियम है। जहाजों पर भी यही रीति बर्त्ती जाती है। यह रीति सब स्थानों में सब के करने योग्य है।

दूसरी रीति जल के शुद्ध करने की यह है कि, बिगड़े हुये जल में "कांडीज फ्लुइड्"[१] की कुछ बूंदें डाल दें। इससे जल का विकार नष्ट हो कर जल साफ हो जाता है। कूवों के जल को शुद्ध करने के लिये "परमिंगनेट आफ् पुटासियम"[२] का व्यवहार करें। इस औषधि को दो चार पाउंड कूवे में छोड़ कर दो दिन तक उस कूवे का जल न पीवें। इस औषधि से जल के सारे विकार दूर हो जाते हैं। इस औषधि को छोटे तालावों में भी छोड़ सकते हैं। चूना[३] भी बड़ा लाभदायक पदार्थ है, इस से भी जल शुद्ध हो जाता है।

तीसरी रीति जल के शुद्ध करने की यह है कि, कोयला,[४] चूना, बालू आदि वा फिटकिरी,[५] निर्मली आदि जल में छोड़दें इन से भी जलविकार दूर हो जाते हैं।

---

१ कांडीज साहेब के धर्क के नाम से बाजारों में मिलता है।

२ लाल बुकनी भी कहसकते हैं।

३ चूने द्वारा जल स्वच्छ करने की रीति पुरानी है।

४ कोयला दूस नाशक भी है।

५ दोनों केवल मैले जल को स्वच्छ कर सकते हैं।

भोजन—भोजन के नियम में जैसी निपुणता, प्रवीणता, तथा अनुभवशीलता भारतवासियों ने दिखलाई, वैसी सृष्टि की किसी जाति ने नहीं। चाहे नवीन रोशनी के लोग हमारे पूर्वजों की चौका, चूल्हा तथा खाद्या- खाद्य वाली रीति की कितनी ही निन्दा करें, और भले ही उन्हें यह उत्तम स्वास्थ्यप्रद तथा बलप्रद प्राचीन नियम एकता का बाधक जचता हो, किन्तु इस में जरा भी सन्देह नहीं कि खाद्याखाद्य विषय में पूर्वजों की पुरानी रीति बड़ी ही उत्तम तथा स्वास्थ्यप्रद थी, जिसकी प्रशंसा विदेशी तथा विरोधी भी मुक्तकंठ से करने लग गए हैं। हमारे पूर्वजों की खान पान वाली रीति भले ही किसी को बुरी जंचती हो परन्तु हमें तो उससे महान् लाभ जान पड़ता है। सब से बड़ा लाभ तो यही है कि छूआछूत तथा खान पान से उत्पन्न होनेवाले भयंकर शारीरिक उत्पात इस पुरानी रीति के बर्ताव से कोसों दूर रहते हैं।

स्वास्थ्य से बढ़ कर संसार में दूसरा सुख नहीं। तथ इस सुख के संग्रह करने का सहज उपाय "सदाचार" है यह हम ऊपर कह आए हैं। हम यह भी ऊपर वर्णन कर आए हैं कि खाने पीने वाली वस्तुओं ही पर शरीर का स्वास्थ्य निर्भर है, और यह भी बतला आए हैं कि उन्हीं के द्वारा बड़े २ छूत वाले रोग प्राणियों में फैल जाते हैं। अस्तु इनका शुद्ध उपयोग ही मनुष्य मात्र के लिए हितकर है।

उत्तम, पाचक, बलदायक, तथा स्वादिष्ट अन्न ही हमारे पूर्वजों का खाद्य अन्न था। वे अन्न को कई बार शुद्ध जल से धोकर शुद्ध जल में बड़ी शुद्धता से पकाते थे।

रसोईघर को जितना शुद्ध भारतवासी रखना जानते हैं उतना पृथ्वी की कोई जाति नहीं जानती। पूजालय से कहीं बढ़कर इनका पाकालय शुद्ध होता है। चौके को प्रति दिन गोबर मिट्टी द्वारा बिना लीपे पोते ये भारतवासी कभी भोजन नहीं बनाते थे। चौके में शुद्ध रेशमी[1] वस्त्र पहिर कर तब पाक बनाते थे। चौके में अन्य किसी पुरुष की, चाहे वह आत्मज ही क्यों न हो, परछाई भी नहीं पड़ने देते थे। यदि किसी कार्यवश उन्हें चौके से बाहर आना पड़ता था तो फिर बिना हाथ पाव धोए और वस्त्र बदले चौके में नहीं जाते थे। यदि अकस्मात् कौआ या मक्खी उनके पाक को भ्रष्ट कर देते तो वे उस पाक को स्पर्श तक नहीं करते थे। भारत वासी प्राय स्वय पाकी[2] थे। कुछ लोगों का तो यह विचार था कि स्त्रियों से भोजन न बनवाना ही उत्तम है। स्त्रियां भी उस समय की बड़ी आचारिणी होती थीं। पुरुषों से भी बढ़ाचढ़ा आचार उन में था जिसका उदाहरण भारतवर्ष के किसी२ जाति[3] की स्त्रियों में अब भी विद्यमान है। नीचों, मलीनो, आशौचियों, अनाचारियों और रोगियो के हाथ का अन्न, जल अथवा और कोई भक्ष्य पदार्थ भूल कर भी नहीं ग्रहण करते थे। प्रत्येक बातों में "पाप २" चिल्लाकर अपना स्वास्थ्यप्रद आचार बनाए रखते थे। उनके शुद्ध चौको में

१ महाराष्ट्र, तैलङ्ग आदि देशों में यह प्रथा अभी लों विदित है।

२ युक्त प्रदेश तथा बिहार में अधिक मिलेंगे।

३ महाराष्ट्र आदि देशों की स्त्रियां प्राय सदाचारिणी सुनी जाती हैं।

मक्खियां भूलकर भी नहीं जाती थीं। इसका कारण यह जान पड़ता है कि मक्खियां प्रायः उन्हीं स्थानों में अधिक जमा होती हैं जो स्थान कि नाम आदि मलीन वस्तुओं से भ्रष्ट रहता है। पुरुषों के भोजन करते समय स्त्रियों का पंखा झलना मक्खियों से बचने की ही रीति जान पड़ती है। बाजार[1] की पूरी, मिठाई आदि भक्ष्य पदार्थों का न खाना पीना छूतवाले रोगों से बचने का बड़ा ही प्रबल प्रमाण है।

फलों को छील तथा धो कर खाना भारतवासी ही जानते थे। आजकल की भांति भ्रष्ट कूंजड़े उस समय नहीं थे और न ऐसे रोगी, मलीन, गंदे हलवाई आदि खाद्य पदार्थ विक्रेता थे। क्रेता विक्रेता दोनों ही तन मन से शुद्ध रहते थे। और वे अपने २ भक्ष्य पदार्थों को भी शुद्ध रखते थे। इस समय का सा दूध जिस में करोड़ों मक्खियां गिरती मरती रहती हैं, उस समय नहीं था। पहिले बाजारों से दूध के खरीदने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ती थी। प्रत्येक गृहस्थ के घर में एक दो गौ अवश्य रहती थीं। गोपाल भी इस समय के से स्वार्थी उस समय नहीं थे। गौयें भी हरी २ दूबें तथा अन्न खाकर उत्तम अमृत के समान दूध देती थीं। आजकल की भांति मल, तथा सूखा सरकड़ा खाकर सूखा सारहीन दूध नहीं देती थीं। उस समय दूध "रस" माना जाता था और रस के समान उसकी रक्षा तथा अमृत के समान ही पान होता था। आजकल का बाजार का दूध रोग का घर है। गोपालों की असावधानी से लाखों

[1] उत्तर भारत और कुछ बिहार प्रान्त में अब भी बाजारों की वस्तु नहीं छूते हैं।

जहरीली मक्खियां दूध में गिर मर कर दूध को रस के स्थान में विष बना देती हैं । जिसके कारण किसी २ को अतिसार, किसी २ को संग्रहणी और किसी किसी को हैजा आदि भयङ्कर छूत वाले रोग हो जाते हैं । घी भी इस समय का सा अभक्ष्यमिश्रित उस समय नहीं था । उस समय घी तत्वों का गुरु माना जाता था, घी के बिना पाक की शुद्धि नहीं समझते थे । आज दिन घी सैंकड़े पीछे दस को भी मिलना कठिन है ।

ऊपर कहे हुए आचार को कुछ तो समय ने बिगाड़ा है और कुछ भारतवासियों की भूल ने । समय के अनुसार कहना पड़ेगा कि उत्तम अन्न, दूध, घी, आदि पदार्थों के संग्रह न करने में इस समय सैकड़े पीछे ८० भारतवासी लाचार हैं । यह ऊपर वर्णन हो चुका है कि भारतवासी इस समय एक २ कौड़ी को मोहताज हैं । अतः उन पर उत्तमोत्तम पदार्थ के न भक्षण करने का दोष कोई भी नहीं लगा सकता । रहा स्पर्शास्पर्श तथा खाद्याखाद्य का झगड़ा, सो खाद्याखाद्य में भी नौकरी पेशा वाले सम्भव हैं कि लाचारी प्रगट करें । किन्तु उनकी लाचारी मानी नहीं जा सकती। क्योंकि नौकरी कर के भी वे अप आचार का निर्वाह भली भांति कर सकते हैं । क्या वे अपना पाकालय खूब साफ नहीं रख सकते ? क्या वे अपने पाक को अपने हाथों तैय्यार करने में असमर्थ हैं ? क्या वे अपनी स्त्री को पूर्ववत् आचारिणी नहीं बना सकते ? क्या वे सड़ा, विषकुट और बाजार की पूरी, मिठाई, दूध, आदि नहीं छोड़ सकते? क्या वे रोगियों, नीचों, अशुद्धों के स्पर्शास्पर्श से नहीं बच सकते ? अवश्य बच सकते हैं ।

अन्यान्य गृहस्थियों को (भिक्षुकों को छोड़ कर) तो उपरोक्त आचार का निर्वाह करना कुछ भी कठीन नहीं है।

पुराने लोगों की चौका चूल्हा तथा छूआछूत वाली रीति बहुत दिनो के अनुभव से बड़े २ अनुभवी महर्षियों द्वारा निकाली गई थी। जिसका मूल उद्देश्य यही था कि स्वास्थ्य में किसी प्रकार की बाधा न उपस्थित हो और वे भयङ्कर रोग जो छूआछूत, भोजन, तथा जल, आदि से उत्पन्न होते हैं निकट न आने पावें। इन्हीं भयंकर छूत रोगों के बचाव के लिए ही वे अन्य पुरुषों के स्पर्श तथा दूसरे के हाथ का जल, भोजन आदि खाद्य पदार्थ नहीं ग्रहण करते थे। इन्हीं सांघातिक रोगों से बचने ही के लिए वे अपना भोजन अपने हाथों बनाते थे, अपने पीने का जल अपने हाथों भरते थे। न किसी का अन्न छूते थे और न दूसरे के पात्र का जल ही ग्रहण करते थे। हुक्का चिलम वाले न अपना हुक्का वा चिलम दूसरों को देते और न दूसरों का लेते थे। वे न अपना वस्त्र आदि दूसरों को देते न दूसरों का कभी भूल कर पहिरते थे। बाजार के घृणित तथा मक्खियों आदि द्वारा भ्रष्ट खाद्याखाद्य पदार्थ न गृह में लाते और न दूसरों का लाने देते थे। गृह को भी बहुत साफ रखते थे। कच्चे मकान प्रतिदिन लीपे पोते जाते थे, और पक्के जल से धोए जाते थे। इन्हीं बातों से वे सदा नीरोगी और बली बने रहते थे, भयङ्कर बवाई छूत वाले रोग उन के ऐसे बर्तावों से भय खाया करते थे। उनका ऐसा उत्तम तथा अकण्टक मार्ग छोड़ कर ही आज कल हम लोग भयावनी भूलके बनमें फस कर निर्बल रोगी तथा दीन हो कर जीवन बिता रहे हैं।

वायु—वायु शुद्ध तथा समयानुकूल सेवन करना चाहिए। बिगड़ी हुई वायु में रहना हानिकारक है। शुद्ध वायु से रक्त दोष दूर होता है। जहाँ की वायु बिगड़ी हो और वायु दोष से मनुष्य रोगी हो वह स्थान तुरत त्याग कर शुद्ध वायु वाले स्थान में चले जाना चाहिए। सुगंधित पदार्थों के जलाने से वायु शुद्ध रहती है यथा, चंदन, कपूर, लोबान, धूप आदि की धूनी वायु शुद्धि के लिए उत्तम हैं।

किन किन बातों से वायु दूषित होती है।

किसी कमरे में बहुत से मनुष्यों के जमा होने से उस स्थान की वायु दूषित हो जाती है और वायुद्वारा आक्रमण करने वाले छूतवाले रोग भी ऐसे ही स्थानों में उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त हुक्का आदि पीने और धूँआ आदि के होने से भी वायु दूषित हो जाती है। मेले तमाशों वा थियेटरों में भी बहुत से मनुष्य इकट्ठा होते हैं अत वहाँ की भी वायु बिगड़ जाती है। कलों कारखानों तथा खानों की वायु भी दूषित रहती है। कूड़ा, मैला, वा चमारों आदि की दुर्गंधों से भी वायु बिगड़ जाती है।

दूषित वायु की परीक्षा।

वायु में एक प्रकार का विष जिसे कार्बोनिक एसिड गैस (प्राण हर्ता वा प्राणनाशक वायु) कहते हैं, जो १००० हिस्से में एक हिस्से का आधा होता है, पाया जाता है। दूसरा पदार्थ जिसे आक्सीजन गैस (प्राणप्रद जीवन दाता वायु) कहते हैं पाया जाता है। पहिला मनुष्यों को विष किन्तु वृक्षों को अमृत है। और दूसरा वृक्षों को विष और मनुष्यों को अमृत है। यही कारण है कि मनुष्यों के श्वास द्वारा

निकला हुआ "कार्बोनिक एसिड गैस" और वृक्षों से निकला हुआ "आक्सिजन" प्रति दिन लेते देते रहने से मनुष्यों और वृक्षों के स्वास्थ्य में किसी प्रकार का गड़बड़ नहीं होता। यदि किसी कारण से दोनों के इस लेन देन में कमी वा अधिकता हो जावे तो दोनों के लिए परिणाम भयङ्कर होता है। यही कारण है कि भारतवासी गृहों के समीप वृक्षों का लगाना उत्तम समझते हैं।

जहा "कार्बोनिक एसिड" का भाग हवा में अधिक हुआ कि मनुष्यों के जीवन में विविध बाधाएं उपस्थित हुईं। जिस स्थान में "कार्बोनिक एसिड गैस" अधिक होगी वहां दीपक कभी नहीं जलेगा। इसकी परीक्षा पानी कूओं वा किसी २ तंग तथा अंधेरी कोठरी में भली भांति हो सकती है।

रसायनिक रीति से वायु की शुद्धि।

बिगड़ी वायु को तीन प्रकार से शुद्ध करते हैं। (१) सूखी चीजों द्वारा (२) द्रव पदार्थों की सहायता से (३) औषधियों की भाफ से।

(१) चूना, कोयला, "कोलटार" (अलकतरा) आदि के व्यवहार से वायु शुद्ध करतेहैं। पशुओं की अस्थि (हड्डी) का कोयला इस काम के लिए विशेष उपयोगी बतलाते हैं। इसे किसी टोकरी में भर कर या पृथ्वी में फैला-कर वायु शुद्ध करते हैं। किन्तु मेरी समझ में लकड़ी का कोयला खूब बारीक पीस कर फैलादेने से भी वही लाभ होता है जो पशुओं की हड्डी के कोयले में है। हिन्दुओं में दुर्गंधित वस्तुओं पर राख मिट्टी आदि डालने का प्राचीन नियम है।

(२) द्रव पदार्थो में कांडीज़ फ्लुइड् Condy fluid तथा क्लोराइड् आफ ज़िंक Chloride of zinc बहुत ही उत्तम है। इन औषधियो के जल में चादर आदि वस्त्र भिगो कर फैला देते हैं वा घर और दीवारो पर छिड़क देते हैं। मिट्टी गोबर आदि में मिला कर लीपने पोतने से भी वही लाभ होता है जो धोने और छिड़कने से होता है।

(३) दवाओं की भाफ से वायु की शुद्धि। दवाओं में सब से अच्छा "क्लोराइन" Chlorine है।

ओज़ोन Ozone भी वायुशुद्धि के लिए बड़ी लाभकारी रीति है। ओज़ोन उत्पन्न करने के लिए तीन भाग तेल गंधक का तेज़ाब[१] और दो भाग "परमैंगनेट आफ पुटाश" को मिलाकर उस स्थान में धर दें, जहां की वायु को शुद्ध करना चाहते हैं।

पहली विधि दुर्गंधि आदि दूर करने को, दूसरी विधि रोगियो के कमरो के लिए, और तीसरी विधि छूत वाले रोगो के विष को नष्ट करने के लिए, उत्तम है।

गृह—गृह जहां तक हो खूब हवादार हो, चाहे कच्चा हो वा पक्का, किन्तु साफ हो। पृथ्वी सीली तथा कोठरियां अंधेरी गुफ़ा के सदृश न हो। घरों के पनाले पक्के और बहाऊ होने चाहिएं। दुर्गंधित जल पनालों वा हौदो में जमा न होने देवें। कूड़ा, करकट, मल आदि घर से क्या, बस्ती से दूर फिंकवाने का प्रबंध करे। गृह ऊंचा कोठेदार हो, और प्रत्येक कोठरियो में खिड़की झरोखा अवश्य होना चाहिये। कच्चे मकान की पृथ्वी को सप्ताह में दो बार

१ स्ट्रांग सल्फ्यूरिक एसिड।

और दिवारों को प्रति तीसरे मास गोबर तथा मिट्टी से, लीपे और पोते । रसोई घर खूब साफ हो तथा उसे प्रति दिन लीपना पोतना चाहिए । गौ बैल आदि रहनेवाले घर में नहीं रखना चाहिए, उनके लिए घर से अलग स्थान बनावें । पक्के मकानों को नव गर्मियों में प्रतिदिन तथा जाड़ों में मास २ में धोना उचित है । दीवारों में चूना तथा कड़ी किवाड़ों में अलकतरा वर्ष में एक दो बार, लगाना बहुत ही उत्तम है । भारतवर्ष में पहिले पाखाने घरों में नहीं होते थे । शौचादि के लिए स्त्री पुरुष दोनों ही खेतों में दूर जाते थे । मुसलमानों के समय में घरों में सण्डास बनवाने की प्रथा निकली जो बड़ी भयावनी तथा हानिकारक है । आज कल अंगरेजों की कृपा से सण्डास बहुत कम हैं। अधिक कर के उठाऊ पाखाने ही पाए जाते हैं, अस्तु पाखानों को खूब साफ रखने ही में मंगल है । बहाऊ पाखाने प्रति दिन अधिक जल डाल कर और कुछ दुर्गंधि नाशक औषधियों को छिड़क कर बहाए जावें । उठाऊ का ऐसा प्रबंध करें कि मल पड़ा न रहने पावे । इस में सूखे दुर्गंधिनाशक पदार्थ जैसे राख चूना, कोयला आदि का उपयोग बहुत ही लाभकारी है । रोगियों के लिए घरों में वे कमरे, जो शुद्ध तथा वायुपूर्ण हों किन्तु अन्यान्य कमरों से पृथक् और एकान्त में हों, देने चाहियें, जच्चाओं के लिए भी ऐसा ही कमरा उचित है । छूतवाले रोगियों को अकेले घर में, जहां केवल रोगी और कुछ नौकर आदि के सिवाय दूसरे न रहते हों, रखना चाहिए ।

निद्रा—कम से कम ६ घन्टे और अधिक से अधिक

८ घन्टे सोना चाहिए । अधिक जागने या अधिक सोने से मनुष्य रोगी हो जाता है । छूत वाले रोग प्रायः अधिक जागने से ही होते सुने गए हैं । कभी नींद में जागना भी हानिकारक है । नींद खुलते ही जल न पीना चाहिए और सूर्योदय से पहिले उठना चाहिए ।

वस्त्र—वस्त्र ऋतुअनुकूल पहिरना चाहिए । बच्चों के कुरते आदि दिन में दो तीन बार बदलना उचित है । पुरुष अपने वे वस्त्र जो वे बाहर निकलने में पहिरते हैं बैठक में या अन्य ऐसे स्थानों में उतारें जहां बालबच्चे आदि न जाते हों । सप्ताह में दो बार पहिरने के कपड़े धुलवाने चाहियें । बच्चों के पहिरने के कपड़े प्रतिदिन धोकर पहिराने चाहिये । पसीने से भीगे या किसी रोगी के स्पर्श किए हुए कपड़ों को बिना धोए व्यवहार में न लावे । यदि कोई छूतवाले रोग फैले हों तो बाहर के कुल कपड़े, जूते, छाते आदि को बाहर ही रक्खें, घर में न ले जावें । स्वयं भी उन्हें फिर बिना शुद्ध किए न व्यवहार करें तो बहुत अच्छा है । भोजन के लिए पृथक वस्त्र जितने ही साफ तथा शुद्ध व्यवहार किए जावेंगे उतना ही अच्छा है ।

वस्त्रों की छूत दूर करने की विधि ।

वस्त्रों की छूत दो प्रकार से दूर होती है । (१) वस्त्रों को, जो सूती हों, एक ऐसे पात्र में, जो चौड़े मुंह का हो, डाल कर जल के साथ खूब उबाल डालें, पीछे शुद्ध जल से धोकर सुखावें तो छूत आदि का विष वस्त्रों से दूर हो जावेगा । (२) ऊनी वस्त्रों या उन वस्त्रों को जो जल से धोए नहीं जा सकते घाम में सुखाने या गंधक आदि की धूनी देने से वे शुद्ध हो जाते हैं ।

परिश्रम-बल संचित करने के लिए परिश्रम करना उचित है। शक्ति के अनुसार परिश्रम उत्तम होता है प्रातःकाल यथाशक्ति भ्रमण स्वास्थ्य के लिए विशेष उपकारी है। परिश्रम इतना करना चाहिए जिससे थकन न उत्पन्न हो, और भोजन पच जावे। मानसिक परिश्रम बहुत न करना चाहिए। शारीरिक परिश्रम ५ ६ घन्टे स्त्री पुरुष दोनों को करना उचित है। बच्चों का परिश्रम खेल कूद है; अतः छोटे २ बच्चों को अधिक गोद में न रखना चाहिए। बुढ़ापे में अधिक परिश्रम करना आयु नष्ट करना है।

रीत रस्म तथा प्रकृति-यह विषय बड़ा कठिन है। भारतवर्ष में नाना जातियां हैं और उन में नाना प्रकार के नियम भी प्रचलित हैं। किसी की जाति में मांस मदिरा वर्जित है तथा किसी जाति में प्रचलित है। किसी सम्प्रदाय में एक चीज ग्राह्य है तो दूसरे में अग्राह्य है। अस्तु यहां कुछ संक्षेप से वे ही बातें लिखी जाती हैं जो स्वास्थ्य के लिए उत्तम हैं।

१ मांस-इससे लाभ कम तथा हानि अधिक है। प्रथम तो यह कई एक उदर रोगों का उत्पादक है, दूसरे यह मक्खियों का प्रिय खाद्य है, अतः छूतवाले रोगों का भी उत्पादक है। घर में जीवहिंसा करके शुद्धता के साथ मक्खियों से बचा कर मांस खाने में दोष नहीं। मांस की अपेक्षा हड्डियों का रस (यखनी) बहुत पुष्टिकारक है। इसे रोगियों को भी दे सकते हैं।

२ मदिरा-मदिरा बड़ी हानिकारक है, इससे हृदय मस्तक आदि शरीर के प्रधान अवयव निर्बल हो जाते हैं,

आमाशय का कार्य शिथिल होता तथा बिगड़ जाता है। आंतोंके कार्य में भी शिथिलता आ जाती है। यकृत (जिगर) और गुर्दों के कार्य में भी बाधा उपस्थित होती है। छूत वाले रोगों के बल को बढ़ाने में मदिरा एकही है, रक्त सम्बधी दोष भी इससे उत्पन्न होते हैं। अत इसका सेवन करना मनुष्य मात्र के लिए भयानक है। औषधियों के लिए ब्राण्डी उत्तम है। इससे दुर्बल तथा शक्तिहीन रोगी शीघ्र शक्ति लाभ करते हैं, एक वा दो औंस से अधिक एक समय में नहीं देना चाहिए। कठिन रोगियों को चार ड्राम से अधिक एक समय में न देनी चाहिए।

३ अन्य मादक पदार्थ—मादक वस्तुओं का सेवन स्वास्थ्य को नष्ट करता है, इस लिए इन से बचके ही रहना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

रीति रस्म वाली बात यहां लिखना उपयोगी न जान कर छोड़ दिया गया।

मक्खियों से बचने का उपाय।

मक्खियां सफाई से आप ही दूर रहती हैं। अस्तु घर, शरीर, तथा व्यवहार में आने वाली वस्तुओं की सफाई ही इनसे बचने का उत्तम उपाय है। रसोई घरों में कोई ऐसी चीज़ जो इन्हें अधिक प्रिय है न रक्खें। दरवाजों पर चिक लगानी चाहिए। पायखाने, पनाले, आदि खूब साफ रक्खें। बच्चों को नहलाया करें और उनके कपड़े आदि में मीठा वा घृणित वस्तु न लगा रहने दें। धूए से मक्खियां बड़ी घबड़ाती हैं। योरप वालों का मत है कि एक कटोरे में कुछ